लेखकों की अन्य रचनायें

(१) बुनियादी शिक्षा—सिद्धान्त एवं मनोविज्ञान
(२) बुनियादी शिक्षा—शाला स्वास्थ्य
(३) बुनियादी शिक्षा—शिक्षण पद्धति
(४) बुनियादी शिक्षा में विभिन्न विषय कैसे पढ़ायें
(५) बुनियादी शिक्षा—सिद्धान्त
(६) बुनियादी शिक्षा—मनोविज्ञान
(७) नये शिक्षक का मार्ग दर्शन
(८) हमारे बच्चे
(९) अपनी तालीम की कहानी
(१०) शिक्षा समाज शास्त्र की रूप रेखा
(११) शिक्षा की आधुनिक विचारधाराएँ

शाला प्रबन्ध

राजस्थान, मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश, दिल्ली, पंजाब आदि विभिन्न राज्यों के शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों के पाठ्यक्रमानुसार

लेखक

शिवकुमार शर्मा, एम० ए०, एम० एड०

अनुसन्धान अधिकारी, राजस्थान राज्य शिक्षा संस्थान, उदयपुर

[भू० पू० प्राध्यापक, टीचर्स ट्रेनिंग कालेज, अजमेर (राजस्थान)]

एवं

रमेशचन्द्र शर्मा, एम० ए०, एम० एड०

प्रधानाध्यापक, डिमान्स्ट्रेशन मल्टीपरपज हायर सेकण्डरी स्कूल (क्षेत्रीय शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय), भोपाल (मध्य प्रदेश)

[भूतपूर्व प्राध्यापक, टीचर्स ट्रेनिंग कालेज, अजमेर (राजस्थान)

राम मेहर एण्ड कम्पनी

पुस्तक प्रकाशक दिल्ली

प्रस्तावना

प्रशिक्षण विद्यालय काल में हमें अध्यापन के समय कई कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। इन कठिनाइयों में से प्रमुख और महत्वपूर्ण कठिनाई यह प्रतीत हुई कि प्रशिक्षण विद्यालय के पाठ्यक्रम के अनुसार लिखित पुस्तकों के अभाव में छात्राध्यापकों एवं प्राध्यापकों के पठन-पाठन में न तो सरलता व सरसता ही आ पाती थी और न पूर्णता ही। इस अनुभव ने हमें मित्रद्वय को इस अभाव की पूर्ति का साहस करने को प्रेरित किया। बुनियादी शिक्षा के सिद्धान्तों एवं उनके मनोवैज्ञानिक आधारों पर अध्ययन, मनन, चिन्तन तथा प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्ति-हेतु क्रियात्मक-कार्य करने के साथ बुनियादी शाला प्रबन्ध पर भी कार्य किया। दोनों कार्य अधूरे थे। कार्य में आने वाली कठिनाइयों के कारण हमारे अनुभवों को शिक्षक समाज के सम्मुख प्रस्तुत करने का साहस टूटता सा नजर आने लगा। पर गुरुओं के पथ-प्रदर्शन एवं उत्साह दिलाने पर हमारी प्रथम पुस्तक "बुनियादी शिक्षा—सिद्धान्त एवं मनोविज्ञान" प्रकाशित हुई। उसके शिक्षा जगत में स्वागत एवं समादर तथा मित्रों की बधाइयों के हम दोनों मित्र आभारी हैं। कई मित्रों ने हमें यह सुझाव दिया कि बुनियादी शाला के प्रबन्ध के दृष्टिकोण से कोई भी पुस्तक अब तक उपलब्ध नहीं है। अतः हमें यह प्रयास करना चाहिए। बुनियादी शाला प्रबन्ध का हमारा कार्य अधूरा पड़ा ही था। अतः उस अधूरे कार्य को टटोला और उसे पूरा किया। उसी के फलस्वरूप जो पुस्तक तैयार हुई वही पुस्तक आपके हाथ में है।

बुनियादी शालाएँ वर्तमान समाज का सांस्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक, नैतिक एवं राजनैतिक पुनर्निर्माण करना चाहती हैं। शाला व्यवस्था समाज की व्यवस्था का ही प्रतिरूप होती है। पुरानी रूढ़िवादी शालाओं का शाला प्रबन्ध नई समाज रचना के दृष्टिकोण से समतौल नहीं रखता। इसीलिए पुरानी रूढ़िवादी शालाओं के प्रबन्ध एवं बुनियादी शालाओं के प्रबन्ध में विशाल अन्तर है। अतः यह पुस्तक नई समाज रचना के अनुकूल बुनियादी शाला के प्रबन्ध और व्यवस्था के दृष्टिकोण से ही लिखी गई है जिसमें स्थान-स्थान पर बुनियादी शालाओं के तथा पुरानी रूढ़िवादी शालाओं के प्रबन्धों के अन्तर को स्पष्ट करने का भी प्रयत्न किया गया है। साथ ही बुनियादी शिक्षा के शिक्षकों को बुनियादी शालाओं में विभिन्न प्रयोग और शोध कार्य के आधार पर अनुभव प्राप्त करने एवं निर्णय निकालने की दृष्टि से मार्ग सुझाया गया है और समस्याएँ उपस्थित की गई हैं जिनसे बुनियादी शिक्षा को हम अधिकाधिक जीवनोपयोगी बना सकें तथा सफलता की दृष्टि से खरी कसौटी पर कस सकें।

हमारी प्रथम पुस्तक की भूमिका में भी हम व्यक्त कर चुके हैं कि हमें प्रयास का श्रेय डाक्टर कालूलाल श्रीमाली, उप शिक्षामन्त्री भारत सरकार एवं श्री केदारनाथ श्रीवास्तव, स्थानापन्न प्रिंसिपल, टीचर्स ट्रेनिंग कालेज, विद्याभवन उदयपुर को है। इस बार भी शिक्षा जगत की सेवा के पुनीत कार्य में दोनों गुरुजनों का आभार प्रदर्शन न करने की धृष्टता हम नहीं कर सकते चाहे हमें पिष्ट-पेषण का दोषी ही क्यों न बनना पड़े। विद्याभवन सोसायटी के आनरेरी सेक्रेटरी, पूर्व मेवाड़ राज्य के शिक्षाध्यक्ष तथा वर्तमान राजस्थान के जागीर कमिश्नर राव साहब श्री लक्ष्मीलाल जी जोशी, जिन्हें शिक्षा जगत से आज भी प्रगाढ़ प्रेम है, हमारे ऐसे प्रयासों की सफलता में आत्मतोष अनुभव करते हैं एवं हमें उत्साहवर्धक सहयोग प्रदान करने को तत्पर रहते हैं। इस हेतु हम उनके हृदय से आभारी हैं।

विद्याभवन की रजत जयन्ती के सुअवसर पर बुनियादी शिक्षा के मर्मज्ञ डाक्टर जाकिर हुसैन साहब ने हमारे प्रथम प्रयास को देखकर जिन शब्दों में हमारा उत्साहवर्धन किया उसके लिए हम अन्तस्तल से आभार प्रदर्शन किए बिना नहीं रह सकते।

हमारे एम. एड. के साथी रिसर्च स्कॉलर श्री लक्ष्मीनारायण वर्मा, प्रधान ध्यापक, बेसिक एस. टी. सी. स्कूल, भरतपुर ने हमारी योजना में जो सुझाव दि उसके लिए हम उनकी प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकते। साथ ही बुनियादी शिक्ष के विशेषज्ञ श्री भंवर लाल कुणावत, प्रधानाध्यापक, बेसिक एस. टी. सी. स्कूल उदयपुर; श्री गजेन्द्र नारायण भटनागर, प्रधानाध्यापक, बेसिक एस. टी. सी. स्कूल पावटा (जयपुर); श्री रमेश चन्द्र, प्रधानाध्यापक बेसिक एस. टी. सी. स्कूल, प्रता नगर (उदयपुर); श्री मदन लाल वर्मा, प्रधानाध्यापक, बेसिक एस. टी. सी. स्कूल चुरू; श्री बिहारी लाल सनाढ्य, प्रधानाध्यापक, बेसिक एस. टी. सी. स्कूल, प्रतापपु (बाँसवाड़ा); एवं श्री भगवान लाल व्यास, प्रधानाध्यापक, बेसिक एस. टी. सी. स्कूल कोटा ने हमारी योजना का अवलोकन कर अपनी अमूल्य सम्मतियाँ प्रदान कीं— उनके प्रति हम अत्यन्त आभारी हैं।

बुनियादी शाला भवन के योजना चित्र बनाने में हमारे अभिन्न मित्र श्री भंवरलाल शर्मा हेड ड्राफ्टसमैन को धन्यवाद देकर हम अपने सम्बन्ध घटाना नहीं चाहते क्योंकि सहयोग उनके जीवन का भी अभिन्न अंग है।

अन्त में हम उन सभी साथियों; लेखकों, विचारकों एवं विद्वानों के आभारी हैं जिनके विचारों एवं कृतियों ने हमारा पथ-प्रदर्शन किया है।

दिनांक २५-१०-१९५६

शिवकुमार शर्मा
रमेशचन्द्र शर्मा

द्वितीय संस्करण

इस पुस्तक का प्रथम संस्करण शीघ्र ही समाप्त हो गया। और इस द्वितीय संस्करण को यथाशीघ्र प्रकाशित करना पड़ रहा है। तथापि इसमें सभी आवश्यक परिवर्तन कर इसे अधिकाधिक उपयोगी बनाने का प्रयास किया गया है।

इस पुस्तक के प्रथम खण्ड में अनेक नए पाठ जोड़े गये हैं। प्रथम संस्करण की अनावश्यक सामग्री निकाल दी गई है। साथ ही नवीनतम तथ्यों का समावेश कर इसे सर्वांगपूर्ण बनाने का प्रयास किया है।

इस संस्करण में शाला स्वास्थ्य की दृष्टि से द्वितीय खण्ड की वृद्धि कर दी गई है। स्वास्थ्य के विषय को चित्रों द्वारा अधिक बोधगम्य बनाने का भी प्रयास किया गया है। इस प्रकार इसकी उपयोगिता कई गुनी बढ़ गई है।

हमें विश्वास है कि यह नवीन संस्करण उन सभी के लिये लाभप्रद सिद्ध होगा जिनके लिए यह प्रयास किया गया है।

शिवकुमार शर्मा
रमेशचन्द्र शर्मा

तृतीय संस्करण

इस पुस्तक का यह तृतीय संस्करण पाठकों के सामने प्रस्तुत करते हुए हर्ष का अनुभव होता है। इस संस्करण में आज की जरूरत को पूरा करने की दृष्टि से आवश्यक सुधार करके, इस पुस्तक की उपादेयता बढ़ाने का पूरा-पूरा प्रयास किया गया है।

हमें विश्वास है कि इस नवीन संस्करण का अधिकाधिक स्वागत होगा।

दिनांक ८-६-१९६०

शिवकुमार शर्मा
रमेशचन्द्र शर्मा

चतुर्थ संस्करण

इस पुस्तक का प्रथम संस्करण सन् १९५७ में, द्वितीय संस्करण सन् १९५८ में, तृतीय संस्करण सन् १९६० में प्रकाशित हो जाने के पश्चात् यह चतुर्थ संस्करण प्रकाशित हो रहा है। प्रथम संस्करण के पश्चात् इसके प्रारूप में लगातार परिवर्तन होता रहा है। विशेषतः पिछले वर्षों में, प्राथमिक-शिक्षा के द्रुत गति से प्रसार और उनकी अनिवार्यता, सामुदायिक कार्यक्रमों में शिक्षा द्वारा योग दान की दृष्टि, परीक्षा प्रणाली में पूर्णता लाने के प्रयत्न व ऐसे ही कुछ अन्य प्रयत्न शुरू हुए हैं जिनको दृष्टि में रखकर इस रचना में कतिपय पाठों के प्रारूप को बढ़ाया गया है। किंचित पाठों को संक्षिप्त किया गया है। कुछ पाठ हटा देने पड़े हैं और कई नये पाठ इसमें शामिल भी किए गए हैं। इस तरह पुस्तक के इस संस्करण को आज की स्थिति के पूर्णतः अनुकूल बनाने का पूरा-पूरा प्रयास किया गया है।

इस सारे कार्य में अनेक मित्रों के सुझावों ने मदद की है। अनेक छात्रों के प्रश्नों ने इस पुस्तक में निहित विशिष्ट बिन्दुओं पर व्यापक रूप से चर्चा करने की प्रेरणा दी है। अनेक शिक्षकों के विचारों से लाभ उठाया गया है। वे सभी आभार के पात्र हैं।

विश्वास है—इस पुस्तक का यह परिवर्धित नवीन संस्करण पाठकों के लिए अधिक लाभकारी प्रमाणित होगा।

शिवकुमार शर्मा
रमेशचन्द्र शर्मा

पञ्चम संस्करण

शिक्षा कार्यक्रमों में हम ज्यों-ज्यों आगे बढ़े हैं त्यों-त्यों हमें नवीन समस्याओं का सामना करना पड़ा है और ये नवीन समस्याएँ हमें अपने कार्य में सफल बनाने के लिए नवीन दिशाएँ दिखाती रही हैं। पिछले कुछ वर्षों में भारत में राज्य शिक्षा संस्थानों ने, प्रमुखतः प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में प्रशंसनीय मार्ग-दर्शन किया है। इस क्रम से नवीन विचार उदित होते जा रहे हैं उनका भी इस संस्करण में समावेश करने का यत्न किया गया है।

विश्वास है—यह पञ्चम संस्करण पाठकों के लिए अधिक उपयोगी सिद्ध होगा।

शिवकुमार शर्मा
रमेशचन्द्र शर्मा

विषय-सूची

—: o :—

: १ :

पाठशाला प्रबन्ध का महत्व

प्रस्तावना—शिक्षा-दर्शन में हम शिक्षा के अर्थ, परिभाषा, उद्देश्य, शिक्षा के सांस्कृतिक आधार, सामाजिक आधार, राजनैतिक आधार आदि विषयों का अध्ययन करते हैं। इस सैद्धान्तिक ज्ञान को व्यवहारिक रूप देने के उद्देश्य से हम विद्यालय चलाते हैं। इन विद्यालयों से जो छात्र तैयार होते हैं उनका व्यक्तित्व हमारे लिये सदा से ही इस बात की कसौटी रहा है कि शिक्षा-दर्शन किस सीमा तक कार्यान्वित हो पाया है। शिक्षा-दर्शन में हमने जिस प्रकार के समाज की कल्पना की थी वह विद्यालयों में बालकों की शिक्षा द्वारा किस हद तक बन पावेगा, इस दृष्टिकोण पर शिक्षा-विचारक सदा से चिन्तन और मनन करते रहे हैं। बम्बई प्रान्त के भू० पू० गवर्नर श्रीप्रकाश ने अपने लेख "हमारी शिक्षा का ढाँचा" में ठीक ही व्यक्त किया कि बहुत समय पहले एक अमरीकी विश्वविद्यालय के प्राध्यापक मेरे पिता डा० भगवान दास से मिलने आये और उन्होंने बातचीत करते हुए व्यक्त किया : "आप मुझे कहिए कि आप किस प्रकार की सभ्यता का निर्माण करना चाहते हैं और मैं आपको बताऊँगा कि आपको किस प्रकार की शिक्षा देनी चाहिए।"* यह कथन स्पष्ट करता है कि शिक्षा के सिद्धान्तों में हम जिस प्रकार के समाज के निर्माण की इच्छा रखते हैं उसी प्रकार की शिक्षा की भी हमें व्यवस्था करनी होगी। इस युग में शिक्षा के प्रमुख अमरीकी विचारक जॉन डीवी ने सारे संसार को यह कहकर सजग किया : "कोई-सा भी दर्शन जो कार्यान्वित नहीं किया जा सके वह दर्शन नहीं है।" इस कथन के पश्चात् आज हमारा यह कर्तव्य हो गया है कि या तो हम अपने शिक्षा के दर्शन को कार्यान्वित करें अन्यथा महाशय डीवी के कथनानुसार ही अगर हम विचार करें तो फिर उनके कथन के अनुसार हमारे शिक्षा-दर्शन को दर्शन ही न माने जाने का खतरा उपस्थित हो सकता है।

बुनियादी शिक्षा-दर्शन और हमारे विद्यालय—वर्तमान दशा में बुनियादी शिक्षा को हमने राष्ट्रीय शिक्षा पद्धति के रूप में स्वीकार किया हुआ है। बुनियादी शिक्षा-दर्शन को हमारा देश कार्यान्वित करने को कृत सकल्प है। यह कार्यान्वितिकरण हमारी बुनियादी शालाओं में हो रहा है। इस कार्य की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि बुनियादी शिक्षा-दर्शन में जिन सिद्धान्तों को स्वीकार किया गया है वे इन शालाओं द्वारा कितने जल्दी व्यवहार में उतारे जा पाते हैं।

---

* हिन्दुस्तान टाइम्स रविवारीय संस्करण—दिनांक १७ जून १९६२।

बुनियादी शाला में लागू करने के प्रमुख सिद्धान्त—बुनियादी शिक्षा-दर्शन में हमने जिस समाज के निर्माण का संबन्ध किया उसकी बारीकियों के फेर में न पड़कर अगर केवल प्रमुख सिद्धान्तों की ही बात करें तो हमें निम्न सिद्धान्तों को महत्व देना पड़ेगा.--

(i) व्यक्ति अनुशासित हो और व्यावहारिक ज्ञान, सामाजिकता, नागरिकता एवं नैतिक गुणों से परिपूर्ण हो।
(ii) आपसी सम्बन्ध सत्य, अहिंसा और प्रेम पर आधारित हों तथा सबल हों और अहिंसा का पालन करें।
(iii) सबको बराबरी का दर्जा प्राप्त हो।
(iv) धन की बजाय कर्तव्यपरायणता एवं योग्यता का आदर हो।
(v) समाज शोषण से मुक्त हो और लोग सब क्षेत्रों में ज्यादा से ज्यादा स्वावलंबी हों।
(vi) नागरिक भारतीय संस्कृति के परिपोषक हों।
(vii) समाज में अवसरों की समानता हो।
(viii) शासन-व्यवस्था जनतान्त्रिक एवं विकेन्द्रित हो।
(ix) विचारों का आदान-प्रदान अपनी भाषा में हो।

ये ही कतिपय सिद्धान्त हैं जिन्हें हमें विद्यालय समाज में व्यावहारिक रूप देना है, जिससे समाज की बुराइयां दूर जा करके एक नवीन समाज की रचना संभव हो सके, जिसकी शिक्षा-दर्शन के अन्तर्गत अपेक्षा की गई है।

पाठशाला प्रबन्ध का महत्व:—उपरोक्त सिद्धान्तों को विद्यालय जीवन का अंग बनाने के लिए यह जरूरी है कि विद्यालय का प्रबन्ध उसी अनुसार किया जावे। ये सब सिद्धान्त वहां साकार हों। विद्यालय वैसे समाज का रूप ग्रहण करे जिसकी कल्पना दार्शनिकों ने की है। भले ही उसका रूप छोटा क्यों न हो।

उपसंहार—शिक्षा-दर्शन में सुझाये गये सिद्धान्त शिक्षाशालाओं में कार्यान्वित किये जाते हैं। यह कार्य जितनी ज्यादा सूझ-बूझ, आहिस्ता और मेहनत से किये जाते हैं उतना ही उद्देश्य को प्राप्त करने का मार्ग सरल होता जाता है और उद्देश्य निकट आता जाता है।

सारांश

प्रस्तावना—शिक्षा-दर्शन को विद्यालयों में कार्यान्वित किया जाता है। अगर शिक्षा का कोई ऐसा दर्शन है जो कार्यान्वित नहीं किया जा सके तो फिर उसे दर्शन मानना ही कठिन है।

बुनियादी शिक्षा-दर्शन और हमारे विद्यालय—बुनियादी शिक्षा-दर्शन में जिस प्रकार के समाज की कल्पना की गई है उस समाज के प्रमुख सिद्धान्त बुनियादी शिक्षाशाला को अपनाने चाहियें।

पाठशाला प्रबन्ध का महत्व—अगर हमारी पाठशालाएँ अपना प्रबन्ध और व्यवस्था ऐसी बनावें जैसी कि दार्शनिकों ने कल्पना की है तो उससे एक ऐसा लघु समाज साकार हो सकेगा जो दार्शनिकों की कल्पना से मेल खाता हुआ होगा।

उपसंहार—अगर हमारे विद्यालयों का प्रबन्ध शिक्षा-दर्शन के अनुकूल है तो कल्पना के समाज को साकार करने का काम सरल और थोड़े समय में ही हो जाने की आशा बंध सकती है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(१) शिक्षा के सिद्धान्त और शाला प्रबन्ध में क्या सम्बन्ध है? विस्तार से चर्चा कीजिये।

(२) शाला का समुचित प्रबन्ध समाज निर्माण में किस प्रकार सहायक होता है

—:०:—

: २ :

बुनियादी शाला की व्यवस्था

प्रस्तावना—बुनियादी शाला की व्यवस्था के विषय में चर्चा करते हुए हमें बुनियादी तालीम के दर्शन पर हर समय दृष्टि रखना ज़रूरी है। उसी दर्शन को हमें व्यवस्था में कार्यान्वित करने का प्रयत्न करना पड़ता है। इस प्रकार पर हम बुनियादी तालीमी शाला की व्यवस्था के लिए कुछ महत्त्वपूर्ण सिद्धान्तों पर विचार कर सकते हैं।

बुनियादी तालीमी शाला की व्यवस्था के प्रमुख सिद्धान्त—

(१) बुनियादी तालीमी शाला छात्रों के सर्वतोन्मुखी विकास का प्रयत्न करती है।

(२) यहाँ छात्रों को ऐसे अनुभव उपलब्ध किये जाते हैं जिससे शिक्षा वास्तविक, प्रभावपूर्ण और रुचिपूर्ण बनती है।

(३) यहाँ छात्रों की विद्यालय के बाहरी वातावरण के प्रति रुचि पैदा की जाती है।

(४) यहाँ छात्रों में स्वतन्त्रता की भावना का विकास कर उनमें नेतृत्व के गुणों का विकास करने का यत्न किया जाता है।

(५) यहाँ पर छात्रों में सामूहिक भावना का विकास कर सहयोग से जीवन-यापन का प्रशिक्षण दिया जाता है।

(६) यहाँ बालकों में नागरिकता के गुणों का विकास करने और ज़िम्मेदारी वहन करने की शक्ति को प्रस्फुटित करने का प्रयास किया जाता है।

(७) यहाँ बालक के बौद्धिक विकास के लिए वास्तविक स्थितियों से ज्ञान का समन्वय किया जाकर नवीन ज्ञान दिया जाता है।

(८) यहाँ वर्गरहित, शोषणरहित और न्यायपूर्ण समाज की स्थापना का यत्न किया जाता है।

(९) यहाँ लोक-हितकारी जनतान्त्रिक जीवन के लिये बालकों को प्रशिक्षित किया जाता है।

(१०) यहाँ बालकों में शारीरिक श्रम के प्रति आदर की भावनाएँ जागृत की जाती हैं।

(११) यहाँ पर सत्य और अहिंसा से परिपूर्ण एवं अनुशासित जीवन व्यतीत करने का प्रशिक्षण दिया जाता है।

(१२) यहाँ भारतीय संस्कृति और उसके मूल क्षेत्र ग्रामों के प्रति छात्रों में रुचि जागृत की जाती है।

ये ही कतिपय सिद्धान्त हैं जिन्हें बुनियादी शाला, अपनी व्यवस्था द्वारा कार्यान्वित करती है। यही कारण है कि यहाँ की व्यवस्था अन्य विद्यालयों से भिन्न प्रकार की नजर आती है। अतः जरूरी है कि हम यहां की व्यवस्था के प्रमुख अंगों पर चर्चा करें।

बुनियादी शाला व्यवस्था के प्रमुख अंग—उपरोक्त आधार पर विद्यालय व्यवस्था को निम्नलिखित प्रमुख अंगों के अन्तर्गत अध्ययन करना लाभप्रद होगा :—

(१) शाला की व्यवस्था जनतान्त्रिक प्रणाली पर चले—बुनियादी शाला जनतान्त्रिक समाज की रचना करने का उद्देश्य रखती है। इस हेतु शाला की व्यवस्था भी जनतान्त्रिक प्रणाली पर चलाई जानी वांछनीय है। इस दृष्टि से यह जरूरी है कि सभी कार्यकर्त्ताओं के आपसी सम्बन्ध समानता के आधार पर हों। सभी भ्रातृभाव और सहयोग से काम करें। एक दूसरे को मदद देने की भावना रखें और प्रत्येक दूसरे के विचारों को सद्भावना व आदर के साथ समझने का प्रयत्न करें। प्रत्येक दूसरे की समस्या एवं कठिनाई को अपनी समझें। सभी उदार दृष्टिकोण को अपनावें।

इन्हीं विचारों को सभी स्तर पर जनतान्त्रिक रूप देने के लिए शिक्षक स्तर पर शिक्षक परिषद् का निर्माण किया जावे। छात्र स्तर पर छात्र-परिषद् हो। विद्यालय और समुदाय के आपसी विचार-विनिमय और सहयोग के लिए शिक्षक-अभिभावक समिति का निर्माण किया जावे।

(२) विद्यालय का सारा कार्य योजनाबद्ध तरीके से चले—जनतन्त्र का योजना से गहरा सम्बन्ध है। विद्यालय की जनतान्त्रिक व्यवस्था का सर्वप्रथम उपयोग शाला की योजना बनाने और फिर उस योजना को कार्यान्वित करने में किया जाना चाहिए। विद्यालय-कार्य की योजनाएं कैसी हों इस बाबत इसी पुस्तक के एक स्वतन्त्र पाठ में इसकी चर्चा की जा चुकी है।

(३) विद्यालय व्यवस्था, विद्यालय-समुदाय को एक सहयोगी एवं सहकारी समुदाय का रूप दे—विद्यालय में ऐसी प्रवृत्तियों का आयोजन किया जावे जिसमें विद्यालय-समुदाय के सभी सदस्य मिल-जुल कर कार्य करें। सभी छात्रों को बराबरी का अवसर प्राप्त हो। कक्षा में, खेल के मैदान में या स्कूल के सामूहिक कार्यक्रम में सब जगह वे यही समझें कि वे बराबर हैं। प्रत्येक अपना अस्तित्व विद्यालय के लिये जरूरी समझे। यह बात विद्यालय समाज के सभी सदस्यों के लिए बराबर-बराबर लागू होती है।

(४) विद्यालय व्यवस्था, विद्यालय का स्थानीय समुदाय से दृढ़ सम्बन्ध कायम करे—विद्यालय का कार्यक्षेत्र अब विद्यालय सीमा के बाहर समाज तक विस्तृत हो चुका है। इससे विद्यालय स्थानीय समुदाय में रुचि ले, यह जरूरी हो गया है। विद्यालय का यह प्रयत्न तभी सफल हो सकता है जब समुदाय की रुचि भी विद्यालय की ओर आकृष्ट हो। यद्यपि विद्यालय की ओर से ये प्रयत्न हो रहे हैं, परन्तु समुदाय इस दृष्टि से सजग नहीं है। इसमें अनेक समस्याएँ हैं।

इसी कारण इस बिन्दु पर एक स्वतन्त्र अध्याय में चर्चा की गई है।

(५) समवाय शिक्षण की व्यवस्था—बुनियादी विद्यालय की प्रमुख प्रवृत्ति समवाय शिक्षण है। प्रत्येक विद्यालय में इस परिपाटी से शिक्षण-कार्य चले यह जरूरी है। विद्यालय की व्यवस्था में इस कार्यक्रम में पर्याप्त महत्व दिया जावे।

(६) लचीले समय-विभाग-चक्र की व्यवस्था—बुनियादी शाला में समय-विभाग-चक्र की ऐसी व्यवस्था हो कि जिससे बालक के केवल बौद्धिक विकास के स्थान पर उसके सर्वतोमुखी विकास के अवसर उपलब्ध हों।

(७) बालक के सर्वतोमुखी विकास के परीक्षण की व्यवस्था हो—बुनियादी तालीमी शाला के जो उद्देश्य हैं उन्हें वह किस सीमा तक प्राप्त कर पा रही है इसके लिए यह जरूरी है कि उनका परीक्षा में पूरा-पूरा ध्यान रक्खा जावे। उनको परीक्षण में स्थान देने से पाठ्यक्रम और शिक्षण-व्यवस्था को सुधारने में मदद मिलेगी और उद्देश्य भी कार्य रूप में परिणित किये जा सकेंगे। इस क्रम में बालक के सर्वांगीण विकास के परीक्षण की व्यवस्था हमें बुनियादी शाला में करनी चाहिए।

(८) शाला के क्रिया-कलाप की व्यवस्था—बुनियादी शाला को इस क्रम में सामूहिक प्रार्थना, सफाई, सांस्कृतिक कार्यक्रम, पर्वों का आयोजन, वन भ्रमण, समाज सेवा, श्रम-दान आदि अनेक क्रिया-कलापों की व्यवस्था करनी पड़ती है। इन पर विस्तार से चर्चा इसी पुस्तक में अबुनियादी शालाओं को बुनियादी शालाओं में परिवर्तन करने की विधि की चर्चा करते हुए की गई है।

उपसंहार—इस प्रकार हम कह सकते हैं कि उपरोक्त सभी अंगों का समुचित आयोजन हो जाने में ही बुनियादी शाला व्यवस्था की सफलता है। इस सफलता का केन्द्र-बिन्दु है—विद्यालय समाज का जनतांत्रिक गठन। अगर विद्यालय ने, जनतान्त्रिक गठन में शिक्षक-परिषद्, छात्र-परिषद्, और शिक्षक-अभिभावक समिति को सच्चे रूप में जनतान्त्रिक ढांचे पर ढाल लिया, तो विद्यालय के लिए समस्त आयोजनों में सफलता प्राप्त करना सरल हो जावेगा।

सारांश

प्रस्तावना—बुनियादी शाला की व्यवस्था की दृष्टि से बुनियादी शिक्षा के कुछेक महत्वपूर्ण सिद्धान्तों पर विचार करना जरूरी है।

बुनियादी तालीमी शाला की व्यवस्था के प्रमुख सिद्धान्त :—

(१) छात्रों के सर्वतोमुखी विकास का प्रबन्ध।

(२) शिक्षा को वास्तविक, प्रभावपूर्ण और रुचिपूर्ण बनाने का प्रयत्न।

(३) छात्रों में विद्यालय से बाहर के वातावरण के प्रति रुचि जागृत करना।

(४) स्वतंत्रता की भावना का विकास करना और नेतृत्व के अवसर देना।

(५) सहयोगी जीवन-यापन सिखाना।

(६) नागरिकता के गुणों का विकास करना।

(७) जीवन की वास्तविक स्थितियों के आधार पर नवीन ज्ञान देना।
(८) वर्ग रहित, शोषण रहित और न्यायपूर्ण समाज की रचना करना।
(९) लोक हितकारी जनतान्त्रिक जीवन के लिये प्रशिक्षण देना।
(१०) शारीरिक श्रम के लिये आदर की भावनाओं का विकास करना।
(११) सत्य और अहिंसा से परिपूर्ण अनुशासित जीवन-यापन का प्रशिक्षण देना।
(१२) भारतीय संस्कृति के प्रति रुचि उत्पन्न करना।

• विद्यालय व्यवस्था के प्रमुख अंग :—

(१) शाला की व्यवस्था जनतांत्रिक प्रणाली पर चलाना।
(२) सारा कार्य योजनाबद्ध तरीके से चलाना।
(३) विद्यालय समुदाय को एक सहयोगी एवं सहकारी इकाई बनाना।
(४) विद्यालय और समुदाय के दृढ़ सम्बन्ध कायम करना।
(५) समवाय-शिक्षण की व्यवस्था करना।
(६) लचीले समय-विभाग-चक्र की व्यवस्था करना।
(७) सर्वतोमुखी विकास के उद्देश्य के अनुरूप परीक्षण की व्यवस्था करना।
(८) बुनियादी शाला के क्रियाकलापों की व्यवस्था करना।

उपसंहार—विद्यालय-व्यवस्था की सफलता का केन्द्रबिंदु विद्यालय समाज का जनतांत्रिक गठन है, जिसमें शिक्षक-परिषद्, छात्र-परिषद् और शिक्षक-अभिभावक समिति शामिल होते हैं। इन्हें सच्चे जनतान्त्रिक ढांचे पर ढालने से विद्यालय की व्यवस्था सफलता से चलाई जा सकती है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(१) बुनियादी विद्यालय को भिन्न-भिन्न महत्त्वपूर्ण सिद्धान्तों को दृष्टि में रखकर व्यवस्था चलानी चाहिये, इन पर चर्चा कीजिए।

(२) बुनियादी-विद्यालय,बुनियादी-तालीम के सिद्धान्तों को किस प्रकार अपनी व्यवस्था में अपनाता है ? विस्तार से लिखिये।

: ३ :

विद्यालय का घर और समुदाय में सहयोग

विद्यालय और घर में सहयोग—बालक की शिक्षा केवल पाठशाला एवं शिक्षक तक ही सीमित नहीं है। उसकी शिक्षा के कार्य-सम्पादन में शिक्षक को यदि एक हाथ माना जाय तो घर को दूसरा। हां, मनुष्य के हाथों की तरह उनमें बाएं और दाएं हाथों की महत्ता का अन्तर सम्भव हो सकता है। यदि शिक्षक को सीधा (दायां) हाथ माना जाय तो घर या माता-पिता को बायां हाथ, क्योंकि सीधे(दाएँ) हाथ की महत्ता बाएं हाथ की अपेक्षा अधिक है। तद्वत् बालक की शिक्षा में अध्यापक की महत्ता अधिक अवश्य है पर माता-पिता के सहयोग के बिना कार्य-सम्पादन में अध्यापक को वही-कठिनाई होगी जो कि कार्य-सम्पादन करने वाले उस व्यक्ति को जिसके एक ही हाथ है। तात्पर्य यह है कि बालक को शिक्षित बनाने में जहां अध्यापक की जिम्मेदारी अधिक है वहां माता-पिता उससे वंचित नहीं समझे जा सकते। वास्तव में दोनों का पारस्परिक सहयोग इस कार्य को सुगमाति-सुगम बनाकर बालक की शिक्षा एवं उन्नति में सहायक होगा—बालक की शिक्षा के लिए तैत्तारीय उपनिषद में कहा है—'मातृदेवो भव, पितृदेवो भव, आचार्य देवो भव"—माता, पिता और आचार्य को देवता मानो और उनकी आज्ञा का पालन करो। बालक को माता-पिता और शिक्षक की आज्ञा के अनुसार चलने पर ही सफलता मिल सकती है। परस्पर सहयोग के लिये एक ओर माता-पिता को शिक्षक से तथा दूसरी ओर शिक्षक को माता-पिता से सम्पर्क और सहयोग बढ़ाने का प्रयत्न करना चाहिये ताकि वांछित-फल प्राप्त हो सके। दोनो के परस्पर सहयोग की नितान्त आवश्यकता है।

विद्यालय का समुदाय से सहयोग—विद्यालय और समुदाय में निकटता पैदा करना आज के युग की प्रमुख आवश्यकता बन गई है। इससे शिक्षा का कार्य-क्रम अधिक प्रभावपूर्ण बनाने में मदद मिलती है। इससे समुदाय में जनतान्त्रिक दृष्टिकोण को पैदा करने और विकसित करने में सहायता प्राप्त होती है। वैसे भी, शिक्षा की दृष्टि से विद्यालय और समाज दोनों ही शिक्षा के महत्वपूर्ण साधन हैं यद्यपि एक नियमित और नियन्त्रित साधन है तो, दूसरा अनियमित और अनियंत्रित साधन है। "विद्यालय बालक के अनुभवों को नियमित और व्यवस्थित रूप देता है जबकि समुदाय में वही अनुभव बालक को स्वाभाविक रूप में प्राप्त होते हैं। अतः आवश्यक है कि विद्यालय-समुदाय-सम्बन्धों के अधिक उन्नत विकास की ओर ध्यान दिया जावे।"*

यह ध्यान देना बुनियादी शालाओं में और भी ज्यादा जरूरी है क्योंकि

* एडमिनिस्ट्रेशन ऑफ बेसिक एजूकेशन—मिनिस्ट्री ऑफ एजूकेशन पृष्ठ ७३।

इससे सामाजिक वातावरण के अध्ययन में मदद मिलती है। इससे विद्यालय के स्वावलंबन के पक्ष को भी सबल बनाया जा सकता है। समुदाय के जरूरत की वस्तुएँ विद्यालय में तैयार हों और समुदाय उन्हें खपाले। इससे समुदाय की रुचि विद्यालय की ओर बढ़ने पर, विद्यालय अपनी अनेकों आवश्यकताओं की पूर्ति में समुदाय की सहायता ले सकता है।

समुदाय भी लाभ उठायेगा, विद्यालय अपने समाज-शिक्षा समाज सेवा व मनोरंजन कार्यक्रम अधिक रुचि से आयोजित करेगा, इसके कार्यकर्त्ता समुदाय की समस्याओं में ज्यादा रुचि लेना शुरू करेंगे और इससे समुदाय को भी लाभ पहुँचेगा। परंतु आज विद्यालय और घर व समुदाय में सहयोग नहीं है।

सहयोग के अभाव के कारण—अध्यापक को चाहिए कि इस सहयोग के अभाव के कारणों को जाने और उन्हें दूर करने के प्रयत्न करे। सहयोग के अभाव के कतिपय निम्नलिखित कारण हैं—

(१) शिक्षा का अभाव—इसका सर्वप्रथम कारण तो यह है कि समुदाय में अधिकांशत: लोग अशिक्षित हैं। अपनी अज्ञानता के कारण विद्यालय का मूल्य नहीं समझते। इस कारण वे यह तो चाहते हैं कि उनके बालक शिक्षित हों पर उसके लिये स्वयं प्रयत्नशील नहीं रह सकते।

(२) उपेक्षावृत्ति—कई यदि शिक्षित हैं तो बालकों की शिक्षा में अधिक ध्यान नहीं देते। वे बालक को पढ़ाना अपना कर्त्तव्य समझते हैं पर इसके लिए अन्य कोई साधन प्रयोग में नहीं लाते। यद्यपि वे जानते हैं कि उन्हें अपने बालक के लिये शिक्षक से मिलते रहना चाहिये तथापि वे प्रयास नहीं करते। उनकी उपेक्षा-वृत्ति ही उन्हें इस ओर प्रयत्नशील नहीं करती।

(३) शिक्षा की खामियाँ—आज तक भी हमारे विद्यालय, शिक्षा की उपादेयता घर और समुदाय में प्रमाणित नहीं कर पाये हैं। अगर घर के सदस्य यह देखने लगें कि विद्यालय में पढ़ने वाला बालक घर का ऐसा सदस्य बनता है जो दैनिक आदतों में, आपसी व्यवहार में और बड़ों के काम धन्धे में मदद करने में आगे रहता है, तो सभी चाहेंगे कि हमारा बच्चा स्कूल जावे। सभी बच्चे विद्यालय में आ सकें इसके लिये यह भी आवश्यक होगा कि विद्यालय का कार्यक्रम, समय और अवधि समुदाय की आवश्यकता के अनुकूल हो।

(४) लोगों का व्यस्त जीवन—लोग अपने गृहस्थ जीवन तथा जीविकोपार्जन में इतने व्यस्त रहते हैं कि वे इच्छा करने पर भी नहीं मिल सकते। पर यह अवश्य है कि वे लगन नहीं रखते अन्यथा मिलते रहना असम्भव नहीं।

(५) शिक्षकों की उपेक्षावृत्ति—माता-पिता की तरह शिक्षक भी उपेक्षित ही रहते हैं। वे भी माता-पिताओं से मिलना अपना कर्त्तव्य नहीं समझते, और इसीलिये प्रयास भी नहीं करते। शिक्षक यह जानते हैं कि माता-पिताओं से मिलकर बालकों की शिक्षा में वे प्रगति कर सकते हैं फिर भी वे उदासीन रहते हैं। इस उदासीनता का कारण अध्यापक का वेतन-स्तर निम्न होना, समाज में सम्मान कम होना आदि हैं।

(६) शिक्षकों में अनुभवों का अभाव—शिक्षक को ऐसा अनुभवी होना

चाहिये कि समाज के व्यक्ति उससे अपनी समस्याओं का हल पूछें। पर आज के *शिक्षक में इस दृष्टि से बड़ी भारी कमियाँ हैं जिसके कारण कोई व्यक्ति उनसे अपनी* समस्या के हल में सम्मति चाहने नहीं आता।

(७) **शाला में पितृ-अभिभावक सम्मेलनों का अभाव**—शाला की ओर से भी ऐसे आयोजन समय-समय पर नहीं किए जाते जिनमें माता-पिता और संरक्षकों का सम्मेलन हो। वे मिलकर बैठ सकें, बातचीत कर सकें, विचार-विमर्श कर सकें तथा अपने बालकों की प्रगति के बारे में अध्यापक से जानकारी प्राप्त कर सकें।

सहयोग और सम्पर्क वृद्धि के साधन—समाज सम्पर्क बढ़ाने में निहित है। अतः अध्यापकों को चाहिए कि वे स्वयं छात्रों के माता-पिता के साथ सम्पर्क बढ़ाने का प्रयत्न करें, उनसे सहयोग प्राप्त करें। उनसे सहयोग प्राप्त करने के लिए अध्यापक प्रयत्नशील रहें। माता पिताओं तथा संरक्षकों से सम्पर्क बढ़ाने के लिये निम्नलिखित साधन प्रयोग में लाये जा सकते हैं:—

(१) **शाला में प्रवेश के समय**—शाला में प्रवेश चाहने वाले बालकों के माता-पिता या अभिभावकों को उस समय बुलाया जाना चाहिये। उस समय उनके साथ होने पर ही बालकों को शाला में प्रवेश दिया जाना चाहिए अन्यथा नहीं। उस समय उनसे साथ सहानुभूति का व्यवहार दिखाकर उनसे परिचय और सम्पर्क स्थापित किया जा सकता है। साथ ही उस समय उनको सहयोग प्रदान करने का उत्तरदायित्व भी समझाना चाहिये।

(२) **उत्सवों पर निमन्त्रण**—शाला में आयोजित विभिन्न उत्सवों पर बालकों (माता-पिता और संरक्षकों) को निमन्त्रित करना चाहिए। साथ ही छात्रों को यह कहना चाहिये कि वे अपने माता-पिताओं को वहाँ आने के लिये सानुग्रह निवेदन करें। माता-पिताओं के आने पर उनके बालकों के विषय में बातचीत करनी चाहिए।

(३) **संरक्षक सम्मेलन**—शाला के विद्यार्थियों के माता-पिता तथा अभिभावकों का सम्मेलन वर्ष में दो या तीन बार अवश्य करना चाहिये। इस सम्मेलन में छात्रों द्वारा मनोरंजक कार्यक्रम, *एकांकी नाटक, विभिन्न प्रतियोगितायें* आदि की जानी चाहियें, साथ ही जलपान आदि का आयोजन भी हो। छात्रों के कार्य की प्रदर्शनी भी लगाई जाए। छात्रों के माता-पिताओं से उस समय उनके बालकों के व्यवहार, अध्ययन, गृह-कार्य, खेल की प्रगति, निश्चित कार्य आदि के विषय में बातचीत करनी चाहिए।

(४) **संरक्षक समिति**—अध्यापकों को चाहिये कि प्रयत्न कर माता-पिता और अभिभावकों की एक समिति का निर्माण करायें उसकी कार्यकारिणी बना दी जाए। यह समिति विद्यालय की उन्नति में सहायक होगी। शाला के पुस्तकालय में वृद्धि, वाचनालय में वृद्धि, अनुशासन बनाये रखने में सहयोग आदि कार्यों में यह समिति सहायता दे सकेगी। माता-पिताओं से सम्पर्क वृद्धि का यह तरीका अधिक सफल सिद्ध होगा।

(५) **प्रगति-पत्रों द्वारा**—छात्रों का मासिक प्रगति-पत्र जिसमें बालकों की सभी प्रवृत्तियों का पूर्ण लेखा-जोखा हो माता-पिता तथा संरक्षकों के पास भेजा जाना चाहिये। बालक ने कौन-कौन से उत्तरदायित्व पूर्ण किये, कौन से पूर्ण किये, क्या दण्ड दिया गया, अध्ययन की प्रगति कैसी है, किन विषय

। कमजोर है, माता-पिता के लिये सुझाव आदि सभी का उल्लेख प्रगति-पत्र में होना
चाहिये जिससे माता-पिता तथा संरक्षक बालक की गतिविधि के बारे में पूर्णत:
जानकारी प्राप्त कर सकें।

(६) कक्षाध्यापक का संरक्षकों से व्यक्तिगत सम्पर्क—प्रत्येक अध्यापक एक
क्षा का कक्षाध्यापक बना दिया जाना चाहिए तथा कक्षाध्यापक का यह कर्त्तव्य
होना चाहिये कि दिन में कम से कम एक छात्र के संरक्षक से अवश्य मिले। इस प्रकार
क माह में वह अपनी कक्षा के सभी छात्रों के संरक्षकों से एक बार अवश्य मिल
गा। इसके साथ ही उस अध्यापक को यह भी चाहिए कि उसी कक्षा को पढ़ाने
ले अन्य अध्यापकों से भी वह बालकों के बारे में पूछ-ताछ करता रहे ताकि वह
नकी प्रगति के बारे में माता-पिता या संरक्षक को जानकारी करा सके।

(७) सोशल सर्विस लीग की स्थापना—विद्यालय इस संस्था की अपने यहां
र्फ इसी उद्देश्य से स्थापना करे कि वह समाज-सेवा के कार्यों को व्यवस्थित रूप
चला सके। पहले समाज की जरूरतों का पता लगाया जावे कि कहां-कहां और
कैसे-कैसे मदद की जाने की जरूरत है। फिर समाज को बताया जावे कि इस कार्य
विद्यालय समाज की मदद करना चाहता है। फिर समय निश्चित किया जावे।
माज को इससे अवगत कराया जावे और योजना को कार्यान्वित किया जावे। इस
र में गांवों की गलियों की सफाई, महामारी के समय सेवा कार्य, मेले पर उसमें
लोगों की सहायता करना, आदि अनेक कार्य किये जा सकते हैं। इस कार्यक्रम
समुदाय पर अधिक प्रभाव तभी पड़ सकता है जब विद्यालय समाज की तात्का-
क आवश्यकताओं की पूर्ति में मदद करे। इन आवश्यकताओं के प्रति विद्यालय को
ग रहना पड़ेगा। सुविधानुसार विद्यालय की इस संस्था (सोशल सर्विस लीग)
ग्राम के एक या दो प्रतिनिधियों को भी शामिल किया जा सकता है, जिससे
दाय की आवश्यकताओं के बाबत व्यावहारिक जानकारी मिलती रह सके और
तविक आवश्यकताओं को दृष्टि में रखते हुए सेवा की जा सके।

इन्हीं कतिपय तरीकों से समुदाय विद्यालय की ओर आकृष्ट हो सकता है।

सामाजिक-आर्थिक सर्वेक्षण और उसका महत्व—विद्यालय जिस समुदाय की
। करता है उसके सामाजिक और आर्थिक पहलुओं पर भी उसकी पूरी जानकारी
ी जरूरी है। मोटे रूप में ये ही दो आधार हैं जिनको दृष्टि में रखकर विद्यालय
ी दैनिक समय, शिक्षण सामग्री, उद्योग, समाज सेवा कार्यक्रमों का निर्धारण कर
ता है। इस दृष्टि से विद्यालय को स्थानीय समुदाय की सामाजिक-आर्थिक
क्षण की व्यवस्था करनी चाहिए। सर्वेक्षण के निम्न दो भाग होने चाहिएं—

(क) कौटुम्बिक संकलन—इस क्रम में प्रत्येक कुटुम्ब के सदस्यों की संख्या,
कं आय, उसकी मदें वार्षिक खर्चा, उसकी मदें, कुटुम्ब के पास पशुओं की संख्या,
र समय, फुर्सत का समय, धर्म, त्यौहार, शादी-ब्याह या गमी में खर्च आदि-आदि
तों की जानकारी इकट्ठी की जावे।

(ख) सामूहिक अंक संकलन—इस क्रम में गांव की जनसंख्या, कुटुम्ब-संख्या,
। जातियां, स्कूल, पढ़ने वाले बालक-बालिकाओं की संख्या, साक्षर प्रौढ़ों की

संख्या, गाँव की कठिनाइयाँ आदि-आदि ।

इस कार्य के लिए फार्म का नमूना परिशिष्ट 'ग' पर दिया गया है जिस विस्तृत जानकारी उपलब्ध की गई है । इस जानकारी के अध्ययन से ही विद्यालय समझ सकेगा कि किन-किन क्षेत्रों में विशेषतः काम करने की जरूरत है। ऐसा सकल गाँव का समय-समय पर होता रहने से ग्राम के आर्थिक और सामाजिक विकास को जाँचा जा सकता है और विद्यालय उस अनुसार अपने कार्यक्रमों को मोड़ दे सकता है

उपसंहार—अतः हम कह सकते हैं कि विद्यालय, घर और समुदाय में सहयोग आज की प्रमुख आवश्यकता है और इससे तीनों को ही लाभ होना निश्चित है ।

सारांश

विद्यालय और घर में सहयोग—बालक की शिक्षा का भार शाला और घर दोनों पर है अतः दोनों में परस्पर सहयोग आवश्यक है ।

विद्यालय का समुदाय से सहयोग—विद्यालय अगर शिक्षा का नियन्त्रित साधन है तो समाज अनियन्त्रित साधन है । प्रत्येक द्वारा दूसरे को मदद देने में ही दोनों की सफलता है । दोनों ही लाभान्वित होते हैं । अतः जरूरी है कि ये एक-दूसरे में पूरी-पूरी रुचि लें ।

सहयोग में अभाव के कारण—सहयोग में अभाव के कारण हैं—(१) शिक्षा का अभाव, (२) उपेक्षा वृत्ति, (३) शिक्षा की खामियाँ, (४) लोगों का व्यस्त जीवन, (५) शिक्षकों की उपेक्षा वृत्ति, (६) शिक्षकों में अनुभव का अभाव, (७) पितृ-अभिभावक सम्मेलनों का अभाव ।

सहयोग में वृद्धि के साधन—(१) शाला-प्रवेश का समय, (२) उत्सव, (३) संरक्षक सम्मेलन, (४) संरक्षक समिति, (५) प्रगति-पत्र, (६) कक्षाध्यापकों का संरक्षकों से सम्पर्क, (७) सोशल सर्विस लीग ।

सामाजिक-आर्थिक सर्वेक्षण—विद्यालय अपने कार्यक्रमों को समुदाय की जरूरत के अनुसार ढाले, इसके लिए इसका भारी महत्व है । इसे दो भागों में किया जावे—(क) कौटुम्बिक संकलन, (ख) सामूहिक संकलन ।

उपसंहार—विद्यालय, घर और समुदाय में सहयोग आज के युग की अनिवार्यता है ।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(१) संरक्षकों से सहयोग की महत्ता प्रकट करते हुए वर्तमान स्थिति में सहयोग के अभाव के कारणों पर प्रकाश डालिए ।

(२) बुनियादी शाला में संरक्षकों से सम्पर्क स्थापित करने के लिए अध्यापक में क्या-क्या विशेषताएँ होनी चाहिएँ तथा किस प्रकार सम्पर्क बढ़ाया जाना चाहिए ?

—:•:—

: ४ :

बुनियादी शाला का सामुदायिक विकास में योग

प्रस्तावना—जब हम शिक्षा के द्वारा समाज के निर्माण की बात स्वीकार करते हैं तो यह भी स्वीकार करना जरूरी होता है कि विद्यालय को अपने दायरे में ही सीमित रहकर समाज-निर्माण का कार्य करते रहने के बजाय अब समय आ गया है कि वह अपने दायरे को समुदाय तक बढ़ावे । सामुदायिक कार्यक्रमों में सक्रिय भाग ले ।

सामुदायिक कार्यक्रम की परिभाषा—सामुदायिक कार्यक्रम क्या है—यह प्रश्न समाज शिक्षा के, गंगाजल विद्यापीठ सेमीनार[1] में उठाया गया था । इस अवसर पर सभी एक मत थे कि—"सामुदायिक कार्यक्रम एक प्रक्रिया है, जिसके द्वारा समुदाय की, एक इकाई की तरह काम करने की शक्ति, ज्यों-ज्यों वह एक या अधिक सामुदायिक समस्याओं पर काम करता है, लगातार बढ़ती जाती है ।"

अधिक स्पष्टता से सामुदायिक कार्यक्रम को हमें एक ऐसी प्रक्रिया कहना चाहिए जिससे समुदाय के सदस्यों में अपनी आवश्यकताओं और उद्देश्यों को समझने में मदद मिलती है । तत्पश्चात् वे इन्हें पूरी करने एवं प्राप्त करने को तत्पर होते हैं । मिल-जुल कर कार्य करते हैं । सफलता प्राप्त करते हैं और सहयोग का दृष्टिकोण और परम्परा का समाज में विकास और प्रसार करते हैं ।

सामुदायिक कार्यक्रमों की ओर अग्रसर होने की प्रणालियाँ—विद्वानों ने इस बाबत भी गहनता से विचार किया है और अनेक सिद्धान्त सुझाए हैं । ये सिद्धान्त निम्नलिखित हैं:—

(क) विशेष प्रवृत्ति प्रणाली—इस क्रम में समुदाय की सबसे महत्वपूर्ण एक या दो आवश्यकताओं को पहचाना जावे । उन पर कार्य करने की योजना बनाई जावे । उसके अनुसार काम किया जावे । सफलता प्राप्त कर लेने पर फिर अन्य आवश्यकताओं को बारी-बारी से लिया जावे और उन पर कार्य किया जावे । इस तरीके से कोई एक व्यक्ति, या संस्था, या व्यक्तियों का इस कार्य के करने के लिए तत्पर समूह कार्य करता रह सकता है ।

(ख) क्षेत्रीय-प्रणाली—इस क्रम में समुदाय की किसी एक आवश्यकता को छोटकर उस पर कार्य करना शुरू करने की बजाय किसी एक क्षेत्र को चुना जाता है । उस क्षेत्र में काम करने वाली समस्त संस्थाओं, स्रोतों एवं साधनों का सहयोग प्राप्त किया जाता है और व्यापक सुधार का कार्य शुरू किया जाता है ।

(ग) शिक्षक-प्रक्रिया प्रणाली—इस क्रम में हम एक ऐसी प्रणाली को

---

1. यह सेमीनार दिनांक २६ से २६ अक्टूबर १९६० तक गंगाजल विद्यापीठ, अलियाबाद गुजरात में हुआ था ।

समुदाय में प्रोत्साहित और विकसित करना चाहते हैं, जिसमें सारे समुदाय के लोग अपनी समस्याओं को पहचानने, और उनके हल के लिए कार्य करने को तत्पर हों।

कौन-सी प्रणाली अच्छी है ?—वैसे तो प्रत्येक तरीके की अपनी-अपनी अच्छाइयाँ और कमियाँ हो सकती हैं परन्तु यह भी स्पष्ट ही है कि शिक्षा के अभाव में कोई भी तरीका वांछित सफलता नहीं प्राप्त कर सकता है और जब हम इस दृष्टि से सोचते हैं कि विद्यालय किस तरीके को अपनावे तो हमें—"शिक्षण-प्रक्रिया द्वारा सामुदायिक कार्यक्रमों मे योग" को ही महत्व देना पड़ेगा।

शिक्षण-प्रक्रिया प्रणाली द्वारा सामुदायिक कार्यक्रमों में योग का तरीका क्यों श्रेष्ठ है ?—इस तरीके के अन्दर कई अच्छाइयाँ हैं, इसी कारण बुनियादी विद्यालय या शिक्षक को इसे अपनाना लाभकारी रहता है:—

(*i*) इस तरीके में सारे समुदाय को शामिल किया जाता है, अतः इसमें सभी रुचि लेते हैं। यह विशेष-प्रवृत्ति प्रणाली या क्षेत्रीय प्रणाली की तरह एकांगी या सीमित-क्षेत्रीय नहीं है।

(*ii*) यह लोगों को, अपनी समस्याएँ खुद पहचानने के अवसर देता है। अतः लोग उन्हें अपनी समस्याएँ मानकर उन पर काम करते हैं और अधिक सहयोग मिल पाता है।

(*iii*) यह लोगों को अपने कार्यक्रम खुद बनाने का अवसर देता है जिससे उन में नेतृत्व का विकास होता है।

(*iv*) कार्यक्रमों को समुदाय द्वारा ही पूरा कराने का प्रयत्न किया जाता है। अतः बाद में भी समुदाय उन उपलब्धियों को अपनी समझता है और उनकी सुरक्षा के लिये सतर्क रहता है।

ये ही कतिपय कारण हैं जिससे यह प्रणाली सर्वश्रेष्ठ मानी जाती है।

सामुदायिक कार्यक्रमों में सफलता कब प्राप्त होती है ?—यद्यपि हम शिक्षण-प्रक्रिया प्रणाली को सामुदायिक कार्यक्रमों के लिये स्वीकार कर चुके हैं परन्तु ऐसी अनेक बातें हैं जिनके लिये हमें सावधान रहना पड़ेगा। इन सावधानियों से उद्देश्य-प्राप्ति सरल हो सकेगी। इस दृष्टि से निम्न बिन्दु महत्वपूर्ण हैं:—

(*i*) समुदाय के लोगों में आवश्यकताओं की स्पष्टता, पूर्ति के लिए इच्छा की वृत्ति, पूर्ति हेतु सब प्रकार का त्याग करने की तत्परता और जिम्मा उठाने की उत्सुकता का होना जरूरी है।

(*ii*) तकनीकी व आर्थिक सहायता की सामयिक उपलब्धि।

(*iii*) विभिन्न भेद-भाव भूलकर सामुदायिक हित में कार्य करने की इच्छा मनोवृत्ति।

(*iv*) सर्व-स्वीकृत, प्रगतिशील, जनतान्त्रिक और उदार नेतृत्व।

(*v*) समुदाय में शिक्षा का स्तर।

(*vi*) समुदाय की भावात्मक एकता।

(*vii*) समुदाय व समुदाय के बाहर लोगों मे आपसी सहयोग की भावना।

अगर उपरोक्त स्थिति पैदा करने में पूरी-पूरी सावधानी बरती जावे तो फलता प्राप्ति निश्चित हो जाती है।

शिक्षक का सामुदायिक कार्यक्रमों में जिम्मा—जब हम शिक्षक द्वारा सामुदायिक कार्यक्रमों में योग की बात स्वीकार करते है तो यह जरूरी होता है कि इस क्रम में उसकी कुछेक महत्वपूर्ण जिम्मेदारियों को समझ लिया जावे। उसका सबसे पहला जिम्मा तो शिक्षक की तरह कार्य करने का है ही। इसके अलावा उसी का यह जिम्मा भी है कि वह लोगों को अपनी समस्याओं को सोचने और पहचानने को प्रोत्साहित करे। वह समस्याओं का हल ढूंढने के तरीकों की जानकारी दे। जो हल ढूंढे जावें उनका वह प्रेरक, व्यवस्थापक और मार्गदर्शक भी बने। कार्य के पूरा होने पर वह उसके मूल्यांकन का तरीका भी लोगों को समझा दे, जिससे लोग सफलताओं को समझें और असफलताओं के प्रति जागरूक रहें।

क्या बुनियादी शाला अपने यहाँ कुछेक प्रवृत्तियों को जन्म देकर सामुदायिक कार्यक्रमों में योग दे सकती है?—आजकल हमारे समाज में विद्यालय द्वारा सामुदायिक कार्यक्रमों में योगदान की दृष्टि से दो प्रमुख विचारधाराएँ कार्य कर रही हैं। एक विचारधारा तो यह है कि विद्यालय ही अपने यहाँ प्रवृत्तियाँ शुरू करें। इस दृष्टि से सोचने पर अनेकों प्रवृत्तियाँ सामने आती हैं जैसे—ग्राम की सफाई, स्वस्थ जीवन का समाज को ज्ञान देना, समाज शिक्षा केन्द्र चलाना, विद्यालय के वाचनालय की सेवाएँ ग्राम के लिये उपलब्ध कराना, सहकारीता यंकमो की लोगों को जानकारी देना, स्त्री-शिक्षा केन्द्र स्थापित करना, सामाजिक कुरीतियों को दूर करने के लिये लोगों से आग्रह करना, पशुपालन और कृषि के उन्नत तरीकों की जानकारी देना, गाँवों में उच्च आदर्शों एवं व्यवहार सम्बन्धी पोस्टर्स लगाना, ग्राम के लिए मनोरंजन कार्यक्रमों की व्यवस्था करना आदि आदि। परन्तु इन सब में यही देखा गया है कि ग्राम के हित के इन कार्यक्रमों में भी वहाँ के लोग रुचि नहीं लेते। जो थोड़े से लोग उनमें भाग लेते हैं वे भी उन्हें विद्यालय का काम समझ करके ऐसा करते हैं। इसके अलावा कई बार एक ही स्थान पर अलग-अलग स्रोत या संस्थाएँ एक ही प्रवृत्ति को चलाती है इससे भी शक्ति का दुरुपयोग होता है। कभी-कभी तो विद्यालय भी और विकास खण्ड दोनों एक छोटे से स्थान पर एक ही प्रवृत्ति को चलाने लगते हैं।

दूसरी विचारधारा यह है कि विद्यालय और समाज, या सामुदायिक विकास खण्ड, या इस क्षेत्र में काम करने वाले सब स्रोत आपसी सहयोग से कार्य करें और सारे कार्य में स्थानीय समुदाय को ही अगुआ बनाया जावे। इस दृष्टि से दो बातें महत्वपूर्ण हैं.—

"(क) अधिक से अधिक शिक्षकों को सामुदायिक विकास कार्यक्रमों में भाग लेना चाहिए। इनके सूक्ष्म बिन्दु भी सामुदायिक विकास कार्यकर्ताओं की राय से तैयार किये जावें।

(ख) बुनियादी शाला को ऐसे कार्यक्रमों में तालमेल बिठाने वाली इकाई की तरह कार्य करना चाहिए। अगर बुनियादी शाला सामुदायिक

विकास कार्यक्रम का केन्द्र बनती है तो शैक्षणिक कार्यक्रमों का सामुदायिक विकास विभाग के कार्यक्रमों से बहुत अच्छी तरह तालमेल बिठाया जा सकता है।"*

जनतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण, शिक्षक और सामुदायिक विकास कार्यक्रम—सामुदायिक विकास कार्यक्रम को अधिक प्रभावपूर्ण बनाने और राष्ट्रीय स्वतंत्रता को ग्राम स्तर तक पहुँचाने के दो बड़े उद्देश्यों को लेकर शासन में जनतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण किया गया है। इस स्थिति में विद्यालय द्वारा जनतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण योजना के अन्तर्गत चुने हुए पंचों एवं सरपंचों के साथ संपर्क द्वारा ही जनसमुदाय की आवश्यकताएँ समझी जा सकती हैं। इन प्रतिनिधियों से सहयोग भी सरलता से उपलब्ध हो सकता है क्योंकि सामुदायिक विकास का कार्य करना इनका भी जिम्मा है। इस तरह जनतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण ने बुनियादी शाला द्वारा सामुदायिक विकास कार्यक्रम में योगदान का कार्य और भी सरल बना दिया है और विद्यालय को इस स्थिति का पूरा-पूरा लाभ उठाना चाहिए।

उपसंहार—इस प्रकार यह स्पष्ट है कि आज के सामुदायिक विकास-कार्यक्रमों में शिक्षक का स्थान बड़ा महत्वपूर्ण है। शिक्षक के इन कार्यक्रमों में समुचित योगदान से धीरे-धीरे बुनियादी शाला सामुदायिक विकास के शैक्षणिक कार्यक्रमों का केन्द्र बनेगी और लोग शिक्षक और विद्यालय को अपने क्षेत्र के लिए आवश्यक ही नहीं वरन् अनिवार्य भी मानने लगेंगे।

सारांश

प्रस्तावना—अब समय आ गया है कि शिक्षक विद्यालय की सीमा से बाहर आवे और सामुदायिक विकास कार्यक्रम में भी सक्रिय भाग ले।

सामुदायिक विकास की परिभाषा—"सामुदायिक कार्यक्रम एक प्रक्रिया है, जिसके द्वारा समुदाय भी, एक इकाई की तरह काम करने की शक्ति, ज्यों-ज्यों वह एक या अधिक सामुदायिक समस्याओं पर काम करता है, लगातार बढ़ती जाती है।"

सामुदायिक कार्यक्रमों की ओर अग्रसर होने की प्रणालियाँ:—(क) विशेष प्रवृत्ति प्रणाली, (ख) क्षेत्रीय प्रणाली, (ग) शिक्षण-प्रक्रिया प्रणाली।

कौन सी प्रणाली अच्छी है?—शिक्षण-प्रक्रिया प्रणाली ही श्रेष्ठ है।

शिक्षण-प्रक्रिया प्रणाली ही क्यों श्रेष्ठ है?—क्योंकि—(i) इसमें सारा समुदाय शामिल होता है, (ii) लोग खुद समस्याएँ पहचानते हैं और उन्हें अपनी मानते हैं, (iii) कार्यक्रम खुद बनाते हैं, और (iv) खुद ही उसको पूरा भी करते हैं।

सामुदायिक विकास कार्यक्रमों में कब सफलता मिलती है?—(i) जब लोग खुद अपने पैरों पर खड़े हों, (ii) सब प्रकार की तकनीकी व आर्थिक

*एडमिनिस्ट्रेशन ऑफ बेसिक एजुकेशन—मिनिस्ट्री ऑफ एजूकेशन—पृ० ७६।

सहायता समय पर मिले, (*iii*) लोग भेदभाव भूलकर काम करें, (*iv*) सबल और सर्व स्वीकृत नेतृत्व उपलब्ध हो, (*v*) समुदाय में शिक्षा का स्तर सन्तोषजनक हो, (*vi*) समुदाय में भावनात्मक एकता हो, (*vii*) समुदाय और बाहरी स्रोतों में सहयोग हो।

शिक्षक का सामुदायिक विकास कार्यक्रमों मे जिम्मा—शिक्षक का इस क्षेत्र में बहुमुखी जिम्मा है।

क्या बुनियादी शाला अपने यहां कुछेक प्रवृत्तियों को जन्म देकर इन कार्यक्रमों में योग दे सकती है ?—एक विचार तो यह है कि विद्यालय प्रवृत्तियाँ अपने यहाँ शुरू कर दे। दूसरा यह कि इस काम में स्थानीय समुदाय को ही जिम्मा सुपुर्द किया जावे। दूसरा तरीका इसलिये अच्छा है कि सहयोग सरलता से मिलता है।

जनतान्त्रिक-विकेन्द्रीकरण, शिक्षक और सामुदायिक विकास कार्यक्रम—जनतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण ने शिक्षक का काम सरल किया है।

उपसंहार—इन कार्यक्रमों में योगदान देकर शिक्षक अपना और विद्यालय दोनों का स्थान समाज में महत्वपूर्ण बना सकता है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(१) सामुदायिक विकास कार्यक्रम में योगदान की कौन कौन-सी प्रणालियाँ हैं? इनमें कौन-सी प्रणाली श्रेष्ठ है?

(२) शिक्षक द्वारा सामुदायिक विकास कार्यक्रमों में योगदान देना आज के युग में क्यों अनिवार्य हो गया है? विस्तार से उत्तर दीजिये।

—◦—

: ५ :

प्रधानाध्यापक

प्रस्तावना—प्रत्येक शाला में अध्यापक होते हैं, छात्र होते हैं, लेखक होते हैं और चतुर्थ श्रेणी कार्यकर्ता होते हैं। अनेकता के इस छोटे समाज में एकता लाने के लिये एक प्रधानाध्यापक होता है। अकेला व्यक्ति, अगर उसका व्यक्तित्व संगठित नहीं है, तो जीवन मे सफल नही हो सकता, फिर समाज के वे कार्य जो एक से अधिक व्यक्तियो द्वारा मिल कर किये जाते हैं, संगठन के बिना कैसे पूर्ण हो सकते हैं ? इस दृष्टि से प्रत्येक ऐसे कार्य में जहाँ एक समूह कार्य करता है, विभिन्न अंगों को एक सूत्र मे बाँध कर अनेकता मे एकता स्थापित करने के हेतु एक व्यक्ति को चुना जाता है जो यथासम्भव उन सब परिस्थितियों से गुजर कर आया हो, जिनमे उस समूह के अन्य सदस्य गुजर रहे हों। इस प्रकार उसमें अनुभव के साथ-साथ इस अनुभव को समाज की भलाई के लिये विभिन्न अंगों के बीच में एक कड़ी बन कर सूझबूझ के साथ प्रयोग मे लाने एव कार्यान्वित करने की शक्ति का होना भी जरूरी है। इस उत्तरदायित्व की दृष्टि से प्रधानाध्यापक मे कुछ विशेषताएँ होनी चाहियें, जिनके द्वारा वह सफलता से अपनी जिम्मेदारी को निभा सके।

प्रधानाध्यापक किसे बनाया जावे ?—आज शिक्षा का विस्तार हो रहा है। उच्च स्थान प्राप्ति के लिये शिक्षकों में होड़ लगी हुई है। साधारणतः प्रत्येक शिक्षक का निकटस्थ उद्देश्य, कैसी शाला का प्रधान बनना, होना है। पर ऐसे शिक्षकों में कितने इस स्थान के योग्य हैं ? यही एक प्रश्न है। एक कहावत के अनुसार कुछ व्यक्ति उत्तरदायित्व का कार्य करने को पैदा हुए है, कुछ अपने आपको इस योग्य बना लेते हैं परन्तु कुछेक पर तो उत्तरदायित्व थोप दिया जाता है। जिन पर यें उत्तरदायित्व थोप दिया गया है वे शिक्षकों के प्रधान तो बने रह ही सकते हैं। सहायक अध्यापक शाला मे कार्य भी करेंगे पर शाला-समाज के सब अंगो को एक सूत्र में बाँधना ऐसे व्यक्तियो की शक्ति के बाहर की बात है। तभी तो अनेकों शालाओं का समाज छोटे-छोटे समूहों में बँटा हुआ होता है। और प्रधानाध्यापक सम्पूर्ण शाला-समाज का प्रधान होने के स्थान पर उसके एक समूह-मात्र से अपना सम्बन्ध जोड़कर शाला-समाज को सहयोग एव भ्रातृभाव का नमूना बनाने के बजाय भय, द्वेष, असहयोग, वाक्-युद्ध और यहाँ तक कि मल्लयुद्ध का क्षेत्र बना देता है। कोई भी शिक्षण संस्था ऐसे प्रधान से बचना चाहेगी और बुनियादी-शाला का काम तो ऐसे प्रधान से चल पाना सम्भव नहीं है। बुनियादी शाला का प्रधान एक ऐसा प्रतिभाशाली व्यक्ति होना चाहिए जो साधारण शिक्षक के गुणों से सम्पन्न होने के साथ आत्म-विश्वास ... सहयोग, जनतान्त्रिकता, न्यायप्रियता, अध्ययनशीलता, सेवा और त्याग की ...। उसके व्यक्तित्व से शिक्षक सर्वप्रथम प्रभावित होंगे और अपने जीवन को

भी उसी प्रकार बनाने की प्रेरणा पायेंगे। शिक्षक के जीवन में जिन गुणों का समावेश होना चाहिए उन गुणों का वर्णन शिक्षक शीर्षक अध्याय के अन्तर्गत किया गया है। इन गुणों के अतिरिक्त प्रधानाध्यापक में जिन गुणों की अपेक्षा की जाती है, वे इस प्रकार हैं :—

प्रधानाध्यापक के गुणों का समावेश—

(१) आत्म-विश्वास—आत्म-विश्वास सफलता की कुंजी है। जो अपने पर, अपनी आत्मा पर व अपने निर्णयों पर विश्वास रख सकता है वही दूसरों के विश्वास का पात्र भी बन सकता है। प्रधानाध्यापक के व्यक्तित्व में आत्म-विश्वास बड़ा महत्वपूर्ण है। ऐसा ही व्यक्ति धीरे-धीरे दूसरों में भी विश्वास पैदा करेगा। इस तरह वह शाला-समाज का विश्वास प्राप्त कर सकता है। इसी विश्वास के बल पर प्रधानाध्यापक शाला पर शासन एवं व्यवस्था चलाता है। अतः प्रधानाध्यापक की सफलता इसी में है कि वह शाला-समाज के विश्वास को जीत ले।

(२) सहानुभूति—शाला के विभिन्न व्यक्ति एक ही कुटुम्ब के सदस्य हैं। एक की कठिनाई दूसरे की कठिनाई है। शाला में अनेकों बार ऐसे अवसर आते हैं जबकि प्रधान दूसरों के दृष्टिकोण को नहीं समझ पाता। ऐसे अवसर पर विचारों का विरोध होना स्वाभाविक है। प्रधानाध्यापक को प्रत्येक ऐसे अवसर पर बड़ी सहानुभूति के साथ परिस्थिति का अध्ययन करना चाहिये। अगर कोई क्रान्तिकारी परिवर्तन करना है तो उसके लिए शाला-समाज को एक-एक कदम आगे बढ़ा कर उस ओर अग्रसर करना चाहिए। प्रत्येक ऐसे व्यक्ति को, जो नियम को तोड़ता है, उसे यह अनुभव कराना चाहिए कि वह गलती कर रहा है। उसे अपना सुधार करने का पर्याप्त अवसर दिया जाना चाहिए। इतना प्रयत्न करने पर भी किसी को दण्ड देना पड़े, ऐसी स्थिति आ सकती है फिर भी उस अवसर पर भी दण्डित व्यक्ति को प्रत्येक सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण से यह समझाया जाना चाहिए कि उसके दण्ड का कारण कोई अन्य व्यक्ति या प्रधानाध्यापक नहीं वरन् वह स्वयं है। प्रधानाध्यापक का व्यवहार सहानुभूतिपूर्ण होना बड़ा जरूरी है।

(३) सहयोग—किसी ने ठीक कहा है कि अगर १ को १ का सहयोग मिल जावे तो ग्यारह हो जाते हैं। इसी प्रकार शाला समाज के सब सदस्य अगर एक कतार में बराबरी से खड़े होकर सहयोग से काम करें तो सारी शक्ति रचनात्मक कार्य में लगाई जा सकती है। बड़े-बड़े प्रयत्न करने पर भी जो काम सम्भव नहीं उसका पूर्ण होना दिनचर्या का अंग बन सकता है। यह तभी सम्भव है जब प्रधानाध्यापक अपने को एक बहुत बड़ा अधिकारी समझने की बजाय एक सहयोगी समझे। वह यह कल्पना करना छोड़ दे कि वह जो चाहेगा वही होगा। उसे अपने साथियों की राय से अपनी नीति निर्धारित करनी चाहिए एवं प्रत्येक महत्वपूर्ण निर्णय लेते समय अपने साथियों की सम्मति प्राप्त करनी चाहिए। शिक्षकगण अपनी निष्पक्ष सम्मति दें। इसके लिए प्रधानाध्यापक का उनसे निकटस्थ सम्बन्ध होना जरूरी है। शिक्षकों के स्वतंत्र मत का प्रधानाध्यापक को आदर करना चाहिए। शिक्षकों के मत का आदर ही धीरे-धीरे प्रधानाध्यापक और साधारण शिक्षक के बीच की खाई को

समाप्त करेगा और एक को अधिकारी और दूसरे को अधीनस्थ कार्यकर्त्ता की स्थिति से सहयोगी एवं साथी का रूप दे सकेगा।

(४) जनतान्त्रिकता—"शाला का संचालन" नामक पाठ में इस विषय में पर्याप्त विवेचन हो चुका है। शाला-समाज के सब सदस्यों का सहयोग केवल वही प्रधानाध्यापक प्राप्त कर सकता है, जो सबको विचारों की स्वतन्त्रता का अवसर दे पाता है। वह उन्हें सही एवं शाला-हित के पथ पर चलने के लिए अपने विचारों द्वारा प्रेरित करे। या अगर विरोधियों का मत सही है, अधिक लोगों को मान्य है, और शाला के हित में है तो उसे भी उस मत को स्वीकार करने एवं कार्यान्वित करने को तैयार रहना चाहिये। जनतन्त्र में सबको अपने विचार प्रकट करने का पूर्ण अधिकार है। मतदान होने पर बहुमत का निर्णय सर्वमान्य निर्णय बन जाता है, यही जनतन्त्र का अनुशासन है। प्रधानाध्यापक भी इस नियम से वंचित नहीं हो सकता।

(५) न्यायप्रियता—शाला के महत्त्वपूर्ण निर्णयों में साथियों के मत को दृष्टि में रखना जरूरी है। फिर भी प्रधानाध्यापक पर सम्पूर्ण शाला का उत्तरदायित्व होने के कारण दैनिक जीवन में वह अनेकों निर्णय अपनी स्वय की स्वतन्त्र विचार-शक्ति द्वारा भी करता है। ऐसे अवसर ही प्रधानाध्यापक के न्याय की कसौटी हैं। ऐसे अवसरों पर उसे अपने मित्रों, सहयोगियों व साथियों, या अन्य किसी के निजी स्वार्थों का साथ देने के बजाय न्याय का साथ देना चाहिए।

(६) अध्ययनशीलता—साधारणत. ऐसा देखा गया है कि प्रधानाध्यापक बन जाने पर व्यक्ति अध्ययन की ओर रुचि लेना बन्द कर देते हैं। उनकी विद्वत्ता एवं ज्ञान का विकास रुक जाता है। शाला के अन्य कार्यकर्त्ता भी अक्सर प्रधान का अनुसरण किया करते हैं। ऐसी परिस्थिति में निश्चित ही छात्रों का भविष्य नवीनतम ज्ञान के अभाव में अधिक उज्ज्वल नहीं बन पावेगा। प्रधानाध्यापक को अध्ययन-शील होना चाहिए और उसे अपने विषय में अधिकार होने के साथ ही साथ अन्य विषयों की जानकारी भी होनी चाहिए। उसे शिक्षा सम्बन्धित नवीन प्रयोगों के विषय में सजग रहने हेतु शिक्षा सम्बन्धित प्रगतिशील पत्र-पत्रिकाओं का अध्ययन करते रहना चाहिए। ऐसा प्रधानाध्यापक निश्चित ही शाला का स्तर उन्नत बना सकेगा।

(७) सेवा और त्याग—राष्ट्रीय स्वतन्त्रता ने यह आवश्यक बना दिया है कि हमारे देश के नागरिक देश की उन्नति हेतु सेवा-कार्य करने को प्रस्तुत रहें। त्याग के लिए प्रत्येक क्षण तत्पर रहें। ऐसे नागरिक तैयार करने हेतु शिक्षकों को अपना जीवन भी इसी साँचे में ढालना होगा। शिक्षक ऐसा करें इससे पूर्व प्रधानाध्यापक को सेवा और त्याग की मूर्ति बन जाना पड़ेगा। ऐसा करने पर ही बुनियादी शाला का जीवन सेवा और त्याग का पाठ राष्ट्र को दे सकेगा और तभी राष्ट्र की बहुमुखी उन्नति सम्भव होगी।

(८) छात्रों से सम्पर्क—भारतीय प्राचीन शिक्षा व्यवस्था के अनुसार प्राचीन काल में बालक के जीवन को केवल शिक्षक का जीवन ही प्रभावित करता था और प्रकार गुरुकुल में रहते-रहते ही बालक शिक्षित हो जाता था। पर आज हम एक

ऐसे युग में आ पहुँचे हैं जहाँ शालाओं में छात्रों की संख्या इतनी अधिक होती है कि शिक्षक अपनी शाला के सब बालकों से परिचित तक भी नहीं हो पाते। शिक्षकों की इस दशा से प्रधानाध्यापकों की स्थिति का सरलता से अन्दाजा लगाया जा सकता है। फिर भी प्रत्येक प्रधानाध्यापक का उत्तरदायित्व यह भी है कि वह सर्वप्रथम तो छात्रालय के टोली-नायकों, दलपतियों, योग्य विद्यार्थियों, खिलाड़ियों एवं शाला के विभिन्न कार्यक्रमों में भाग लेने वाले छात्रों से सम्पर्क कायम करे और फिर यह क्षेत्र लगातार विस्तृत करता रहे।

प्रधानाध्यापक का उत्तरदायित्व—प्रधानाध्यापक के गुणों एवं विशेषताओं पर विचार करने के पश्चात् यह आवश्यक होता है कि हम उसके उत्तरदायित्व पर भी एक दृष्टि डाल लें। इस दृष्टि से निम्न बिन्दु विशेष प्रकार से विचारणीय हैं :—

(क) अध्यापन—
- (१) कक्षाओं का अध्यापन।
- (२) अध्यापन के लिए विषय का चुनाव।
- (३) अध्यापन के लिए कक्षाओं का चुनाव।
- (४) प्रत्येक कक्षा से सम्पर्क।

(ख) निरीक्षण—
- (१) शाला के शिक्षण-कार्य का निरीक्षण।
- (२) शाला के कार्यालय का निरीक्षण।
- (३) शाला के औद्योगिक कार्यों का निरीक्षण।
- (४) शाला का निरीक्षण।
- (५) शाला की अन्य प्रवृत्तियों का निरीक्षण।

(ग) जन-सम्पर्क—
- (१) उच्चाधिकारियों से अच्छे सम्बन्ध बनाये रखना।
- (२) संरक्षकों एवं समाज के महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों से सम्पर्क।
- (३) आन्तरिक सम्पर्क।

उपरोक्त प्रत्येक बिन्दु पर विस्तार से विवेचन किया जाना आवश्यक होगा।

(क) अध्यापन—

(१) **कक्षाओं का अध्यापन**—अध्यापकों का प्रधान होने की दशा में भी प्रधानाध्यापक को यह हमेशा याद रखना चाहिए कि वह अध्यापक पहले है और प्रधान अध्यापक बाद में। इस दृष्टि से अध्यापन उसकी दिनचर्या का अंग होना चाहिए। उसे कार्यालय में पर्याप्त शक्ति एवं समय व्यय करना पड़ता है। इस दृष्टि से वह अधिक समय कक्षाओं में अध्यापन कार्य को दे सकने में असमर्थ होता है। इस दृष्टि से वह अधिक समय कक्षाओं में अध्यापन कार्य को दे सकने में असमर्थ होता है। इस दृष्टि से वह कक्षाओं के अध्यापन को कम समय दे यह तो क्षम्य है पर वह कक्षा अध्यापन से अपना सम्बन्ध ही तोड़ ले यह कदापि क्षम्य नहीं। क्योंकि पाठ को पढ़ाने में उसकी मेहनत, तैयारी व तरीका ही दूसरों के लिये नमूना बनते हैं। आदर्श को व्यवहार में स्वयं परिणत न करके दूसरों से वैसी अपेक्षा करना एक भूल है।

(२) **अध्यापन के लिए विषय का चुनाव**—शाला में पढ़ाये जाने वाले सभी

विषय अपना-अपना महत्त्व रखते हैं। इस दृष्टि से किसी एक विषय का महत्त्व दूसरे से अधिक या कम बतलाना गलत होगा। फिर भी शाला में पढ़ाए जाने वाले कुछ विषय बच्चों को कठिन मालूम पड़ते हैं। ऐसा महसूस होने का कारण केवल यही है कि साधारणतः उस विषय के अध्यापन कार्य में दक्ष शिक्षकों का अभाव होता है। प्रधानाध्यापक को ऐसे ही विषय को अपने लिए चुनना होगा। वह अपनी योग्यता से यह प्रभाव डालने का प्रयत्न करेगा कि कोई विषय-विशेष कठिन नहीं है वरन् पाठ की तैयारी में मेहनत और सूझ-बूझ का अभाव ही बालकों में ऐसी भावना पैदा कर देता है।

(३) अध्यापन के लिये कक्षाओं का चुनाव—प्रधानाध्यापक साधारणतः शाला की उच्चतम कक्षा को अध्यापन के लिए चुनता है। ऐसा करते समय मन में यही भावना होती है कि वह अपनी योग्यता से उन छात्रों को जो सर्वोच्च कक्षा में बैठेंगे, लाभ पहुँचावे। यह सारा कार्य एक ऐसी इमारत पर जिसकी नींव ही कमजोर है बड़ी मेहनत से प्लास्टर करने के समान ही माना जावेगा। प्रधान शिक्षक को अपने अध्यापन कार्य के लिए प्रारम्भिक कक्षाओं को भी चुनना चाहिए। ऐसा करने से वह बालकों की शिक्षा की नींव भी मजबूत कर सकेगा और उनसे शाला में प्रवेश के समय से ही सम्पर्क भी कायम कर सकेगा।

(४) प्रत्येक कक्षा से सम्पर्क—प्रधानाध्यापक की बहुमुखी जिम्मेदारियाँ उसे शाला की सब कक्षाओं से सम्पर्क कायम करने में बाधक होती हैं और होती रहेंगी। परन्तु यह तो ऐसी परिस्थिति है जिसका सामना करते हुए भी शिक्षक को अपना मार्ग निश्चित ही ढूंढ निकालना होगा। ऐसा करने के दो तरीके हो सकते हैं—एक तो यह कि वह एक या दो घंटे प्रत्येक कक्षा को अध्यापन की दृष्टि से देवे या जब कभी भी कोई शिक्षक अवकाश पर हो उसके विषय का अध्यापन प्रधानाध्यापक स्वयं करे। समय और परिस्थिति के अनुसार निश्चित ही प्रधानाध्यापक को प्रत्येक कक्षा से सम्पर्क कायम करने का तरीका ढूंढ निकालना चाहिये।

(ख) निरीक्षण—

(१) शाला के शिक्षण कार्य का निरीक्षण—प्रधानाध्यापक का कर्तव्य यह है कि वह यह देखे कि शाला में शिक्षण कार्य सुचारु रूप से चल रहा है। ऐसा करने हेतु उसे कक्षाओं के अन्दर जाकर भी निरीक्षण करने की आवश्यकता का अनुभव हो सकता है। ऐसा किया ही जाना चाहिए पर ऐसा करते समय निम्न बातों पर ध्यान देना होगा :—

(अ) निरीक्षण में अधिकारी के दृष्टिकोण की बजाय मानवीय दृष्टिकोण अपनाया जाय।

(आ) निरीक्षण दिखावे के रूप में न हो।

(इ) निरीक्षण का अर्थ कमजोरियों की कमी ढूंढ निकालना नहीं है वरन् [illegible] शिक्षण कार्य को देखकर उनको सुधार हेतु उनके कार्य के अनुसार ही सुझाव देना है।

(ई) निरीक्षण के समय कक्षा का वातावरण ऐसा रखना चाहिये कि वह एक साधारण

षय अपना-अपना महत्व रखते हैं। इस दृष्टि से किसी एक विषय का महत्व दूस अधिक या कम बतलाना गलत होगा। फिर भी शाला में पढ़ाए जाने वाले कुछ षय बच्चों को कठिन मालूम पड़ते हैं। ऐसा महसूस होने का कारण केवल यही है साधारणतः उस विषय के अध्यापन कार्य में दक्ष शिक्षकों का अभाव होता है। नाध्यापक को ऐसे ही विषय को अपने लिए चुनना होगा। वह अपनी योग्यता से प्रभाव डालने का प्रयत्न करेगा कि कोई विषय-विशेष कठिन नहीं है वरन् पाठ तैयारी में मेहनत और सूझ-बूझ का अभाव ही बालकों में ऐसी भावना पैदा देता है।

(३) अध्यापन के लिये कक्षाओं का चुनाव—प्रधानाध्यापक साधारणतः ा की उच्चतम कक्षा को अध्यापन के लिए चुनता है। ऐसा करते समय मन में भावना होती है कि वह अपनी योग्यता से उन छात्रों को जो सर्वोच्च कक्षा में , लाभ पहुँचावे। यह सारा कार्य एक ऐसी इमारत पर जिसकी नींव ही कमजोर ही मेहनत से प्लास्टर करने के समान ही माना जावेगा। प्रधान शिक्षक को अपने पन कार्य के लिए प्रारम्भिक कक्षाओं को भी चुनना चाहिए। ऐसा करने से वह कों की शिक्षा की नींव भी मजबूत कर सकेगा और उनसे शाला में प्रवेश के से ही सम्पर्क भी कायम कर सकेगा।

(४) प्रत्येक कक्षा से सम्पर्क—प्रधानाध्यापक की बहुमुखी जिम्मेदारियाँ उसे की सब कक्षाओं से सम्पर्क कायम करने में बाधक होती हैं और होती रहेंगी। यह तो ऐसी परिस्थिति है जिसका सामना करते हुए भी शिक्षक को अपना निश्चित ही ढूंढ निकालना होगा। ऐसा करने के दो तरीके हो सकते हैं—एक ह कि वह एक या दो घंटे प्रत्येक कक्षा को अध्यापन की दृष्टि से देवे या जब भी कोई शिक्षक अवकाश पर हो उसके विषय का अध्यापन प्रधानाध्यापक स्वयं समय और परिस्थिति के अनुसार निश्चित ही प्रधानाध्यापक को प्रत्येक कक्षा र्क कायम करने का तरीका ढूंढ निकालना चाहिये।

निरीक्षण—

शिक्षक के कार्य का निरीक्षण कर रहा है। साधारण शिक्षक साधारणतः प्रधानाध्यापक के समान योग्यता से अध्यापन नहीं कर सकता। वह तो उसकी जितनी योग्यता होगी उसी के अनुसार कार्य करेगा।

(ज) निरीक्षण के पश्चात् जब कक्षा कार्य समाप्त हो जावे, प्रधानाध्यापक को जो त्रुटियाँ नजर आवें उनके विषय में शिक्षकों को इस प्रकार सुझाव देने चाहिएँ कि जिससे उनके स्वाभिमान को ठेस न पहुँचे और वे प्रधान की बात को मान लें।

(झ) बालकों के गृह कार्य का भी नियमित रूप से निरीक्षण करे।

(२) शाला के कार्यालय का निरीक्षण—शाला के कार्य की प्रवृत्तियों के अन्तर्गत पत्रों का समय पर उत्तर, खर्च के लिए धन की व्यवस्था और आमदनी की रकम को जमा करना प्रमुख विषय हैं। पत्र व्यवहार का समय पर होना, शाला के आय-व्यय को संतुलित रखना और शाला की रकम को शाला के कार्य के हेतु ही खर्च करना, प्रधानाध्यापक का कार्यालय में उत्तरदायित्व है। जहाँ तक धन का प्रश्न है प्रधानाध्यापक को विशेष प्रकार से सतर्क एवं सावधान रहना चाहिए।

(३) शाला के औद्योगिक कार्यों का निरीक्षण—बुनियादी शाला का अध्ययन पूर्ण होने पर छात्रों को उत्तर-बुनियादी शाला में प्रवेश लेना होता है। उत्तर-बुनियादी शाला की शिक्षा सिद्धान्तः स्वावलम्बी होनी चाहिए। उस परिस्थिति के लिए बुनियादी शाला को अपने बालकों को तैयार करना है। जब सभी कक्षाओं में उद्योग चल रहे हैं तो निरीक्षण के समय प्रधान को यह ध्यान रखना चाहिए कि छोटी कक्षा से ऊँची कक्षा की ओर बालकों की योग्यता लगातार बढ़ती जा रही है। इसी प्रकार निश्चित वर्षों में स्वावलम्बन का प्रतिशत भी लगातार बढ़ता जा रहा है। यहाँ यह भी ध्यान रखना होगा कि बालकों में श्रम के प्रति आदर की भावना बढ़ रही है अथवा नहीं।

(४) शाला की अन्य प्रवृत्तियों का निरीक्षण—शाला के अध्यापन-कार्य, कार्यालय व औद्योगिक कार्य के निरीक्षण के अतिरिक्त भी अनेकों ऐसी प्रवृत्तियाँ हैं, जिन पर प्रधानाध्यापक को दृष्टि रखनी पड़ती है। शाला का वातावरण साफ होना चाहिए, शाला की इमारत और बगीचे की सफाई योजना होनी चाहिए, शाला के मल-मूत्र-गृह की सफाई नियमित होनी चाहिए व शाला में अध्यापक व बालक साफ कपड़े पहन कर आते हैं यह भी प्रधानाध्यापक के देखने का काम है। इस दृष्टि से शाला का जीवन इस प्रकार गतिमान हो कि वही शाला एक दिन एक आदर्श शाला का रूप धारण करे। अनेकों शालाओं में उच्च अधिकारियों के निरीक्षण के अवसर पर शाला में प्रत्येक प्रवृत्ति, एक विशेष प्रकार की तैयारी के साथ चलने लगती है और निरीक्षण हो चुकने पर फिर वही पुराना तरीका शुरू हो जाता है। यह स्थिति अच्छी नहीं है। इस दृष्टि से प्रधानाध्यापक का कर्त्तव्य है कि वह उच्च अधिकारियों द्वारा निरीक्षण के लिए प्रत्येक क्षण प्रस्तुत रहे।

इसके अतिरिक्त शाला के छात्रावास, भोज, वाचनालय, साहित्य-गोष्ठियाँ एवं ऐसे ही अन्य अनेकों आयोजन चलते रहते हैं। इन सबका प्रधानाध्यापक के प्रेरणा,

पथ-प्रदर्शन और सहयोग मिलना चाहिए। इसी आधार पर इन प्रवृत्तियों का नि
भी जरूरी है।

(ग) जन-सम्पर्क—

(१) उच्चाधिकारियों से सम्पर्क—पाठशाला केन्द्रीय शिक्षा-विभाग से प्रा
होने वाली शृंखला की अन्तिम कड़ी एवं इकाई है। शाला को कार्य करने की श
और साधन उच्चाधिकारियों से प्राप्त होते हैं। अगर उच्च अधिकारियों से अ
सम्बन्ध एवं सम्पर्क है तो प्रधानाध्यापक निश्चित ही अपनी शाला को सब साधनं
सुसज्जित, उच्च शैक्षणिक स्तर पर चलने वाली शाला का रूप दे सकेगा। इस प्र
प्रधानाध्यापक के लिए यह आवश्यक है कि शाला की शक्ति के स्रोत उच्चाधिका
से निकटतम सम्पर्क रख कर अपनी शक्ति को दिनों दिन उन्नति करता जावे।

(२) संरक्षकों एवं समाज के महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों से सम्पर्क—उच्च पदा
कारियों से अच्छा सम्बन्ध शाला के लिए एक प्रकार से साधन एवं शक्ति का स्रोत
उसी प्रकार से संरक्षकों एवं समाज के महत्त्वपूर्ण कार्यकर्ताओं से अच्छा सम्पर्क
शक्ति के सही उपयोग एवं स्थायी लाभ का परिचायक है। माता-पिताओं के सह
बिना कोई भी शिक्षा-पद्धति नागरिकों पर स्थायी प्रभाव नहीं डाल सकती। अने
बार तो इतना तक होता है कि शाला द्वारा डाले गये एक दिन के ५ घण्टे के प्र
को माता-पिता उनके प्रतिदिन के १६ घण्टे के बालकों के सम्पर्क द्वारा लगातार सम
करते चले जाते हैं और छात्र किंचित्मात्र भी प्रगति नहीं कर पाते। अतः संरक्ष
और शिक्षा में रुचि रखने वाले व्यक्तियों से लगातार सम्पर्क प्रधानाध्यापक को शा
के प्रयत्न एवं प्रयोग को अधिक सबल बना कर उनसे बालकों की शिक्षा में रचनात
योग लेने का अवसर देता है।

(३) आन्तरिक सम्पर्क—इसी पाठ के पूर्व अंशों में प्रकट किया जा चु
है कि प्रधानाध्यापक के अन्य अध्यापकों से निकटतम सम्बन्ध होने चाहिएं और
के साथ बालकों से भी अधिक सम्पर्क कायम हो, ऐसा उसे प्रयत्न करना चाहिये
ऐसा होने पर ही शाला-समाज के सब अंग अलग-अलग रहने के बजाय एक हो
प्रगति एवं विकास की राह पर अग्रसर हो सकेंगे।

प्रधानाध्यापक कैसे चुना जावे ?—प्रधानाध्यापक में किन-किन गुणों का समावे
हो और उसका क्या उत्तरदायित्व है यह विचार कर लेने पर यह प्रश्न स्वाभावि
ही है कि ऐसे अधिकारी के चुनाव का तरीका क्या हो ? चुनाव के लिए इस सम
विभिन्न स्थानों पर विभिन्न तरीकों को प्रयोग में लाया जाता है। प्रधानाध्यापक
बनने के लिये आवश्यक शैक्षणिक योग्यता को महत्त्व देकर कहीं पर अधिकतम
आयु वाले व्यक्ति को प्रधानाध्यापक बना दिया जाता है, कहीं पर शिक्षा-सेवा-काल
जिसका सबसे अधिक हो उसे यह अवसर दे दिया जाता है, कहीं पर सर्वोच्च परीक्षा
पास कर उच्चतम वेतन व ग्रेड जिसने पहले प्राप्त किया हो उसे यह अवसर मिलता
है, कहीं पर अधिकतम शैक्षणिक योग्यता को महत्त्व दे दिया जाता है और कहीं पर
उपरोक्त नियमों में से किसी भी नियम को एक अवसर पर और दूसरे को दूसरे

(अक्टूबर १९५२--जून १९५३) ने भी प्रधानाध्यापक के चुनाव पर अपना मत प्रकट किया है। आयोग ने कहा है :"हमें विश्वास है कि सीनियोरिटी अक्सर प्रधानाध्यापक के चुनाव मे सर्वश्रेष्ठ साधन नहीं है। ऐसे उत्तरदायित्व के स्थान के लिये यह आवश्यक है कि उसमे कुछ अन्य क्षमताएँ और योग्यताएँ हों (कार्य, शैक्षणिक योग्यता, पिछला रिकार्ड, सामाजिक दृष्टिकोण, साथियों एवं जनता का विश्वास एवं छात्रों से आदर प्राप्त करने की शक्ति आदि) जिनका पूर्व वर्णन किया जा चुका है। शैक्षणिक एवं औद्योगिक योग्यता के अतिरिक्त विशेष योग्यता जिन पर बल दिया जाना चाहिये वह है कम से कम दस वर्ष का शिक्षण और या प्रबन्ध का अनुभव, नेतृत्व के गुण और शासन की योग्यता।" आयोग के सुझाव बुनियादी शाला के अध्यापक के चुनाव मे भी सहायक सिद्ध हो सकते हैं।

उपसंहार—प्रधानाध्यापक की उत्तरदायित्वपूर्ण जगह पर योग्य एवं अनुभवी व्यक्तियों का चुनाव होना चाहिये और शिक्षक-समाज में मानसिक शान्ति कायम रहे इस हेतु प्रधानाध्यापकों एवं उच्च अधिकारियों के चुनाव के लिये पर्याप्त विचार विनिमय के पश्चात् स्थायी धाराओं एवं नियमों का निर्माण किया जाना चाहिये और उनका स्पष्टतया एवं निष्पक्षता से पालन होना चाहिये।

सारांश

प्रस्तावना—अनेकता के छोटे से शाला-समाज में एकता लाने हेतु प्रधानाध्यापक का स्थान बड़ा महत्वपूर्ण है।

प्रधानाध्यापक किसे बनाया जाय ?—प्रधानाध्यापक उसी को बनाया जाना चाहिए जिसमें निम्न गुणों का समावेश हो :—

प्रधानाध्यापक में गुणों का समावेश—

(१) आत्मविश्वास।
(२) सहानुभूति।
(३) सहयोग।
(४) जनतान्त्रिकता।
(५) न्यायप्रियता।
(६) अध्ययनशीलता।
(७) सेवा और त्याग।
(८) छात्रों से सम्पर्क।

प्रधानाध्यापक का उत्तरदायित्व:—

(क) अध्यापन—(१) कक्षाओं का अध्यापन, (२) अध्यापन के [illegible] विषय का चुनाव, (३) अध्यापन के लिए कक्षाओं का चुनाव, (४) प्रत्येक कक्षा से सम्पर्क।

(ख) निरीक्षण—(१) शाला के शिक्षण कार्य का निरीक्षण, (२) शाला के कार्यालय का निरीक्षण, (३) शाला के औद्योगिक कार्यों का निरीक्षण, (४) शाला की अन्य प्रवृत्तियों का निरीक्षण।

(ग) जन-सम्पर्क—(१) उच्चाधिकारियों से सम्पर्क, (२) संरक्षकों एवं समाज के महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों से सम्पर्क, (३) आन्तरिक सम्पर्क।

प्रधानाध्यापक कैसे चुना जाये?—अनुभव और योग्यता के आधार पर तैयार किये गए स्थायी नियमों द्वारा प्रधानाध्यापक का चुनाव होना चाहिए।

उपसंहार—प्रधानाध्यापक की उत्तरदायित्वपूर्ण जगह के लिए योग्य एवं अनुभवी व्यक्ति चुने जावें और चुनाव के हेतु बनाए जाने वाले नियम यथासम्भव राष्ट्रव्यापी और स्थायी होने चाहिएँ।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(१) शाला में प्रधानाध्यापक के स्थान का क्या महत्त्व है? विस्तार से वर्णन कीजिये।

(२) प्रधानाध्यापक में जिन गुणों का समावेश होना चाहिये, उनका वर्णन लिखिये और यह स्पष्ट कीजिये कि प्रधानाध्यापक का क्या उत्तरदायित्व है?

शिक्षक

प्रस्तावना—बालक को शिक्षा प्रदान करने की सविधिक प्रणाली में शिक्षक का महत्वपूर्ण स्थान है। हमारे प्रधानमंत्री श्री नेहरू ने बुनियादी शिक्षा के शासन के बावत आयोजित अल्पकालीन प्रशिक्षण शिविर के प्रतिनिधियों के समक्ष व्यक्त किया था : "शिक्षक स्कूल की आत्मा है। छात्रों की अनुशासनहीनता की समस्या के विषय में उन्होंने कहा कि इसका ६०% शिक्षक की असफलता के कारण है। वह (शिक्षक) कक्षा को मित्र की तरह नियन्त्रण में नहीं रख सका है।……हम भारी परिवर्तन के युग में गुजर रहे हैं और इसलिये हमारी दृष्टि ऐसी हो कि जिससे निभाने की क्षमता (Vitality), आशा और सख्त मेहनत का विचार विकसित हो…।" इस दृष्टि से आज के शिक्षक पर भारी जिम्मा आया हुआ है। शिक्षक विद्यार्थियों का जीवन बनाता है, चरित्र ढालता है और आदतों का निर्माण करता है। शिक्षक ही विद्यार्थियों के लिये एक जीती-जागती पुस्तक है, जिससे उन्हें जीवन-यापन की कला का ज्ञान प्राप्त होता है।

शिक्षक समाज का निर्माता है—पुराने जमाने से आज तक संसार में अनेकों ऐसे महापुरुषों ने जन्म लिया जिन्होंने समाज को पुराने एवं अर्थहीन आदर्शों के स्थान पर नवीन आदर्शों की स्थापना की। उन्होंने समयानुकूल मूल्यों की समाज में स्थापना की और उन सड़ी-गली परम्पराओं को निकाल बाहर करने का आग्रह किया जो उस काल में उपयुक्त नहीं थीं। उन्होंने केवल उपदेश ही नहीं दिया वरन् अपने जीवन को भी उसके अनुसार ढाल लिया और सारे समाज ने जब उनके विरोध में जिहाद किया तो वे हिमालय पर्वत की भाँति अडिग खड़े रहे। इस प्रकार के अडिग विश्वास वाले महापुरुषों के सामने ही समाज की रूढ़ियों, अन्ध-विश्वास एवं जीर्णशीर्ण परम्पराओं को धराशायी होते हुये देखा गया है। आज भारत में शिक्षक को यही बड़ा काम करना है। अगर वह यह काम कर पाता है तो फिर इसमें भी कोई सन्देह नहीं कि वह समाज का निर्माता कहलाने का हकदार है। ऐसा शिक्षक विभिन्न गुणों और योग्यताओं से सम्पन्न होना चाहिये तभी वह उस पर आए हुए जिम्मे को निभाने में सफल हो सकता है।

शिक्षक के गुण और योग्यताएँ—शिक्षक में निम्नलिखित गुणों और योग्यताओं का समावेश होना चाहिए:—

(क) नियन्त्रण क्षमता—शिक्षक को एक साथ एक कक्षा में ऐसे छात्रों के सम्पर्क में आना पड़ता है जिनमें प्रत्येक शारीरिक, मानसिक एवं बौद्धिक दृष्टि से दूसरे से भिन्न होता है। इसी दृष्टि से शिक्षा-विशेषज्ञ लाक ने तो इतना तक कहा है कि एक बालक को एक शिक्षक पढ़ावे। अतः एक शिक्षक जब कक्षा में चालीस

चालीस छात्रों का संरक्षण करता है तो एक प्रकार से वह चालीस शिक्षकों का क करता है। ऐसे अवसर पर यह तो निश्चित है ही कि अन्य व्यवसायों की तुल में शिक्षक मे कई गुनी अधिक क्षमता की आवश्यकता है। इस शक्ति से सम्पन्न हो पर ही उसकी सफलता निर्भर करती है।

(ख) बहु-प्रवृत्ति उन्मुख (Versality)—छात्रों की अपनी-अपनी मनोवृत्ति और प्रवृत्तियाँ होती हैं। इस प्रकार कक्षा में प्रत्येक छात्र दूसरे से भिन्न होता और उसका विकास शिक्षक के पथ-प्रदर्शन पर निर्भर करता है। अतः शिक्षक में कक्षा-शिक्षण की योग्यता के अतिरिक्त प्रत्येक छात्र को उसके व्यक्तित्व के उपयु विकास के अनुकूल व्यक्तिगत सहायता देने की योग्यता भी होनी चाहिए। उसे अनेक प्रवृत्तियों जैसे उद्योग, खेल एवं विभिन्न कलाओं का जानकार होना आवश्यक है।

(ग) विषय ज्ञान की दक्षता—शिक्षक धुरन्धर विद्वान हो यह आवश्यक नहीं परन्तु उसमें अपने विषय का पर्याप्त ज्ञान होना चाहिए जिससे वह नवीन ज्ञान जो बालकों को दिया जाता है, उत्साहवर्धक, मनोरंजक एवं आकर्षक तरीकों से छात्रों के सामने उपस्थित कर सके। इस योग्यता के साथ उसमें अपने ज्ञान को विकसित एवं नवीनता (Fresh) बने रखने की जागरूकता होनी चाहिए।

(घ) मनोविज्ञान का ज्ञाता—केवल अपने विषय का ज्ञान ही पर्याप्त नहीं परन्तु उसी के साथ शिक्षक में बालक को उपयुक्त पद्धति से उपयुक्त अवसर पर ज्ञान देने की योग्यता भी होनी चाहिए जिससे दिया हुआ ज्ञान बालक के जीवन का [illegible] बन जावे। यह तभी सम्भव है जबकि शिक्षक मनोविज्ञान का जानकार हो। इसी कारण प्रत्येक शिक्षक अपने पाठ्य-विषय के साथ मनोविज्ञान का ज्ञाता भी होना चाहिए।

(ङ) कार्य में विश्वास और विद्यार्थियों में रुचि—शिक्षक को अपने कार्य में विश्वास और अपने छात्रों में रुचि होना अनिवार्य है। उसे अपने कार्य में पूर्ण विश्वास रखते हुये अपने बच्चों में अधिक से अधिक रुचि लेते हुए उनसे व्यक्तिगत सम्पर्क कायम करना होगा। उसे उनके जीवन की उन गहराइयों तक पहुँचना होगा जहाँ एक साधारण व्यक्ति नहीं पहुँच सकता और फिर उनकी उन उलझनों को सुलझाने में सहायक होना होगा। अगर शिक्षक इतना कर सकता है तो निश्चित ही वह बालकों का चरित्र-निर्माण करता हुआ अनुशासन की समस्या का हल प्रस्तुत कर सकेगा।

(च) न्याय प्रियता—शिक्षक का कर्तव्य है कि वह अपने बालकों के प्रति न्यायपूर्ण हो। उसे एक मामले में एक छात्र के प्रति एक प्रकार का रुख धारण कर दूसरे के साथ वैसे ही अवसर पर दूसरे प्रकार का व्यवहार प्रदर्शित नहीं करना चाहिए। बालक बड़ों के व्यवहार से ही न्याय सीखते हैं। अगर शिक्षक न्याय करने के आदर्श से गिर जाता है तो वह निश्चित ही बालकों की दृष्टि में भी आदर का पात्र नहीं रहता।

(छ) [illegible]—प्रत्येक [illegible] एक [illegible] का [illegible] होता है। वह शिक्षक से भी [illegible] करता है। अगर शिक्षक [illegible]

में रहता है और बालकों के मनोविनोद के लिये शिक्षण के समय ही समयानुकूल सामग्री जुटाकर उनका विनोद कर पाता है तो निश्चित ही वह बालकों में अधिक लोकप्रिय हो जाता है। प्रसन्नचित्त शिक्षक बालकों के पाठ को तो विनोद द्वारा मनोरंजक बनाता ही है पर साथ ही उनको प्रसन्न रखकर उनमें प्रसन्न मुद्रा में रहने की आदत भी डालता है।

(ज) शीघ्र निर्णय की शक्ति—बालकों के मध्य आज कक्षा में अनेकों अवसर ऐसे आते हैं जबकि विचारों का विरोध होता है और सही निर्णय पर लाने का उत्तरदायित्व शिक्षक का होता है। शिक्षक में यह शक्ति होनी चाहिये कि वह विवाद के पूर्व ही स्वयं निर्णय करले कि कौन-सा निर्णय शाला-समाज के लिए हितकर होगा। इसी निर्णय के अनुसार वह ऐसी परिस्थितियाँ पैदा करेगा कि छात्र जनतन्त्रीय पद्धति से उसी निर्णय पर आ जावें।

(झ) नेतृत्व की शक्ति—शिक्षक उसके पद के कारण ही एक नेता है। उसे समाज को नवीन दृष्टिकोण देना है और उसका नेतृत्व करना है। ऐसी उत्तरदायित्व की स्थिति में उसे निश्चित ही बालकों का शाला में नेतृत्व करना है। परन्तु आज के युग में शिक्षक बालकों का नेतृत्व उनसे अलग एक शासक के रूप में खड़ा रह कर नहीं करेगा वरन् एक सहयोगी साथी की तरह उनके हर एक कार्य के अन्दर कन्धे से कन्धा मिलाकर चलते हुये अवसर-अवसर पर उपयुक्त सुझावों के द्वारा करेगा। अब तक शिक्षकों █ सृजनात्मक शक्ति किंचित-मात्र भी न होते हुये सब कार्यों की कहानी-मात्र कण्ठस्थ होने से ही वे बालकों से काम ले लेते थे। अच्छे छात्रों का काम अन्य छात्रों के लिये उदाहरण के रूप में पर्याप्त था। पर आज तो शिक्षक को हर क्षेत्र में सृजनात्मक शक्ति द्वारा नेतृत्व करना है।

(ञ) उद्योग कुशलता—इस बिन्दु का स्पष्टीकरण महात्मा गाँधी ने इन शब्दों में किया है: "हमें सच्ची जरूरत तो ऐसे शिक्षकों की है, जिनमें नया-नया सृजन करने की और विचार करने की शक्ति हो, सच्चा उत्साह और जोश हो और रोज-रोज विद्यार्थियों को क्या सिखायेंगे, यह सोचने की शक्ति हो। शिक्षकों को यह ज्ञान पुराने पोथों में से नहीं मिलेगा। उसे अपनी निरीक्षण और विचार करने की शक्ति का उपयोग करना है और हस्त-उद्योग की मदद से जुबान द्वारा बालक को ज्ञान देना है।" उन्होंने एक अन्य स्थान पर और भी कहा है, "शिक्षक को उद्योग सीख लेना चाहिये और अपने ज्ञान का अनुसंधान उस उद्योग के साथ करना चाहिये जिससे वह अपने पसंद किये हुये उद्योग द्वारा यह सारा ज्ञान विद्यार्थियों को दे सके।" आज के शिक्षक के लिये उद्योग का ज्ञानी होना अत्यन्त आवश्यक है। आचार्य विनोबाजी के शब्दों में "बुनियादी शिक्षक किसी भी किसान से, बुनकर से या बढ़ई से कम कुशल नहीं होंगे, बल्कि ज्यादा कुशल होंगे। किसान, बढ़ई आदि को जो बातें नहीं सूझती होंगी वे उन्हें सूझेंगी।"

(ट) आत्माभिमानी—शिक्षक स्वाभिमानी होना चाहिये और उसे इस बात पर गर्व होना चाहिये कि वह शिक्षक है और वह एक ऐसे उद्योग को अपनाये हुये है जिसका सामाजिक दृष्टि से बड़ा महत्व है। वह जिन परिस्थितियों में यह कार्य

कर रहा है वे अनुकूल नहीं हैं और उन परिस्थितियों के सुधार के लिये उसे निरन्तर प्रयत्न करते रहना है परन्तु चूंकि ये परिस्थितियाँ आज अनुकूल नहीं हैं इसी कारण से अपने को निम्न श्रेणी का मानने लगे यह कदापि उपयुक्त नहीं।

(७) कुछ अन्य गुण—जहाँ गुणों के समावेश का प्रश्न है समाज शिक्षक को सर्वगुण-सम्पन्न देखना चाहता है और इस दृष्टि से गुणों की सारणी बहुत लम्बी बन सकती है। परन्तु वर्तमान अवस्था में हमें कुछ थोड़े से महत्वपूर्ण गुणों का भी विवेचन कर लेना चाहिये।

(१) वाणी—शिक्षक की वाणी मधुर, स्पष्ट, शुद्ध और अधिकारपूर्ण होनी चाहिये।

(२) अनुशासन—शिक्षक स्वयं ऐसा अनुशासित हो कि वह बालकों को अनुशासन में रहने की प्रेरणा दे सके।

(३) सांस्कृतिक दृष्टिकोण—शिक्षक को अपने राष्ट्र की संस्कृति से प्रेम होना चाहिये। उसे प्रेरणा विदेशों से नहीं वरन् राष्ट्र के सात लाख गाँवों से और उनमें रहने वाले करोड़ों लोगों के जीवन से प्राप्त करनी चाहिये। वह बालकों में भी यही दृष्टिकोण पैदा करे कि भारत की वास्तविक संस्कृति गाँवों में ही स्थित है।

(४) तर्कपूर्ण दृष्टिकोण—शिक्षक को यह बात तर्क की कसौटी पर कस कर स्वीकार करनी चाहिये और अपने सम्पर्क में आने वाले सभी व्यक्तियों को भी इसी दृष्टिकोण की ओर प्रेरित करना चाहिये। सुदृढ़ जनतन्त्र तर्कपूर्ण दृष्टिकोण द्वारा ही स्थापित किया जा सकता है।

(५) बुराइयों से घृणा—समाज को महापुरुषों एवं रचनात्मक कार्यकर्त्ताओं ने सौन्दर्य की ओर गतिशील बनाया है। इसी क्रम में अनेकों ऐसे भी व्यक्ति पैदा हुए हैं जिन्होंने सृजनात्मक पथ के स्थान पर ध्वंसात्मक पथ का अनुसरण किया और इस प्रकार से समाज की सुन्दरता एवं अच्छाई को कुरूपता एवं बुराई में परिणत करने का यत्न किया। शिक्षक का कर्त्तव्य है कि वह समाज को अच्छाई और उसके स्रोत के प्रति आदर की भावना भरे। वह बुराई के प्रति घृणा की भावना जागृत करे।

(६) सत्य और अहिंसा का विश्वासी—शिक्षक नई तालीम के युग में सत्य में निष्ठा रखने वाला और अहिंसा का पालन करने वाला होना चाहिये। वह स्कूल में सत्य निष्ठा निर्माण करने में अधिक से अधिक प्रयत्न करेगा। समाज में वह यह कल्पना दृढ़ करेगा कि अगर समाज में सबसे हेय कोई दुर्गुण है तो वह है 'असत्य'। यही सबसे बड़ा पाप भी माना गया है। कारण यह है कि इसी से मनुष्य में दोष छिपाने की प्रवृत्ति पैदा होती है। छिपाने की प्रवृत्ति मिटाने के लिए समाज में यह धारणा दृढ़ करनी चाहिए कि 'असत्य' ही सबसे बड़ा दुर्गुण है।

उपसंहार—इस आधारपर यह स्पष्ट है कि आज हमें उपरोक्त गुणों से सम्पन्न अध्यापकों की आवश्यकता है। ऐसे अध्यापक ही समाज का नवीन प्रसार

को शिक्षा पद्धति के आधार पर पुनर्निर्माण कर सकते हैं और राष्ट्र को प्रगतिशील और उन्नत बनाने में सक्रिय योग दे सकते है।

सारांश

प्रस्तावना—राष्ट्र के भावी नागरिकों के कर्णधार शिक्षक हैं। वे ही बालकों के जीवन का पथ-प्रदर्शन करते हैं।

समाज-निर्माण शिक्षक करें—शिक्षक को समाज का निर्माण करना है, इस दृष्टि से समाज के लिए उसे नमूने के रूप मे आदर्श जीवन बिताना है।

शिक्षक के जीवन में गुणों का समावेश—शिक्षक में निम्न गुणों का समावेश होना आवश्यक है :—(क) नियन्त्रण क्षमता (ख) बहु-प्रवृत्ति-उन्मुख (Versality), (ग) विषय ज्ञान की दक्षता, (घ) मनोविज्ञान का ज्ञाता, (ङ) कार्य में विश्वास और शिक्षार्थियों में रुचि, (च) न्याय-प्रियता, (छ) विनोद-प्रियता, (ज) शीघ्र निर्णय की शक्ति, (झ) नेतृत्व की शक्ति, (ञ) उद्योग की कुशलता, (ट) आत्माभिमानी, (ठ) कुछ अन्य गुण :—(१) वाणी, (२) अनुशासन, (३) सांस्कृतिक दृष्टिकोण, (४) तर्कपूर्ण दृष्टिकोण, (५) बुराइयों से घृणा, (६) सत्य और अहिंसा का विश्वासी।

उपसंहार—अच्छे शिक्षकों की उपलब्धि पर ही राष्ट्र का पुनर्निर्माण, प्रगतिशीलता और उन्नति निर्भर है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(१) बुनियादी शाला का शिक्षक समाज का निर्माण किस प्रकार करेगा ? इस कार्य मे सफलता प्राप्त करने के लिए उसके शिक्षण में क्या-क्या विशेषताएँ होंगी ?

(२) बुनियादी शाला के शिक्षक के प्रति महात्मा गांधी के विचारों से आप कहाँ तक सहमत हैं ?

—...—

विद्यालयकार्य की योजनाएँ

प्रस्तावना—आज हम योजनाओं के युग में जी रहे हैं। हमारा राष्ट्र योजना-बद्ध विकास की ओर अग्रसर हुआ है फिर विद्यालय और शिक्षक इस कार्य में कैसे पीछे रह सकते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि जब विद्यालय इस तरीके को अपनाता है तो उसके सब अंग योजना-बद्ध तरीके से कार्य करने का प्रशिक्षण पाते हैं और वही भावना घरेलू और वैयक्तिक जीवन पर भी प्रभाव डाले बिना नहीं रह सकती। आज हमारे बालक में जो अनुशासनहीनता है उसका एक कारण यह भी है कि वह अपने जीवन के उद्देश्य से अवगत नहीं है और उस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए उसके पास कोई निश्चित योजना नहीं है।

विद्यालय-कार्य की वार्षिक योजना—प्रत्येक विद्यालय को अपने सारे सत्र के कार्य की योजना सत्र का अन्त होते ही या सत्र के प्रारम्भ में ही, तैयार कर लेनी चाहिए। इस योजना में शिक्षण-कार्य और अन्य प्रवृत्तियाँ सभी शामिल की जानी चाहिएँ। इस कार्य में पूर्व सत्र के अनुभवों और वर्तमान सत्र की आवश्यकताओं को महत्त्व देना जरूरी है। इस निर्णय में प्रधानाध्यापक अपने अनुभवों और सह-साथियों के अनुभवों का पूरा-पूरा लाभ उठावें। एक विचारक ने ठीक ही कहा है "जीवन में अनुभवों का जितना मूल्य है सम्भवतः उतना मूल्य स्वयं जीवन का भी नहीं है।" अतः पूर्व अनुभवों के आधार पर तैयार वार्षिक योजना निश्चित ही व्यवहारिक हो सकेगी और उसे कार्यान्वित करना सुलभ हो सकेगा।

विद्यालय-कार्य की अर्द्धवार्षिक या त्रैमासिक योजना—सारे वर्ष की या सत्र की कार्य-योजना को ऋतुओं के आधार पर विभाजित करना चाहिए। कभी-कभी एक सत्र को अर्द्ध-वर्षों में बाँटा जाता है। उस दशा में सारी योजना समय के अनुसार मौसम, सामाजिक पर्वों और उत्सवों एवं अन्य प्रवृत्तियों के आयोजन में सुविधा की दृष्टि से रख कर दो भागों में बाँट दी जायेगी। जब एक सत्र का तीन ऋतुओं में विभाजित किए जाने की विद्यालय में व्यवस्था होती है तब उपरोक्त आधार पर ही सारे सत्र की कार्य-योजना को तीन भागों में बाँटना जरूरी होता है।

विद्यालय-कार्य की मासिक योजनाएँ—यह स्वाभाविक है कि प्रत्येक उप सत्र तीन या चार मास की अवधि का होता है। अतः स्पष्टता की दृष्टि से प्रत्येक उप सत्र के कार्य का महीनेवार ब्योरा तैयार किया जाय। यह महीनेवार ब्योरा विद्यालय को स्पष्ट करता कि अमुक मास में कक्षा-वार शिक्षण, लिखित कार्य व जाँच, गृह-कार्य, सामाजिक और सांस्कृतिक प्रवृत्तियाँ आदि का विभाजन और कार्य-क्रम करना। इस व्यवस्था से यह स्पष्ट हुआ कि कौन-कौन से कार्य किस दिन

दिन मनाए जावेंगे। समाज-हित के कार्यक्रम के लिये कौन-कौन से दिन चुने गये हैं। विभिन्न कक्षाएं, अथवा कार्यकर्तागण किन दिनों प्रमुखतः इन कार्यों में हिस्सा बँटावेंगे।

विद्यालय-कार्य की साप्ताहिक योजनाएँ—प्रत्येक मास के कार्य का सप्ताह-वार विभाजन कर लेने से साप्ताहिक योजनाएँ बन सकती हैं। ये साप्ताहिक योजनाएँ इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं कि इससे, कक्षा-स्तर पर और विद्यालय-स्तर पर भी यह समझने में मदद मिलती है कि कौन-कौन से निश्चित सप्ताह के लिये तय किये गये कार्य एवं योजनाएँ पूरी हो सकीं और किन-किन में निश्चित किये गये उद्देश्य पूरे नहीं किये जा सके। इसके अधूरे कार्यों को पूरा करने के लिये अगला समय निश्चित करने में मदद मिलती है और योजनानुसार कार्य पूरा हो सकता है।

वार्षिक, सैत्रिक, मासिक और साप्ताहिक योजनाओं का आपसी संबंध—जहाँ निश्चित दिनों पर जयन्तियाँ या उत्सव मनाये जाने का प्रश्न है वे तो उसी दिन मनाये जाने जरूरी होते हैं। परन्तु कुछेक कार्यक्रम ऐसे भी होते हैं जो कारणवश निश्चित दिन न मनाये जा सकने की दशा में बाद में भी मनाये जा सकते हैं। इस क्रम में विशेषतः अन्तर्राष्ट्रीय या राष्ट्रीय स्तर के पर्व आते हैं। उदाहरणतः संयुक्त राष्ट्र दिवस (२४ अक्तूबर) भी ऐसा ही एक पर्व है। ऐसे पर्व निश्चित दिनांक के बाद उसी सप्ताह में या अगले सप्ताह में भी मनाए जाने जरूरी होते हैं। इन्हें शाला अपनी सुविधा से आने वाले दिनों में किसी दिन मनाना निश्चित कर सकती है। ऐसे ही एक माह में पूरे करने का जब उस माह में पूरा न हो तो विद्यालय अगले मास में पूरा करने का यत्न करे। इस क्रम में विभिन्न स्थानों का अध्ययन, भ्रमण, उद्योग का कार्य, समाज-सेवा आदि आते हैं। एक उपसत्र में जो कार्य पूरे नहीं हो पाते उन्हें दूसरे उपसत्र में करना जरूरी होगा। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि सारे सत्र की योजनाओं के ये विभिन्न खंड ऐसे नहीं हैं जिनका एक-दूसरे से सम्बन्ध ही न हो वरन् इन्हें एक-दूसरे का पूरक समझना ही उत्तम होगा। इस दशा में प्रत्येक दूसरे से पूरी तरह संबंधित भी है।

शाला की योजनाएँ और उनकी जानकारी—इन योजनाओं को तय कर लेने का उद्देश्य ही यह है कि सारा विद्यालय एक सत्र में पूरी करने की योजनाओं के प्रति जागरूक रह सके और निश्चित समय पर, या निश्चित समय में पूरी करने का यत्न करे। अतः ये सभी अध्यापकों की जानकारी में रहने के साथ-साथ छात्रों को भी मालूम हों। अतः इन्हें विद्यालय में ऐसे स्थान पर लगाया जाना चाहिये कि सभी की निगाह में आती रहें और सबको जानकारी रहकर सब लोग उन्हें कार्यान्वित करने को सजग रह सकें।

उपसंहार—विद्यालय योजनानुसार कार्य करता हुआ अपने उद्देश्य में सफल हो इसके लिये सत्रवार योजना बनाना और फिर उसका उपसत्र, मास व सप्ताह के आधार पर विभाजन जरूर होता है। इससे कार्य समय पर होता है, व्यवस्था के साथ होता है, और सभी पूरी तैयारी के साथ उसमें सहयोग दे सकते हैं। विद्यालय द्वारा तय की गई योजना को जब वह नियमितता से पूरी भी करता जाता है तो सभी को पूर्णता का एवं कार्य-सिद्धि का आनन्द प्राप्त होता है।

सारांश

प्रस्तावना—योजनाबद्ध विकास के युग में विद्यालय को भी अपना सत्र
कार्य पूर्व योजना तैयार करके ही पूरा करना चाहिए।

शाला की कार्य-योजना—विद्यालय को अपने एक सत्र के कार्य
पूरी योजना तैयार करके उसे उपसत्र, मास व सप्ताहवार विभाजित करनी चाहिए

वार्षिक, सैत्रिक, मासिक और साप्ताहिक योजनाओं का आप
सम्बन्ध—ये सभी खंड एक-दूसरे के पूरक हैं। एक खंड में जो काम पूरा न
होता है उसे पूरा करने में दूसरा खंड सहायक होता है।

योजनाओं की जानकारी—विद्यालय-समाज के सब लोगों को इस
पूरी जानकारी रहे इसलिए इन्हें सर्व-सुलभ स्थान पर लगाया जाना जरूरी होता है

उपसंहार—योजना से कार्य समय पर होता है, व्यवस्था से होता है, सभ
उसमें सहयोग देने को तैयार रहते हैं और सभी को कार्य की पूर्णता का आनन्द
मिलता है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(१) विद्यालय में कार्य योजनाबद्ध तरीके से हो इसके लिये हमें क्या करना चाहिये ?
(२) योजनाबद्ध तरीके से काम करने में जो लाभ हैं उन पर विस्तार से चर्चा कीजिये।

— : —

समय-विभाग-चक्र

प्रस्तावना—प्रत्येक विद्यालय में समय-विभाग-चक्र आवश्यक होता है। समय-विभाग-चक्र में यह स्पष्ट किया जाता है कि अमुक शिक्षक अमुक कक्षा को अमुक समय में अमुक विषय का अध्ययन कराएगा। इससे शिक्षक और छात्र दोनों ही नियमित प्रकार से काम करते रहने के आदी बन जाते है। विद्यालय अनुशासित रूप से काम करता रहता है और किस समय पर सारे विद्यालय में क्या-क्या गतिविधियाँ चलती हैं यह समझा जा सकता है और देखा जा सकता है।

समयविभागचक्र तैयार करने के पुराने नियम—पाठ्य-क्रम तैयार करते समय निम्न नियमों का पालन किया जाता था :—

(१) विषय की कठिनाई एवं सरलता के अनुसार अधिक व कम समय निश्चित किया जाता था।

(२) विषयों का क्रम इस प्रकार रखा जाता था कि बालकों को थकान न हो।

(३) सभी विषयों का समय-विभाग-चक्र मे समावेश किया जाना आवश्यक था। ऐसा सम्भव नहीं था कि शिक्षक कुछ दिनों एक ही विषय पढ़ाएँ और फिर दूसरा।

(४) विभिन्न विषय के विशेषज्ञ शिक्षकों द्वारा शिक्षा देना महत्वपूर्ण माना जाता था। शाला की एक कक्षा को सब विषय नहीं वरन् सम्पूर्ण शाला की सब कक्षाओं को एक शिक्षक एक विषय पढ़ाया करता था जिसका वह विशेषज्ञ होता था।

(५) एक ही समय पर दो कक्षायें एक ही विषय नहीं पढ़ सकती थीं, क्योंकि कमरे विषयवार होते थे और विषय-विशेष के कमरे में एक बार में एक ही कक्षा अध्ययन कर सकती थी।

बुनियादी शाला में पुराने नियमों का पालन एक समस्या—बुनियादी-शाला के समय-विभाग-चक्र मे पुराने नियम अब अधिक कारगर नहीं रहे और पुराने तरीके के अनुसार निश्चित समय पर घण्टी बजाने के साथ ही निश्चित विषय का शिक्षण प्रारम्भ होने की व्यवस्था अब सम्भव नहीं है। अब शिक्षक को कितना समय प्रतिदिन किस विषय को देना है, इसी बाबत सचेत रहना पड़ता है।

प्रत्येक विषय को दिये जाने के समय का परिमाण—शिक्षक को प्रतिदिन पाठ्यक्रम के अन्दर सम्मिलित प्रत्येक विषय पर कितना समय लगाना चाहिये, इसका परिमाण निम्न प्रकार है :—

विषय	समय
उद्योग	कक्षा १ से ३—एक घंटा प्रतिदिन।
	कक्षा ४ से ५—डेढ़ घंटा प्रतिदिन।

विषय	समय
	कक्षा ६ से ८—दो घंटा प्रतिदिन।
मातृ भाषा··········	४० मिनट प्रतिदिन।
सामाजिक ज्ञान एवं सामान्य विज्ञान···	५० मिनट प्रतिदिन।
गणित··············	२० मिनट प्रतिदिन।
कला···············	४० मिनट प्रतिदिन।
अंग्रेजी············	४० मिनट प्रतिदिन।
खेल एवं व्यायाम···	३० मिनट प्रतिदिन।

यहां यह स्पष्ट किया जाना आवश्यक है कि उपरोक्त समय प्रत्येक विष
प्रतिदिन लगाया जाये, यह कदापि आवश्यक नहीं है, वरन् आवश्यकतानुसार क
अधिक समय विभिन्न विषयों में लगाये जाने की बुनियादी-शाला में पूर्ण स्वतन्त्रता
यह उपरोक्त समय का वितरण तो केवल इस दृष्टि से दिया गया है कि सम्पूर्ण
में जो समय प्रत्येक विषय पर लगाया गया था, उसका औसत उपरोक्त अनुसार
चाहिये।

इसी के साथ यह विवेचन जरूरी भी है कि उद्योग के लिये निश्चित समय
अन्दर भी उद्योग से सम्बन्धित सभी अंग जैसे शिक्षक और छात्रों द्वारा उद्योग
तैयारी में लगने वाला समय, समवाय में व्यय होने वाला समय, उद्योग की शास्त्री
पद्धति को समझाने में लगने वाला समय एवं अन्त में उद्योग का सामान बटोरने
लगने वाला समय, सभी इस सम्पूर्ण समय के अन्दर ही सम्मिलित होते हैं। इस प्र
उद्योग पर लगाये जाने वाला समय अधिक नहीं है। प्रत्येक स्थिति में निर्णा
शिक्षक ही होगा जो समय के परिमाण को बढ़ाने एवं घटाने के लिये पूरी त
स्वतन्त्र होगा। वर्ष में कुछ दिन ऐसे भी आएँगे जब बालक एवं शिक्षक सारे
खेत में काम करेंगे और कुछ अवसर ऐसे भी आएँगे जब उद्योग को बहुत कम
दिया जा सकेगा। यह तो सब कुछ अवसर एवं परिस्थिति पर निर्भर करेगा। उद्यो
का सारा समय एक बार में लगातार ही पूर्ण नहीं किया जाना चाहिये। परन्तु ए
या दो भाग में काम को चलाया जाना चाहिये जिससे बालक ऊब न जाएँ। इस दृ
से एक बार में उद्योग कम से कम ३० मिनट तक भी चलाया जा सकेगा।

साधारणतः सभी स्वीकार करते हैं कि शाला में, मूल उद्योग एक ही चलाय
जाना है। परन्तु इसके साथ कम-से-कम एक सहायक उद्योग की भी व्यवस्थ
अनिवार्य है। ये उद्योग बालक के कार्य में परिवर्तन लाकर उनको थकान से बचाने
सहायक होंगे। साधारणतः शालों में मूल उद्योग का स्थान कृषि एवं बागवानी
प्राप्त करेंगे, पर मूल उद्योग के साथ सहायक उद्योग का स्थान वातावरण
आवश्यकता के अनुकूल कोई भी उद्योग आसानी से ग्रहण कर सकता है।

बुनियादी-शालाओं में शारीरिक क्रियाएँ एक प्रमुख स्थान रखती हैं क्योंकि
इनका महत्व यहां पर स्वास्थ्य के दृष्टिकोण से है। इस दृष्टि से इनका आयोजन शाला-
समय के अन्तर्गत ही होगा, परन्तु दैनिक खेल स्कूल के समय के अन्दर या बाहर

परिस्थिति के अनुसार आयोजित किये जा सकते हैं। आवश्यकतानुसार खेल का समय बढ़ाया या घटाया भी जा सकता है।

बुनियादी-शाला का समय-विभाग-चक्र—उपरोक्त सिद्धान्तों के आधार पर बुनियादी-शाला के समय-विभाग-चक्र की रूपरेखा इस प्रकार होगी :—

१. प्रातः १०-१५ सूचना की घंटी।
२ „ १०-३० कार्यारम्भ की घंटी।
३. „ १०-३०—१०-४० उपस्थिति-लेखन व सफाई के काम का वितरण।
४. „ १०-४०—११-०० शाला की सामूहिक सफाई।
५. „ ११-००—११-४५ सामूहिक प्रार्थना, प्रवचन एवं सूत्र-यज्ञ
६. „ ११-४५—१-४५ समवाय शिक्षण।
७. अपराह्न १-४५—२-१५ अवकाश।
८. „ २-१५—२-२५ उपस्थिति-लेखन।
९. „ २-२५—४-२५ समवाय-शिक्षण।
१०. „ ४-२५—४-५५ शैक्षणिक खेल।
११. „ ४-५५—५-०० राष्ट्रीय गान।
१२. „ ५-००—विसर्जन।

समय विभाग-चक्र की विशद् व्याख्या—शाला का कार्य शुरू होने की सूचना देने हेतु १०-१५ से ही प्रतिदिन सूचना की घंटी का बजना प्रारम्भ हो जाएगा। छात्रों को भी यह जानकारी स्पष्ट रूप से दी हुई होगी कि इस घंटी के प्रारम्भ के ठीक १५ मिनट पश्चात् कार्यारम्भ होगा। कार्यारम्भ की घंटी ठीक १०-३० बजे बजते ही उपस्थिति का लेखन शुरू हो जाएगा। इसी समय पर सफाई के काम का वितरण भी होगा और १०-४० पर शाला की सामूहिक सफाई में शाला-समाज जुट जायेगा। यह कार्य २० मिनट तक चलता रहेगा। इसी समय पर छात्रों को अवसर-अवसर पर स्वास्थ्य, सामाजिक ज्ञान व सामान्य विज्ञान आदि विषयों का भी ज्ञान दिये जाने का उपयुक्त अवसर ढूंढ निकालने का प्रयत्न किया जाएगा। ठीक ११ बजे से सामूहिक प्रार्थना प्रारम्भ होगी। जहां पर ध्वजारोहण की प्रथा होती है, वहां इस समय ध्वज फहराया जाता है और ध्वजावन्दन गीत गाया जाता है। यह सारा कार्य ५ मिनट में पूरा होकर सूत्र-यज्ञ प्रारम्भ हो जाता है, जो करीब १० मिनट तक चलता है। इसी समय पर आवश्यकतानुसार प्रवचन का भी आयोजन कर लिया जाता है। ११-४५ बजे से समवाय-शिक्षण प्रारम्भ होता है और १-४५ बजे तक चलता है। शिक्षक इस समय-योजना में उपयुक्त जंचने वाले किन्हीं विषयों को पढ़ाने के लिए पूर्णतः स्वतन्त्र है। तत्पश्चात् अवकाश का समय प्रारम्भ हो जाता है, जिसका उपयोग अलग-अलग बच्चे अपनी-अपनी आवश्यकतानुसार अलग-अलग तरीकों से करते हैं। उपस्थिति-लेखन का कार्य दूसरी इकाई के प्रारम्भ से पूर्व आवश्यक होता है। अतः २-१५ से २-२५ बजे तक यह कार्य होकर पुनः समवाय-शिक्षण शुरू हो जाता है जो २-२५ से ४-२५ तक चलता

रहता है। शैक्षणिक खेल ४-२५ से प्रारम्भ हो जाते हैं और ३० मिनट तक चलते हैं। घर जाने के पूर्व राष्ट्र-गान बुनियादी-शाला की दिनचर्या का प्रमुख अंग होता है। स्कूल के प्रारम्भ के समय प्रार्थना एवं प्रवचन का उद्देश्य यह है कि उस दिन शाला-जीवन का शाला-समाज को अधिक से अधिक लाभ पहुँचे, इस हेतु हम कामना करते हैं। शाला-कार्य की समाप्ति पर राष्ट्र-गान में यह भावना अन्तर्निहित है कि शाला के समय के अतिरिक्त समय के लिए राष्ट्रीय भावना से ओत-प्रोत होकर सभी अपने-अपने घर जावें और दूसरे दिन शाला में लौटने तक किये जाने वाले कार्यों में व्यक्तिगत हित की तुलना में राष्ट्रीय हित को अधिक महत्त्व दिया जाए।

बुनियादी-शाला का सम्पूर्ण दिवस का समय-विभाग-चक्र—हमने ऐसी शाला के समय-विभाग-चक्र का अध्ययन किया है, जहाँ बालक साढ़े दस बजे आते हैं और पाँच बजे लौट जाते हैं। शेष समय में वे स्कूल से बाहर ही रहते हैं। बालकों की शिक्षा को सुयोजित करने के उद्देश्य से छात्रों को शाला में ही आकर रहने और विद्याध्ययन की सुविधा देना बड़ा जरूरी है। ऐसी शाला को आचार्य विनोबा जी ने कौटुम्बिक शाला का नाम दिया है। कौटुम्बिक शाला के सम्पूर्ण दिवसीय समय-विभाग-चक्र की रूपरेखा इस पुस्तक के 'छात्रावास' नामक अध्याय में दी गई है।

शिक्षकवार समय-विभाग-चक्र—शिक्षकवार समय-विभाग-चक्र की व्यवस्था की दशा में विषयवार अध्यापक होते हैं। प्रत्येक शिक्षक अपने विषय को सब कक्षाओं को पढ़ाता है। यह प्रणाली उच्च कक्षाओं में तो लाभकारी रहती है क्योंकि छात्रों को विभिन्न विषयों में दक्ष अध्यापकों का मार्गदर्शन मिलता है। परन्तु बुनियादी-शाला के समवायी शिक्षण में यह प्रणाली लागू नहीं होती, अतः यहाँ इसका उपयोग नहीं होता। केवल अंग्रेजी ही ऐसा विषय है, जिसका समवाय प्रणाली में मेल न बैठने से, इसे अलग पढ़ाया जा सकता है। इस दृष्टि से अंग्रेजी का शिक्षण ही एक अपवाद है, जिसके शिक्षक के लिए विषयवार समय-विभाग-चक्र बुनियादी शाला-स्तर पर लाभकारी रह सकता है।

कक्षावार समय-विभाग-चक्र—बुनियादी-शाला के लिए कक्षावार समय-विभाग-चक्र ही उपयोगी रहता है। समवाय-शिक्षण में प्रवृत्ति से सब विषयों का मेल वही शिक्षक उपयुक्त प्रकार से बिठा सकता है, जो सारे दिन एक ही कक्षा को [illegible]। तभी वह योजनाबद्ध तरीके से निश्चित दिन के लिए चुनी हुई प्रवृत्ति को [illegible] और उससे विभिन्न विषयों का मेल बिठाकर छात्रों की शिक्षा [illegible] करेगा। वैसे अबुनियादी शालाओं में भी यही तरीका उपयुक्त रहता [illegible] करेंगे, [illegible]तः प्राथमिक शालाओं में इसे ही अपनाया भी जाता है। यह स्तर [illegible] के [illegible]इसमें विषयवार अध्यापकों की आवश्यकता नहीं है। यहाँ तो बुनियादी-[illegible] हासिल की करनी है, जो विशेष कक्षाओं के शिक्षण में महत्त्व वहाँ पर [illegible]।

[illegible] के अन्तर्गत ही होने की परिस्थिति और उपरोक्त सिद्धान्तों का समुचित

उपयोग करके शाला का समय-विभाग-चक्र बनाया जावे और शिक्षण-प्रक्रिया का सफलता से सञ्चालन किया जावे।

सारांश

प्रस्तावना—शाला का समय-विभाग-चक्र शाला को सुयोजित रूप से चलाने का ही एक साधन है।

समय-विभाग-चक्र तैयारी करने के पुराने नियम—ये नियम अब कारगर नहीं हैं।

बुनियादी-शाला में पुराने नियमों का पालन एक समस्या—समवाय-पद्धति से बाल-मनोवृत्ति के अनुकूल शिक्षण ने पुराने बन्धनों से जकड़े हुए समय-विभाग-चक्र का स्थान स्वतन्त्रता से परिपूर्ण समय-विभाग-चक्र ने ले लिया है। अब पुराने नियम अधिक कारगर नहीं रहे हैं।

प्रत्येक विषय को दिये जाने के समय का परिमाण—समय का परिमाण प्रतिदिन की दर से इस प्रकार हो —(१) उद्योग—एक से दो घण्टे तक, (२) मातृभाषा—४० मिनट, (३) सामाजिक ज्ञान एवं सामान्य-विज्ञान—५० मिनट, (४) गणित—२० मिनट, (५) कला—४० मिनट, (६) अंग्रेजी ४० मिनट, (७) खेल एवं व्यायाम—३० मिनट। यह समय आवश्यकतानुसार बढ़ाने-घटाने को शिक्षक पूर्णतया स्वतन्त्र है।

बुनियादी-शाला का समय-विभाग-चक्र—इस समय-विभाग-चक्र की विशेषता यह है कि इसमें पुराने समय-विभाग-चक्र के अनुसार विषयवार घंटियाँ नहीं होतीं वरन् वहाँ तो समवाय-शिक्षण की दो इकाइयाँ होती हैं। इन दोनों इकाइयों में शिक्षक पाठ्य विषयों को आवश्यकतानुसार सम्मिलित करता है और बालमनोवृत्ति का पूर्ण ध्यान रखकर शिक्षण-कार्य चलाता है।

समय-विभाग-चक्र की विशद व्याख्या—इस समय-विभाग-चक्र में उपस्थिति-लेखन, शाला-सफाई, सामूहिक प्रार्थना, प्रवचन, मुख-यज्ञ, समवाय-शिक्षण, शैक्षणिक खेल आदि सभी क्रियाओं के लिए समय का वितरण अंकित होता है।

बुनियादी-शाला का सम्पूर्ण दिवस का समय-विभाग-चक्र—साधारण समय-विभाग-चक्र की तुलना में इसमें छात्रों को सामूहिक भोजन, व्यक्तिगत अध्ययन आदि का अतिरिक्त अवसर प्राप्त होता है।

विषयवार समय-विभाग-चक्र—यह बुनियादी शालाओं के लिए उपयुक्त नहीं रहता।

प्रकारवार समय-विभाग-चक्र—यही बुनियादी-शाला में समवाय की शिक्षा को कुशलता से चलाने में सहायक रहता है।

उपसंहार—उपरोक्त सिद्धान्त और शाला की परिस्थिति को दृष्टि में रखकर शिक्षक अपनी शाला का समय-विभाग-चक्र तैयार करेगा।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(१) बुनियादी शाला में प्रत्येक विषय के अध्यापन के लिये कितना-कितना समय दिया जाता है? समय के वितरण पर किन किन परिस्थितियों का प्रभाव पड़ता है? विस्तार से लिखिए।

(२) ८-घण्टे वाले दिन की शाला का समय-विभाग-चक्र बनाते समय आप किन बिन्दुओं पर विशेष प्रकार से ध्यान देंगे? ऐसे समय-विभाग-चक्र के बनाने में क्या-क्या कठिनाइयाँ पैदा होती हैं? उनका हल आप कैसे निकालेंगे?

: ६ :

एक-अध्यापकीय शाला का समय-विभाग चक्र

प्रस्तावना—हमारा देश इस समय अनिवार्य शिक्षा-कार्यक्रम को कार्यान्वित करने में लगा हुआ है। छः से ग्यारह वर्ष की आयु के सभी छात्रों को अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा का अवसर उपलब्ध करने का यत्न वर्तमान दशा में हो रहा। इस उद्देश्य की पूर्ति-हेतु गांवों में प्राथमिक शालाएँ खुलती जा रही हैं। किसी जगह नई प्राथमिक शाला खुलती है तो उसमें इस स्तर की पहली कक्षा छात्र प्रवेश पाते हैं और क्रमशः पांच वर्ष में पांचों कक्षाओं का शिक्षण शुरू होता है। इन प्रारंभिक प्राथमिक विद्यालयों में एक अध्यापक की नियुक्ति होती है। शुरू तो एक अध्यापक एक कक्षा को पढ़ा लेता है परन्तु जब कक्षाओं की संख्या बढ़ती तो एक से अधिक कक्षाओं को भी उसी एक अध्यापक को ही पढ़ाना पड़ता है। स्थिति तब तक चलती है जब तक छात्रों की संख्या इतनी ज्यादा हो जावे कि शिक्षा-विभाग और भी अध्यापकों की उस विद्यालय में नियुक्ति करने को राजी हो जावे। ऐसी स्थिति आने के पूर्व अगर छात्रों की संख्या कम है तो विद्यालय में एक से पांच तक कक्षाएं भी हो सकती हैं परन्तु अध्यापक एक ही बना रह सकता है।

नवीन स्थिति का सामना एक अध्यापक कैसे करे ?—इस प्रकार एक अध्यापक और पांच कक्षाएं अगर एक प्राथमिक शाला में हों तो इस स्थिति को हमें नवीन स्थिति ही कहना पड़ेगा। ऐसी प्राथमिक शाला में स्वयं अध्यापक ने अगर शिक्षा पाई हो तो वह इसकी कार्यप्रणाली का जानकार हो सकता है। परन्तु यह स्थिति पहले कभी नहीं रही। पहले इसका होना संभव भी नहीं था क्योंकि पहले शिक्षा की अनिवार्यता देश-व्यापी स्तर पर लागू नहीं हो सकी थी। अतः इस नवीन योजना के अनुसार कुछेक नवीन स्थितियों का सामने आना स्वाभाविक ही है। इन्हीं नवीन स्थितियों में से एक नवीन स्थिति यह भी है कि एक अध्यापक पांच कक्षाओं को कैसे पढ़ावे ?

बुनियादी तालीमी शाला में इसका सामना करना सरल है—परंपरागत शालाओं का कार्य तो फिर भी ऐसा है जिसमें एक अध्यापक द्वारा पांच कक्षाओं को पढ़ाना मुश्किल काम हो सकता है, परन्तु बुनियादी शालाओं में यह काम उतना कठिन नहीं है। इसका एक प्रमुख कारण यह है कि इसमें बालक उद्योग-कार्य में अन्य विषयों की तुलना में सबसे ज्यादा समय लगाता है। यह कार्य बालक खुद भी कर सकते हैं। यहाँ पर कुछेक प्रवृत्तियाँ जैसे शाला की सफाई, खेल व व्यायाम आदि सभी छात्र साथ-साथ भी पूरी कर सकते हैं। यहाँ के छात्र अधिक अनुशासित भी होते हैं। इनके अलावा कुछेक सामान्य शिक्षक सूत्र भी ढूंढ निकाल सकता है कि जिससे विद्यालय व्यवस्थित रूप से चल सके और कक्षाओं का शिक्षण-कार्य चालू रह सके।

एक साथ पांच कक्षाओं के पढ़ाने की बात पर चर्चा करते हुए साधारणतः यही समझ लेते हैं कि इस स्थिति में प्रत्येक कक्षा में करीब ४० छात्र होंगे और

एक अध्यापक २०० छात्रों को अकेला कैसे पढ़ा सकता है ? पढ़ाने की बात तो दूर रही वह उन्हें अनुशासित भी नहीं रख सकता है। परन्तु यह धारणा गलत है। इतने छात्रों के होने की दशा में तो निश्चित ही शिक्षा-विभाग अधिक अध्यापकों की व्यवस्था कर ही देता है। एक अध्यापक द्वारा पाँचों कक्षाओं को शिक्षा देने की स्थिति तो तभी आती है जब एक प्राथमिक विद्यालय में सब कक्षाओं के छात्र मिला कर कुल करीब चालीस ही हों। तब यह स्वाभाविक ही है कि इनका विवरण कक्षावार साधारणतः निम्न प्रकार ही होगा :—

क्रम	कक्षा	छात्र-संख्या
१	I	१५
२	II	११
३	III	६
४	IV	५
५	V	३
		योग ४० छात्र

जब छात्रों की संख्या इस प्रकार की हो, जैसा कि साधारणतः होता ही है तो अध्यापक के सामने न तो अनुशासन की समस्या ही आती है और न उन बालकों को पढ़ाना ही कठिन काम रह पाता है। ऐसी स्थिति में समय-विभाग-चक्र बनाते समय शिक्षक को कुछेक सिद्धान्त दृष्टि में रखने चाहिएं।

एक-अध्यापकीय प्राथमिक शाला के समय-विभाग-चक्र के निर्माण के सिद्धान्त—इस स्तर पर शिक्षक को निम्न सिद्धान्तों को दृष्टि में रखकर अपने विद्यालय का समय-विभाग-चक्र तैयार करना चाहिए :—

(१) कुछेक विषय ऐसे होते हैं जिनमें शिक्षक का छात्रों को मार्गदर्शन देना ही पर्याप्त होता है और फिर वे स्वयं उसमें लगे रह सकते हैं।

(२) कुछेक विषयों की शिक्षा दो कक्षाओं को एक साथ बिठाकर दी जा सकती है।

(३) जब शिक्षक को एक ही घड़ी में साथ-साथ दो अलग-अलग कक्षाओं को पढ़ाना पड़े तो उसे एक दिन एक कक्षा को नया पाठ और दूसरे दिन दूसरी कक्षा को नया पाठ पढ़ाना चाहिए। किसी एक दिन जब एक कक्षा को नया पाठ पढ़ाया जावे तो दूसरी को उसके पूर्व दिवस पढ़ाए गए पाठ-सम्बन्धित लिखित कार्य कक्षा में करने को दे देना चाहिए।

(४) कक्षा के मानीटर से, कक्षा की व्यवस्था में प्रमुखतः और शिक्षण-कार्य में जहाँ वह सहायता कर सके, मदद लेनी चाहिए।

(५) एक-अध्यापकीय शाला में, छात्रों से ऐसे लिखित कार्य जैसे सुलेख, नकल, गिनती आदि अधिक कराये जाने चाहिए।

समय-विभाग-चक्र का निर्माण—उपरोक्त सिद्धान्त को दृष्टि में रखते हुए जिस समय-विभाग चक्र का निर्माण होगा उसका प्रारूप निम्न प्रकार का होगा :—

—: एक-अध्यापकीय शाला का समय-विभाग-चक्र :—

कक्षा	१	२	३	४	५	६	७	८
I	हिन्दी*	हिन्दी (नकल करना)	कला	गणित*	हिन्दी व पहाड़े सिखना	उद्योग	गिनती बोलना	खेल
II	हिन्दी*	कला	गणित*	सामाजिक* ज्ञान	उद्योग	सामान्य* विज्ञान	पहाड़े बोलना	खेल
III	उद्योग	उद्योग	गणित*	कला	खेल	हिन्दी*	सामान्य* विज्ञान	सामाजिक* ज्ञान
IV	उद्योग	गणित*	उद्योग	कला	हिन्दी*	सामान्य-* विज्ञान	खेल	सामाजिक* ज्ञान
V	उद्योग	गणित*	उद्योग	सामाजिक* ज्ञान	हिन्दी*	कला	अंग्रेजी*	सामान्य-* विज्ञान

नोट :—शिक्षक प्रत्येक घंटी में भिन्न-भिन्न कक्षाओं में पढ़ायेगा जहाँ (*) चिन्ह अंकित किया गया है, जहाँ यह चिन्ह नहीं है वहाँ शिक्षक बालकों व मॉनीटर को कार्य करने के लिए आवश्यक निर्देश देगा।

नमूने के समय-विभाग-चक्र की विशद् व्याख्या—सूचना की घंटी बजने के १५ मिनट पश्चात् विद्यालय का कार्य शुरु हो जाता है। उपस्थिति सब बालकों की अकेला अध्यापक ही ले सकता है। शाला की सामूहिक सफाई में आवश्यकतानुसार सहयोग' मार्गदर्शन एवं निरीक्षण अकेला अध्यापक ही कर सकता है। प्रार्थना, प्रवचन एवं सूत्र-यज्ञ मे सारी कक्षाएं साथ-साथ ही भाग लेती हैं, अतः इन कार्यों में अध्यापक को कोई भी कठिनाई होने की सम्भावना नही है।

(१) पहली घंटी—इससे शिक्षण-कार्य प्रारम्भ हो जाता है। सभी बालक और शिक्षक एक साथ एक ही स्थान पर बैठते हैं। सब कक्षाओं के बच्चे अध्यापक के सामने बैठते हैं। इस घटी मे शिक्षक कक्षा एक व दो को एक साथ पढ़ाते। कभी-कभी वह पहली घटी के शुरु का आधा समय एक कक्षा में और बाद का आधा समय दूसरी कक्षा में भी लगा सकता है। परन्तु कक्षा एक व दो के हिन्दी के कार्य मे इतनी समानता होती है कि इन दोनों को साथ-साथ पढ़ाने मे दूसरी कक्षा के कमजोर छात्रो को भी मदद मिल जाती है। कक्षा ३, ४, ५, इस घटी मे उद्योग का जो कुछ कार्य करेंगी उनके विषय मे शिक्षक के लिए उन्हे समझा देना मात्र ही पर्याप्त होगा। फिर वे शान्ति से अपन-अपना कार्य करने मे लगी रह सकती हैं।

(२) दूसरी घंटी—इस समय कक्षा १ हिन्दी के पाठ की नकल करेगी। यह काम शिक्षक प्रथम घटी में ही कक्षा को बता देगा। कक्षा २ कला में व्यस्त रहेगी, जिसके लिए शिक्षक इस घंटी के प्रथम ५-७ मिनट में जो भी इस कक्षा को कार्य करना है, उसको समझाकर बालकों पर कार्य पूरा करने का जिम्मा छोड़ सकता है। तीसरी कक्षा इस समय प्रथम घटी से शुरु किये गए उद्योग-कार्य को चालू रखेगी। चौथी और पाँचवी कक्षाएं गणित की शिक्षा ग्रहण करेंगी। इनमें जब कक्षा ४ को नवीन प्रकार के प्रश्न सिखाए जावे तो कक्षा ५ को सिखाए गए तरीके के अभ्यास के लिये प्रश्न करने को दिये जावें। जब कक्षा ५ को नया तरीका समझाया जावे तो कक्षा ४ को अभ्यास के प्रश्न दिये जावें। वैसे भी इन कक्षाओं मे एक दिन छोड़ कर भी नया तरीका पढ़ाने की स्थिति नहीं आती वरन् एक तरीका समझाने के पश्चात् कई दिनों तक उस पर अभ्यास कराया जाता है, अतः ये दोनों कक्षाएं बड़ी सरलता से पढ़ाई जा सकती हैं।

(३) तीसरी घंटी—इस घटी में कक्षा २ और ३ गणित एक ही साथ पढ़ेगी। गणित के विषय मे दूसरी घटी के कार्य के स्पष्टीकरण के समय चर्चा कर ली गई है। वही तरीका यहां भी लागू होगा। कक्षा २ की कला और कक्षा ४ व ५ की उद्योग की शिक्षा में भी वही तरीका अपनाया जावेगा जिसकी दूसरी घटी के कार्य के स्पष्टीकरण के समय चर्चा कर ली गई है।

(४) चौथी घंटी—इसमें कक्षा १ को गणित में साधारणतः गिनती और बाद मे पहाड़े पढ़ाए जाते हैं। कक्षा को इस घटी के आरम्भिक १०-१५ मिनट मे रोजाना नया सबक देकर या लिखने को काम देकर शिक्षक कक्षा २ को सामाजिक ज्ञान का नया पाठ पढ़ाने, सोमवार, बुधवार और शुक्रवार के दिन जा सकता है। इन दिनो कक्षा पांच इस घंटी में लिखित कार्य करेगी। कक्षा पांच इस घंटी मे

मंगलवार, गुरुवार और शनिवार को शिक्षक से नया पाठ पढ़ेगी और नभी कक्षाएं इस घंटी में लिखित कार्य में व्यस्त रहेगी। कक्षा दो और पांच में नए पाठ पढ़ाने के दिन, एक-एक दिन छोड़ कर इसीलिये निश्चित किये गए हैं कि जिससे नए पाठ पढ़ने के ठीक दूसरे दिन कक्षा उस पाठ से सम्बन्धित लिखित कार्य करने में लगी रह सके। कक्षा तीन और चार कला का कार्य करने में व्यस्त रह सकती है। ये दोनों साथ भी बैठ सकती हैं। शिक्षक आवश्यकतानुसार बालकों को कार्य शुरू करने की प्रेरणा देकर अन्य कार्य में लग सकता है।

(५) पांचवीं घंटी—इसमें सामान्यतः कक्षा चार और पांच दोनों साथ-साथ बैठ सकती हैं। यहां शिक्षक सारी घंटी के समय को दो भागों में बांट कर दोनों को नया पाठ पढ़ा सकता है। मगर वह चाहे तो एक दिन एक कक्षा को नया पाठ और दूसरे दिन दूसरी को नया पाठ पढ़ाने की व्यवस्था भी अपना सकता है। जब एक कक्षा को पूरे समय पाठ पढ़ाया जावेगा तो दूसरी कक्षा पूर्व दिवस पढ़ाए गए पाठ का लिखित-कार्य करने में व्यस्त रहेगी। कक्षा एक गिनती व पहाड़े लिखने का काम शुरू करेगी। कक्षा दो उद्योग-कार्य शुरू करेगी। कक्षा तीन बताए गए खेल खेलने में स्वयं ही व्यस्त रह सकेगी।

(६) छठी घंटी—इसमें कक्षा दो और चार दोनों सामान्य-विज्ञान का अध्ययन करेंगी। इन कक्षाओं में पढ़ाने और लिखित कार्य की व्यवस्था ठीक उसी प्रकार होगी जैसे कि चौथी घंटी में कक्षा दो और पांच को सामाजिक ज्ञान का अध्ययन कराते समय की गई थी। कक्षा तीन को हिन्दी इस घंटी के शुरू के आधे समय में या अन्त के आधे समय में पढ़ाया जाना उपयुक्त है। उद्योग व कला की कक्षाएं पूर्व बताई गई विधि से कार्य करती रह सकती हैं।

(७) सातवीं घंटी—इस घंटी में पांचवी कक्षा अंग्रेजी और तीसरी कक्षा सामान्य-विज्ञान का अध्ययन करेगी। शिक्षक को सोम, बुध और शुक्र को कक्षा पांच को अंग्रेजी पढ़ानी चाहिए। मंगल, गुरु और शनि को उसे कक्षा तीन को सामान्य-विज्ञान पढ़ाना चाहिए। जब एक कक्षा में पढ़ाने का कार्य होगा तो दूसरी में लिखित कार्य चलता रहेगा। कक्षा एक, दो और चार का काम मानीटरों के नेतृत्व में चलता रहेगा।

(८) आठवीं घंटी—इस घंटी में कक्षा पांच को रोजाना घंटी के शुरू के आधे समय में पाठ पढ़ाकर शिक्षक, एक दिन कक्षा तीन को और दूसरे दिन कक्षा चार को सामाजिक ज्ञान का अध्ययन करावेगा। शिक्षक जिस समय या जिस दिन किसी एक कक्षा को पढ़ा रहा होगा, उसी समय शेष कक्षाएं लिखित-कार्य करने में लगी रहेंगी। कक्षा एक व दो इस समय खेल खेलेंगी या घर चली जावेंगी।

उपसंहार—नमूने का पाठ्यक्रम सिर्फ इसी उद्देश्य से दिया गया है कि एक-अध्यापकीय शाला के अध्यापक को शुरू में मार्गदर्शन प्राप्त हो सके। जब वह इसके आधार पर कार्य करता जावेगा, तो उसे इसमें उसके निजी अनुभव होते जावेंगे जिनके ... वह सुधार करते हुए क्रमशः ऐसी स्थिति में आ जावेगा कि उसके खुद के ... हुए समय-विभाग-चक्र द्वारा वह अधिक दक्षता के कार्य कर सकेगा।

सारांश

प्रस्तावना—शिक्षण की अनिवार्यता ने एक अध्यापक द्वारा ही एक प्राथमिक शाला की पांचों कक्षाओं को पढ़ाना जरूरी बना दिया है।

इस स्थिति का सामना कैसे किया जावे ?—इस नवीन स्थिति का शिक्षक किस प्रकार सामना करे, यह आज की प्रमुख समस्या है।

बुनियादी तालीम ने इस समस्या को सरल बनाया है—बुनियादी शाला में सामूहिक कार्यक्रम अधिक होते हैं। यहां के छात्र अनुशासित भी होते हैं। यहां पर उद्योग भी चलते है जिनमे छात्र स्वतंत्र रह कर भी कार्यरत रह सकते है। इसके अतिरिक्त जब एक अध्यापक को पांच कक्षाएं पढ़ानी पड़ती हैं, छात्रों की संख्या भी साठ से अधिक नहीं होगी।

एक-अध्यापकीय शाला का समय-विभाग-चक्र बनाने के सिद्धान्त—इसका सिद्धान्त यह है कि जहां कक्षा को मार्ग-दर्शन देना पर्याप्त हो वहां इससे ही काम चलाया जावे, कभी दो कक्षाओं के साथ-साथ और जरूरत पड़ने पर तीन को भी एक ही घंटी में पढ़ाया जावे। जब शिक्षक एक जगह पढ़ाने मे व्यस्त हो तो बाकी को विभिन्न कार्यों में व्यस्त रखा जावे। कक्षा-मॉनीटरों से भी पूरी-पूरी मदद ली जावे।

समय-विभाग-चक्र का निर्माण—इसके बना लेने से शिक्षक योजनाबद्ध तरीके से काम करता रह सकता है।

नमूने के समय-विभाग-चक्र की विषद् व्याख्या—इस क्रम में यही बात महत्वपूर्ण है कि शिक्षक को प्रत्येक घंटी में एक से ज्यादा कक्षाओं से काम करना पड़ता है और सारे विद्यालय को व्यस्त रखना पड़ता है।

उपसहार—नमूने के कार्यक्रम को शिक्षक कार्य का आधार बनावे और अनुभव से उसमें सुधार करता हुआ अपने उद्देश्य मे सफलता हासिल करे।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(१) हमारे देश में एक-अध्यापकीय प्राथमिक शालाओं का क्या महत्व है ? इसके समय-विभाग-चक्र के निर्माण के सिद्धान्तों पर चर्चा कीजिये।

(२) एक-अध्यापकीय प्राथमिक शाला का समय-विभाग-चक्र तैयार कीजिये। यह भी समझाइये कि शिक्षक प्रत्येक घंटी में, एक से अधिक कक्षाओं को किस प्रकार कार्यरत रख सकेगा ?

—:०:—

(५) गृह-कार्य में बालकों की मानसिक स्थिति का ध्यान रखा जाना चाहिये। अर्थात् अस्वस्थ बालकों पर गृह-कार्य का भार अधिक नहीं डालना चाहिये। छोटे बालकों को उनकी आयु के अनुसार काम दिया जाना चाहिये। तीव्र बुद्धि बालकों को अधिक कार्य दिया जाना चाहिये।

(६) गृह-कार्य अध्यापक द्वारा कक्षा के गृह-कार्य सम्बन्धी समय-विभाग-चक्र के अनुसार अपने विषय का दिया जाना चाहिये, ताकि बालकों पर कार्याधिक्य का भार न पड़े।

(७) गृह-कार्य का उद्देश्य परीक्षा की तैयारी समझा जाता है। यह हमारी दोषपूर्ण परीक्षा-प्रणाली का फल है। परन्तु स्वाध्याय की दृष्टि से दिया गया ही कार्य ही अधिक उपयुक्त होगा।

गृह-कार्य में नवीन दृष्टिकोण—वर्तमान समय में पाठशाला का गृह-कार्य तथा शिक्षा दोनों ही छात्र के जीवन में मेल नहीं खाते। वर्तमान गृह-कार्य-प्रथा रुचिकर एवं अधिक लाभकारी नहीं। साथ ही यह भी देखा गया है कि छात्र नहीं चाहता कि पढ़ाई के भार को शाला से घर पर लाये। पाठशाला के समय बाद तो वह ऐसे कार्यों में प्रवृत्त होना चाहता है जिनमें उसे रुचि हो तथा वह [illegible] प्राप्त कर सके।

इन सभी कारणों से गृह-कार्य को पाठशाला की सीमा में ही सीमित करने के प्रयोग किए गए और वे बड़े सफल सिद्ध हुए हैं। इन कार्यों के लिये पाठशाला दैनिक समय-विभाग-चक्र में ही स्थान दिया जाने लगा। निश्चित योजना के अनुसार छात्रों से गृह-कार्य शाला-भवन में ही कराया जाने लगा। इसे उन शालाओं में गृह-कार्य न कह कर अभ्यास-कार्य के नाम से पुकारा जाता है क्योंकि अब गृह-कार्य की संज्ञा देना उचित नहीं प्रतीत होता।

इस पद्धति से वास्तव में कई लाभ हैं। सर्वप्रथम तो यही कि बालक शाला की सीमा छोड़कर जाता है, तो वह गृह-कार्य के मानसिक भार से मुक्त रहता है; उसकी 'रफ' (Rough) कार्य करने की आदत छूट जाती है और वह स्वच्छन्दतापूर्वक घर के कार्य में सहयोग दे सकता है अथवा खेल सकता है। दूसरा लाभ यह है कि छात्र दूसरे छात्र की कापी से नकल करने की प्रवृत्ति का भागी नहीं बनता। तीसरा लाभ यह है कि शाला के समय में ही गृह-कार्य कराए जाने से यदि छात्र को कोई कठिनाई है, तो तत्काल अध्यापक की सहायता से हल कर सकता है। चौथा लाभ यह है कि इस पद्धति से गृह-कार्य नियमित रूप से चल सकता है, जिससे गृह-कार्य का स्तर भी ऊंचा उठता है और विचारों में मौलिकता आने लगती है। पाँचवाँ लाभ यह है कि यह पद्धति उन छात्रों के लिये तो अत्यन्त लाभकारी सिद्ध हुई जिनके घर पर कार्य करने की सुविधाएं नहीं हैं। अनुपयुक्त गृह-व्यवस्था, पर... हुई स्थिति, गली का शोर-गुल, घर की साधन-हीनता, शैक्षणिक-वातावरण का अभाव आदि कई अव्यवस्थाओं से बालक बच जाता है। छठा लाभ यह है ... को यह समय गृह-कार्य की कापियाँ जाँचने के लिए मिल जाता है। ... यह आवश्यक है कि इस पद्धति का अनुसरण करने पर अध्यापक को ...

अधिक समय अवश्य खर्च करना पड़ता है।

इस प्रकार गृह-कार्य को शाला की सीमा में ही सम्पादित कराये जाने का नवीन दृष्टिकोण बड़ा सफल सिद्ध हुआ है। इसे वर्तमान शालाओं में सब जगह व्यापक रूप दिया जाना आवश्यक है।

बुनियादी-शाला की गृह-कार्य व्यवस्था—बुनियादी-शाला की गृह-कार्य पद्धति रूढ़िवादी शालाओं की गृह-कार्य पद्धति के दोषों से मुक्त होनी चाहिए। गृह-कार्य तभी अधिक सफलता के साथ किया जा सकता है जब बालक उसके करने में रुचि और आनन्द का अनुभव करे। इस दृष्टि से निम्न बातों पर ध्यान देना आवश्यक है :—

(१) बुनियादी-शालाओं में गृह-कार्य बहुत कम दिया जाना चाहिए। ग्रामीण पाठशालाओं के बालक शाला के दैनिक समय के शेष समय में घर के धन्धे सम्बन्धी कार्यों में परिवार को सहयोग देते हैं। अतः वे गृह-कार्य को घर पर भली-भाँति नहीं कर सकते। बिना बालकों की सहायता से परिवार के धन्धे सम्बन्धी अथवा कृषि-सम्बन्धी कतिपय कार्य नहीं चल सकते और बालक को इन कार्यों से वंचित किया जाना भी उचित नहीं। परिवार के कार्यों को करने के लिए भी बालकों को पर्याप्त अवसर मिलना चाहिए। अतः इस दृष्टि से बालकों को बहुत कम काम दिया जाना चाहिए।

(२) बुनियादी-शालाओं में बालकों को गृह-कार्य उन्हीं दिनों अधिक दिया जाना चाहिए, जिन दिनों उनके परिवार सम्बन्धी कार्यों से उनको समय मिलता हो। ग्राम-शालाओं में विशेषतः जब फसल का मौसम न हो, तभी बालकों को काम दिया जा सकता है।

(३) इन शालाओं में गृह-कार्य बालकों के जीवन से सम्बन्धित होना चाहिए अर्थात् गृह-कार्य ऐसा हो जो रुचि के अनुकूल हो तथा उनके ज्ञान और अनुभव की वृद्धि करने वाला हो। उनकी विभिन्न प्रवृत्तियों का विकास करने वाला हो जैसे उनकी संग्रह की प्रवृत्ति का विकास करने के लिए उनको विभिन्न पत्तियों के संग्रह का कार्य दिया जा सकता है। विभिन्न मिट्टी, विभिन्न पत्थर, विभिन्न लकड़ी आदि के संग्रह का कार्य सौंपा जा सकता है। इन संग्रहों का प्रयोग अध्यापक अपने पढ़ाने में सहायक सामग्री के रूप में कर सकता है, जिससे बालकों को गृह-कार्य के करने में प्रोत्साहन भी मिलेगा।

(४) बुनियादी-शाला के अध्यापक द्वारा दिया गया गृह-कार्य यदि बालक के उद्योग से सम्बन्ध रखता हो तो बालक उसके करने में रुचि का अनुभव करेगा। उसे उसके करने में आनन्द भी आवेगा। पर यह तभी सम्भव है जब उद्योग ऐसा हो जो गृह-कार्य के रूप में घर पर किया जा सकता हो।

(५) पहली कक्षा के बालकों को गृह-कार्य खेल सम्बन्धी दिये जाएं, जैसे मिट्टी के लड्डू बनाकर लाना, ताकि उनसे बालकों को गिनती सिखाई जा सके, कंकर इकट्ठे करके लाना अथवा चित्रकला सम्बन्धी कार्य दिये जाएं जैसे स्लेट पर पत्ता बनाकर लाना आदि। बालक ऐसे कार्यों के करने में बड़े आनन्द का अनुभव करते हैं।

(५) गृह-कार्य में बालकों की मानसिक स्थिति का ध्यान रखा जाना चाहिये। अर्थात् अस्वस्थ बालकों पर गृह-कार्य का भार अधिक नहीं डालना चाहिये। छोटे बालकों को उनकी आयु के अनुसार काम दिया जाना चाहिये। तीव्र बुद्धि बालकों को अधिक कार्य दिया जाना चाहिये।

(६) गृह-कार्य अध्यापक द्वारा कक्षा के गृह-कार्य सम्बन्धी समय-विभाग-चक्र के अनुसार अपने विषय का दिया जाना चाहिये, ताकि बालकों पर कार्याधिक्य का भार न पड़े।

(७) गृह-कार्य का उद्देश्य परीक्षा की तैयारी समझा जाता है। यह हमारी दोषपूर्ण परीक्षा-प्रणाली का फल है। परन्तु स्वाध्याय की दृष्टि से दिया गया कार्य ही अधिक उपयुक्त होगा।

गृह-कार्य में नवीन दृष्टिकोण—वर्तमान समय में पाठशाला का घर तथा शिक्षा दोनों ही छात्र के जीवन में मेल नहीं खाते। वर्तमान गृह-कार्य-प्रणाली रुचिकर एवं अधिक लाभकारी नहीं। साथ ही यह भी देखा गया है कि छात्र नहीं चाहता कि पढ़ाई के भार को शाला से घर पर लाये। पाठशाला के समय बाद तो वह ऐसे कार्यों में प्रवृत्त होना चाहता है जिनमें उसे रुचि हो तथा वह आनन्द प्राप्त कर सके।

इन सभी कारणों से गृह-कार्य को पाठशाला की सीमा में ही सीमित करने के प्रयोग किए गए और वे बड़े सफल सिद्ध हुए हैं। इन कार्यों के लिये पाठशाला के दैनिक समय-विभाग-चक्र में ही स्थान दिया जाने लगा। निश्चित योजना के अनुसार छात्रों से गृह-कार्य शाला-भवन में ही कराया जाने लगा। इसे उन अवस्थाओं में गृह-कार्य न कह कर अभ्यास-कार्य के नाम से पुकारा जाता है क्योंकि इसे गृह-कार्य की संज्ञा देना उचित नहीं प्रतीत होता।

इस पद्धति से बालक को कई लाभ हैं। सर्वप्रथम तो यही कि बालक जब शाला की सीमा छोड़कर जाता है तो वह गृह-कार्य के मानसिक भार से मुक्त रहता है, उसकी 'रफ' (Rough) कार्य करने की आदत छूट जाती है और वह स्वच्छन्दतापूर्वक घर के कार्य में सहयोग दे सकता है अथवा खेल सकता है। दूसरा लाभ यह है कि छात्र दूसरे छात्र की कापी से नकल करने की प्रवृत्ति का [illegible] नहीं बनता। तीसरा लाभ यह है कि शाला के समय में ही गृह-कार्य कराए जाने से यदि छात्र को कोई कठिनाई है, तो तत्काल अध्यापक की सहायता से दूर कर सकता है। चौथा लाभ यह है कि इस पद्धति से गृह-कार्य निर्धारित रूप से चल सकता है, जिससे गृह-कार्य का स्तर भी ऊंचा उठता है और विद्यार्थी में मौलिकता आने लगती है। पांचवां लाभ यह है कि यह पद्धति उन छात्रों के लिए तो अत्यन्त लाभकारी सिद्ध हुई है, जिनके घर पर कार्य करने की सुविधाएं नहीं हैं। प्रतिकूल गृह-व्यवस्था वाले [illegible] हुई स्थिति, बच्चों का शोर-गुल, घर की [illegible] इत्यादि कई कठिनाइयों से बालक बच जाता है। छठा लाभ यह है कि अध्यापकों को गृह-कार्य की कापियाँ जाँचने के लिए [illegible] मिल जाता है। यहाँ यह [illegible] है कि इस पद्धति का अनुसरण करने पर अध्यापक को [illegible]

अधिक समय अवश्य खर्च करना पड़ता है।

इस प्रकार गृह-कार्य को शाला की सीमा में ही सम्पादित कराये जाने का नवीन दृष्टिकोण बड़ा सफल सिद्ध हुआ है। इसे वर्तमान शालाओं में सब जगह व्यापक रूप दिया जाना आवश्यक है।

बुनियादी-शाला की गृह-कार्य व्यवस्था—बुनियादी-शाला की गृह-कार्य पद्धति रूढ़िवादी शालाओं की गृह-कार्य पद्धति के दोषों से मुक्त होनी चाहिए। गृह-कार्य तभी अधिक सफलता के साथ किया जा सकता है जब बालक उसके करने में रुचि और आनन्द का अनुभव करे। इस दृष्टि से निम्न बातों पर ध्यान देना आवश्यक है :—

(१) बुनियादी-शालाओं में गृह-कार्य बहुत कम दिया जाना चाहिए। ग्रामीण पाठशालाओं के बालक शाला के दैनिक समय के शेष समय में घर के धन्धे सम्बन्धी कार्यों में परिवार को सहयोग देते हैं। अतः वे गृह-कार्य को घर पर भली-भाँति नहीं कर सकते। बिना बालकों की सहायता से परिवार के धन्धे सम्बन्धी अथवा कृषि-सम्बन्धी कतिपय कार्य नहीं चल सकते और बालक को इन कार्यों से वंचित किया जाना भी उचित नहीं। परिवार के कार्यों को करने के लिए भी बालकों को पर्याप्त अवसर मिलना चाहिए। अतः इस दृष्टि से बालकों को बहुत कम काम दिया जाना चाहिए।

(२) बुनियादी-शालाओं में बालकों को गृह-कार्य उन्हीं दिनों अधिक दिया जाना चाहिए, जिन दिनों उनके परिवार सम्बन्धी कार्यों में उनको समय मिलता हो। ग्राम-शालाओं में विशेषतः जब फसल का मौसम न हो, तभी बालकों को काम दिया जा सकता है।

(३) इन शालाओं में गृह-कार्य बालकों के जीवन से सम्बन्धित होना चाहिए अर्थात् गृह-कार्य ऐसा हो जो रुचि के अनुकूल हो तथा उनके ज्ञान और अनुभव की वृद्धि करने वाला हो। उनकी विभिन्न प्रवृत्तियों का विकास करने वाला हो जैसे उनकी संग्रह की प्रवृत्ति का विकास करने के लिए उनको विभिन्न पत्तियों के संग्रह का कार्य दिया जा सकता है। विभिन्न मिट्टी, विभिन्न पत्थर, विभिन्न लकड़ी आदि के संग्रह का कार्य सौंपा जा सकता है। इन संग्रहों का प्रयोग अध्यापक अपने पढ़ाने में सहायक सामग्री के रूप में कर सकता है, जिससे बालकों को गृह-कार्य के करने में प्रोत्साहन भी मिलेगा।

(४) बुनियादी-शाला के अध्यापक द्वारा दिया गया गृह-कार्य यदि बालक के उद्योग से सम्बन्ध रखता हो तो बालक उसके करने में रुचि का अनुभव करेगा। उसे उसके करने में आनन्द भी आयेगा। पर यह तभी सम्भव है जब उद्योग ऐसा हो जो गृह-कार्य के रूप में घर पर किया जा सकता हो।

(५) पहली कक्षा के बालकों को गृह-कार्य खेल सम्बन्धी दिये जाएं; जैसे मिट्टी के लड्डू बनाकर लाना, ताकि उनसे बालकों को गिनती सिखाई जा सके, कंकर इकट्ठे करके लाना अथवा चित्रकला सम्बन्धी कार्य दिये जाएं जैसे स्लेट पर पत्ता बनाकर लाना आदि। बालक ऐसे कार्यों के करने में बड़े आनन्द का अनुभव करते हैं।

गृह-कार्य के उद्देश्य—(१) स्वतन्त्रतापूर्वक कार्य करने की क्षमता उत्पन्न
। (२) शाला में नई वस्तु की जानकारी प्रमुख होती है, पढ़ाये गये विषय पर
अध्ययन गृह-कार्य से हो सकता है। (३) समय का सदुपयोग। (४) शिक्षा,
, घर, अध्यापक, पालक और छात्र में समन्वय। (५) स्वावलम्बन और आत्म-
स उत्पन्न करना। (६) वार्षिक परीक्षा की तैयारी। (७) अध्यापक के कार्य
निरीक्षक के सम्मुख प्रदर्शन।

गृह कार्य की नियमितता—गृह-कार्य व्यवस्थित रूप से कराया जाना
ये। मनोवैज्ञानिक आधार पर कार्य दिया जाना चाहिए। गृह-कार्य का समय
-विभाग-चक्र बनाकर सभी विषयों को बराबर नियमित गृह-कार्य दिया जाना
ये ताकि बालक पर भार अधिक न पड़े।

अन्य आवश्यक बातें—(१) गृह-कार्य नकल की प्रवृत्ति को बढ़ाने वाला
। (२) गृह-कार्य की जाँच होनी चाहिए। (३) छोटी कक्षा में मौखिक कार्य
लिखित पुनरावृत्ति-स्वरूप होनी चाहिए। (४) लिखित के साथ मौखिक कार्य
कविता कंठाग्र करना आदि होना चाहिए। (५) मानसिक स्थिति के अनुकूल
चाहिए। (६) समय-विभाग-चक्र के अनुकूल हो। (७) स्वास्थ्य की दृष्टि से
जाना चाहिए।

गृह कार्य में नवीन दृष्टिकोण—गृह-कार्य को पाठशाला के दैनिक समय-
भाग-चक्र ही में स्थान दिया जाकर बालक से शाला-भवन में ही कराये जाने के
ोग सफल सिद्ध हुए हैं।

बुनियादी शाला में गृह-कार्य व्यवस्था—(१) ग्रामीण-शालाओं में
-कार्य कम दिया जाना चाहिए। (२) पारिवारिक धन्धे से मेल खाता हुआ होना
हिये। (३) जीवन से सम्बन्धित होना चाहिये जैसे पत्तियों के संग्रह आदि।
) उद्योग-सम्बन्धी होना चाहिये। (५) पहली कक्षा के बालकों को खेल सम्बन्धी
था चित्र कला सम्बन्धी गृह-कार्य दिया जाना चाहिए। (६) शाला के कार्य से
म्नता लिए हुए होना चाहिए। (७) नवीन दृष्टिकोण का प्रयोग लिखित कार्य में
या जा सकता है। (८) गृह-कार्य अध्यापक परस्पर ही निर्णय करके दें। (९) गृह-
ार्य स्वावलम्बी बनाने वाला होना चाहिये। (१०) एक भवन कार्य आदि गृह-
ार्य के रूप में देना चाहिए।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(१) गृह-कार्य देने के क्या उद्देश्य होते हैं? गृह-कार्य देने में किन-किन बातों का ध्यान
रखा जाना चाहिये? गृह-कार्य में नवीन दृष्टिकोण क्या है? आप उससे कहाँ तक सहमत हैं?

(२) बुनियादी-शाला में गृह-कार्य का क्या उद्देश्य होना चाहिये? गृह-कार्य देते समय
अध्यापक को किन-किन बातों का ध्यान रखना चाहिये?

—:०:—

: ११ :

थकान

मानव शरीर तथा थकान—मानव शरीर की तुलना प्रायः मशीन से [illegible] जाती है। वास्तव में मानव शरीर है भी यन्त्रवत् ही। मानव शरीर में तथा [illegible] कई समानताएं हैं—दोनों ही कार्य करते हैं। दोनों में गति होती है। गति से [illegible] क्षीण होती है। शक्ति की प्राप्ति मानव शरीर भोजन तथा अन्य खाद्य वस्तुओं [illegible] और हवा द्वारा करता है और कोयला व तेल आदि से यन्त्र शक्ति प्राप्त करता है। यन्त्र में खराबी होती है। मानव शरीर भी विकार-ग्रस्त होता है। यन्त्र शनैः [illegible] जर्जरित और क्षीण होता जाता है। और मानव शरीर भी वृद्धावस्था की [illegible] अग्रसर होता जाता है। इस प्रकार मानव शरीर और यन्त्र में कई समानताएं हैं। इतनी समानताएं होने पर भी कई महत्वपूर्ण असमानताएं हैं। प्रथम तो यह [illegible] मानव-शरीर एक-सी परिस्थिति उत्पन्न होने पर भी एक-सा कार्य नहीं करता, [illegible] वह विचारवान है और सोच-समझ कर कार्य करता है। दूसरी असमानता यह है [illegible] मनुष्य यन्त्र के समान लगातार काम नहीं कर सकता, क्योंकि मानव शरीर थक [illegible] है। यह थकान प्रत्येक प्राणी में आती है। चाहे वह मनुष्य हो या पशु। पर मनु[illegible] पशुओं की अपेक्षा शीघ्र थकता है और अपनी थकान को व्यक्त कर सकता है। [illegible] में थकान आने के बाद उसके कार्य की गति शिथिल हो जाती है। उसमें थकान [illegible] लक्षण स्पष्ट लक्षित होते हैं।

थकान के लक्षण—बालक, युवक और वृद्ध सभी में थकान के लक्षण [illegible] दिखाई देते हैं। थकान होने पर बालक के शरीर में निम्नलिखित लक्षण दि[illegible] देते हैं :—

(१) कार्य करने में शिथिलता विदित होना—बालक थक जाने पर [illegible] दिखाई देने लगता है। उसके चेहरे पर शिथिलता दृष्टिगोचर होने लगती [illegible] उसके कार्य की गति में चपलता नहीं रहती, स्फूर्ति नहीं रहती।

(२) कार्य करते-करते जम्भाई व अंगड़ाई आना—जब थकान आने [illegible] कार्य में शिथिलता आने लगती है, तो शरीर पर उसका प्रभाव जम्भाई और अंग[illegible] के रूप में दिखाई देने लगता है। जम्भाई और अंगड़ाई सुस्ती का प्रतीक है।

(३) आंखों की पलकों का बन्द होना—थकान प्रारम्भ होने पर आंखें [illegible] होने लगती हैं और शनैः शनैः पलक बन्द होने लगते हैं। थकावट दूर करने के [illegible] स्वाभाविक उपाय, निद्रा की तैयारी होने लगती है। आंखों को खोलने में [illegible] महसूस होता है।

(४) कार्य करने में सीधा न बैठा रहना—शाला में दैनिक समय के [illegible] में छात्र तनकर बैठे हुए दिखाई देते हैं, पर दैनिक समय की समाप्ति के [illegible]

ते-पहुँचते कमर झुकने लगती है। प्रयत्न करने पर भी छात्र सीधे नहीं बैठ
ते।

(५) ध्यान में चंचलता आना—थकान होने पर मन की एकाग्रता नहीं
ती। कार्य करने में मन नहीं लगता। ध्यान इधर-उधर बँटने लग जाता है।

(६) कार्य में त्रुटियों का प्रारम्भ—ध्यान भंग होने के कारण कार्य में
टियां होना प्रारम्भ होती हैं। ज्यों-ज्यों थकान की मात्रा बढ़ती जाती है, त्यों त्यों
र्य में मन नहीं लगता। ध्यान भंग हो जाता है और त्रुटियों की संख्या बढ़ने
ती है।

(७) नाड़ी की गति में अन्तर—शारीरिक थकान होने पर नाड़ी की गति में
तर पड़ जाता है। शरीर का तापमान बढ़ने लग जाता है, और नाड़ी भी द्रुतगति
चलने लगती है।

थकान के भेद—थकान का भेद किया जाना अत्यन्त कठिन है क्योंकि एक
प्रकार के कार्य की अधिकता से कौन-सी थकान प्रारम्भ होती है, यह निश्चित
से नहीं कहा जा सकता। किस प्रकार के परिश्रम का साथ किस प्रकार की
ान से जोड़ा जाय, इसमें भी मतभेद है। पर मोटे रूप से थकान तीन प्रकार की
नी जाती है :—

(१) शारीरिक थकान—जो थकान अधिक शारीरिक परिश्रम करने के
रण होती है, उसे शारीरिक थकान कहते हैं। मिल का मजदूर, सड़क का मजदूर,
सान आदि शारीरिक परिश्रम करते हैं। अतः इन्हें शारीरिक थकान होती है।
लक से भी उद्योग-कार्य में अधिक परिश्रम कराया जाय, अधिक व्यायाम कराया
य अथवा शारीरिक खेल अधिक खिलाये जाएँ तो बालक को शारीरिक थकान
गी।

(२) मानसिक थकान—मानसिक थकान अधिक मानसिक अर्थात् बौद्धिक
र्य करने से होती है। दफ्तर का कर्मचारी, वकील, अध्यापक आदि सभी मानसिक
र्थात् बौद्धिक कार्य करते हैं। अतः इन्हें मानसिक थकान होती है। छात्र कक्षा में
ठा हुआ बौद्धिक कार्य करता है। अतः वह मानसिक थकान महसूस करता है।

(३) स्नायविक थकान—स्नायविक थकान स्नायु के परिश्रम के कारण होती
। कई विद्वान इसका स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं मानते वरन् इसको शारीरिक थकान
भीतर ही सम्मिलित करते हैं। कई शारीरिक थकान को दो भागों में विभाजित
र प्रथम को मांसल थकान कहते हैं अर्थात् शरीर की मांसपेशियों की थकान तथा
सरी को स्नायविक थकान कहते हैं जो शरीर की स्नायु मण्डल से सम्बन्धित है।
स्नायविक थकान का आधार शारीरिक तथा मानसिक परिश्रम दोनों को मानते हैं। इस
कार स्नायविक थकान का स्वतन्त्र अस्तित्व अभी तक विवादास्पद ही है। कुछ विद्वानों ने
ोध कर यह पता लगाया है कि ज्यों-ज्यों मनुष्य को थकावट आती है, नाड़ी तेज
ोती जाती है। थकावट मिटने के बाद नाड़ी की गति साधारण हो जाती है। बहुत
म काम करने से मनुष्य का टेम्परेचर भी बढ़ जाता है।

साधारणतया थकान के दो ही भेद माने जाते हैं। प्रथम शारीरिक थकान

और द्वितीय मानसिक थकान। शारीरिक थकान को मापने के यंत्रों का आ
चुका है, पर मानसिक और स्नायविक थकान को मापने के यंत्रों का आवि
अभी तक नहीं हो पाया है। साधारणतया यह माना जाता है कि दुनिया में
ताकत, थकावट केवल शारीरिक कार्य से ही पैदा होती है। परन्तु यह धा
भ्रामक है, डा० हेरी जोन्सन ने कहा है "शरीर में वास्तविक थकान की मेह
कठोर व्यायाम अथवा बीमारियों के कारण पैदा होती है पर जो लोग
थकान का अनुभव करते हैं, उनमें अधिकांश की थकान के कारण मानसिक होते
जिनमें मन का ऊब जाना (बोरडम) प्रधान लक्षण रहता है।" मजदूरों की तु
में दफ्तर का क्लर्क, बैंक कर्मचारी अथवा गृह-पत्नी भी कम शक्ति व्यय नहीं कर
इसके साथ-साथ मानसिक और शारीरिक थकान को एक दूसरे से पृथक् भी
किया जा सकता। वैसे कई इस मत के हैं कि पहले शारीरिक थकान होती है
तब मानसिक थकान आती है। कई यह मानते हैं कि थकान का असर पहले
और बुद्धि पर होता है और तब उसका प्रभाव शरीर पर लक्षित होता है।
प्रकार यह विवादास्पद ही है कि पहले किस थकान का प्रभाव होता है। पर
अवश्य है कि इन दोनों में से किसी भी थकान के उत्पन्न होने पर मनुष्य कार्य
पूर्ववत् चालू नहीं रख सकता। कार्य के प्रारम्भ में जो उत्साह रहता है वह
के आगमन के साथ-साथ क्षीण होने लगता है। इस प्रकार थकान शक्ति
का ह्रास करती है।

त्मक तन्तुओं के जलने से टॉक्सिन की उत्पत्ति होती है। यह टॉक्सिन जहरीला है और शरीर के रक्त में व्याप्त हो जाता है। इस 'टॉक्सिन' के कारण ही शरीर की शक्ति क्षीण होकर मनुष्य थकान महसूस करने लगता है। यदि किसी थके हुए मनुष्य का 'टॉक्सिन' निकाल लिया जाय तो वह ताजगी महसूस करने लगेगा और टॉक्सिन को अथकित पुरुष के शरीर में इंजेक्शन द्वारा पहुँचा दिया जाय तो बिना परिश्रम किए ही वह मनुष्य थकान महसूस करने लगेगा। इस प्रकार के प्रयोग कुत्तों पर किए गए हैं। थके हुए कुत्ते का टॉक्सिन निकालने पर वह ताजगी महसूस करने लगा और उसी निकाले हुए टॉक्सिन को अथकित कुत्ते में पहुँचाते ही वह थकान महसूस करने लगा।

(४) मौसम का प्रभाव—मौसम भी थकान उत्पन्न करने में एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। गर्मी-सर्दी अथवा आर्द्रता का थकान पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। ७० डिग्री फैरेनहीट से जितनी ही अधिक गर्मी में काम किया जाता है, कार्यकर्ता उतना ही शीघ्र और उतना ही अधिक थक जाता है।

(५) अनुपयुक्त वेशभूषा—यदि कार्यकर्ता तंग वस्त्र पहने हुए हो तो थकान का प्रभाव शीघ्र होने लगेगा। बालकों के वस्त्र बहुत तंग न होने चाहिएँ। इसी तरह कार्य तथा अवसरानुकूल वेशभूषा न होने पर भी थकान प्रतीत होने लगती है। यदि कार्यकर्ता को जमीन पर बैठकर कार्य करना पड़ता है तो इसके लिए पेन्ट का पहनना उपयोगी नहीं होगा। क्योंकि हर समय वह पेन्ट की इस्तरी के बिगड़ने का ख्याल रखेगा जिससे वह शरीर को बैठने की सुन्दर आकृति बनाकर न बैठ सकेगा। इसी प्रकार ग्रीष्म ऋतु में पेन्ट भारतीय जलवायु के अनुकूल प्रतीत नहीं होती।

(६) शरीर की निर्बलता—यदि शरीर अस्वस्थ और रोगी होगा तो थकान शीघ्र महसूस होगी। इसके विपरीत स्वस्थ शरीर देर तक परिश्रम में जुटा रह सकता है।

(७) विषय की अरोचकता—कार्य का विषय यदि अरोचक हो तो थकान शीघ्र महसूस होने लगेगी। रुचि के अभाव के कारण थकान का उत्पन्न होना स्वाभाविक ही है। रुचि के रहते हुए मनुष्य बहुत देर में थकता है। पर जब कार्य रुचिकर नहीं लगता तो उसको थकावट मालूम होने लगती है। क्योंकि वह बार-बार अपना ध्यान उस विषय की ओर लगाने का विवशतापूर्वक प्रयत्न करता है।

(८) अन्य कारण—इनके अतिरिक्त थकावट के और भी कई कारण हैं; जैसे वातावरण की गन्दगी, झुक कर बैठना, आयु की अवधि, अभ्यास-हीनता, गहन-चिन्तन, शाला-भवन में प्रकाश और हवा का अभाव आदि।

इस प्रकार थकान की उत्पत्ति के कई कारण हैं। इन्हीं कारणों में से किसी के भी विद्यमान होने पर शरीर शीघ्र थकान महसूस करने लगता है। अत: उस कारण के निवारण का प्रयत्न किया जाना चाहिए।

थकान को नियन्त्रित करने वाले बिन्दु—थकान के कारणों की जानकारी कर लेने के उपरान्त भी कुछ ऐसी बातें बच रहती हैं, जिनके कारण थकान की मात्रा को कम किया जा सकता है। ये बातें निम्नलिखित हैं :—

(१) स्वास्थ्य—स्वस्थ व्यक्ति अधिक देर तक काम कर सकता है। वह जितना अस्वस्थ होगा, उसके कार्य करने की क्षमता भी उतनी ही कम होगी।

(२) कार्य काल—काम का समय भी थकावट आने का एक कारण होता है। प्रातःकाल में कार्य अधिक स्फूर्ति के साथ सम्पादित किया जाता है। दोपहर व शाम को उतनी स्फूर्ति से नहीं किया जाता। काम की निरन्तर लम्बी अवधि रहने पर भी थकान अधिक होती है। यदि बीच-बीच में विश्राम मिलता रहे तो कार्य अधिक होता है और थकान कम।

(३) काम करने का स्थान—कार्य करने के स्थान का भी थकावट पर प्रभाव पड़ता है। खुले मैदान की अपेक्षा बन्द कमरे में काम करने में थकावट शीघ्र आती है, क्योंकि खुले मैदान में आक्सीजन पर्याप्त मात्रा में मिलती है। प्रकाश भी पर्याप्त मात्रा में मिलता है, जिससे चित्त शिथिल नहीं होता।

(४) प्राकृतिक परिस्थितियाँ—कार्य करने के लिये बसन्त ऋतु सर्वश्रेष्ठ है। शरद् ऋतु में शारीरिक और मानसिक दोनों ही प्रकार के कार्य ठीक ढंग से किये जा सकते हैं, पर ग्रीष्म ऋतु शीघ्र थकावट लाती है। वर्षा ऋतु भी परिश्रम की दृष्टि से अधिक उपयुक्त नहीं है।

थकान निवारण के साधन—एक बार थकान हो जाने पर कार्य में तब तक मन नहीं लगता जब तक कि थकान समाप्त न हो जाय। अतः थकान मिटाने के लिए निम्नलिखित उपाय प्रयोग में लाने चाहिएँ :—

(१) विश्राम—थकान मिटाने का सर्वप्रथम साधन है—विश्राम, अर्थात् कुछ समय के लिये काम स्थगित कर सुस्ताना। यही सबसे अधिक सुलभ उपाय है। विश्राम के समय प्राण-प्रद तन्तुओं का विनाश रुक जाता है जिससे रुधिर के प्रवाह की शिथिलता समाप्त होकर उसके प्रवाह में तेजी आ जाती है। इस तेजी के कारण 'टॉक्सिन' का प्रभाव हट जाता है और ताजगी आ जाती है।

(२) नींद—प्रकृति ने थकान मिटाने के लिए रात्रि का सृजन किया है। इससे सभी प्राणी दिन भर के परिश्रम के बाद नींद लेकर थकान मिटाते हैं और अगले दिन कार्य में जुटने की स्फूर्ति, शक्ति और सामर्थ्य प्राप्त करते हैं। नींद में ही वास्तविक रूप में खर्च की गई शारीरिक व मानसिक शक्ति पुनः प्राप्त की जा सकती है। निद्रावस्था में शरीर शान्त पड़ा रहता है जिससे प्राण-प्रद तन्तुओं की शक्ति बढ़ने लगती है। विषैले पदार्थ का प्रभाव घट जाता है। इस प्रकार शरीर के विभिन्न अंगों की क्षति-पूर्ति नींद द्वारा हो जाती है। एक मनोवैज्ञानिक अपने अध्ययन के पश्चात् इस निर्णय पर पहुँचा कि कुछ बालकों को थकावट दूर करने के लिए अन्य बालकों की अपेक्षा अधिक निद्रा की आवश्यकता पड़ी। इसका कारण यही हो सकता है कि वे या तो पुनः शक्ति प्राप्त करने में शिथिल हैं या निद्रा में वे उपयुक्त विश्राम ठीक ढंग से नहीं प्राप्त कर पाते। इस प्रकार विभिन्न बालकों के लिए निद्रा की अवधि की आवश्यकता समान नहीं होती। कोई अधिक देर तक सोता है और कोई कम समय में ही नींद लेकर शक्ति प्राप्त कर लेता है।

(३) खेल—थक जाने पर काम करना बन्द कर यदि बालकों को खेल में

प्रवृत्त किया जाय तो थकावट दूर हो सकती है। पर खेल आदि मानसिक थकान को मिटाने मे ही सफल हो सकते हैं। यदि बालक उद्योग-कार्य करने से अथवा व्यायाम करने से थका है तो वह खेल द्वारा थकान न मिटा सकेगा। पढ़ाई के समय मस्तिष्क थक जाता है किन्तु शरीर के दूसरे अवयव नही थकते। अत: खेल खेलने से मस्तिष्क की थकावट मिट जाती है। खेलने से रुधिर का प्रवाह तेज हो जाता है जिससे शरीर के विषैले पदार्थ नष्ट हो जाते हैं।

(४) कार्य-परिवर्तन—काम के बदलने से भी थकावट दूर हो जाती है। मस्तिष्क में भी एक प्रकार के कार्य करने में एक ही ओर के स्नायु थक जाते हैं। अतः मस्तिष्क सम्बन्धी दूसरा कार्य प्रारम्भ कर देने पर पहले कार्य की थकान मिटने लग जाती है। जैसे पहले गणित पढ़ी जा रही थी और उसके बाद कहानी कहना, सुनना प्रारम्भ कर दिया जाय तो गणित के कारण उत्पन्न थकान मिट सकती है।

मस्तिष्क की थकान तब अच्छे ढंग से मिट जाती है जबकि शारीरिक कार्य प्रारम्भ कर दिया जाय। इसी प्रकार शारीरिक कार्य से थकान आने पर मस्तिष्क का कार्य प्रारम्भ कर देने में भी थकान मिट जाती है। इस प्रकार एक के बाद दूसरे प्रकार के कार्य के परिवर्तन से भी थकान मिट जाती है। इस प्रकार मस्तिष्क और हाथ का काम बारी-बारी से किया जाना चाहिए जिससे किसी एक ही प्रकार के कार्य की अधिकता के कारण थकान नही आ सकती। बुनियादी शाला मे छात्र इसी प्रकार मस्तिष्क और हाथ के कार्य एक के बाद दूसरा करते हैं जिससे शीघ्र नही थकते।

(५) अभ्यास और रुचि—थकान कार्य में अभ्यास, रुचि और आदत पर निर्भर है। यदि कार्य करने का अभ्यास है, उस कार्य के करने की आदत पड़ गई है और यदि उसमे कर्ता की रुचि है तो उस कार्य के करने में शीघ्र थकान नही आती। काम को करने मे धीरे-धीरे उसकी आदत पड़ जाती है। टाइपिंग सीखने का प्रयास करने वाले छात्र के हाथ शीघ्र थक जाते हैं और दिन भर दफ्तर मे टाइप का काम करने वाले बाबू के हाथ नही थकते क्योकि उसका अभ्यास और आदत ऐसी ही हो गए। अत: थकान मे आदत और अभ्यास का भी बहुत बड़ा हाथ है।

(६) भोजन—यन्त्र की शक्ति क्षीण होने पर उसे कोयला, तेल और पानी की आवश्यकता होती है। इसी प्रकार शरीर को भी खर्च की गई शक्ति भोजन द्वारा ही प्राप्त होती है। खर्च की गई शक्ति अन्य किसी भी प्रकार से प्राप्त नही होती। विश्राम में शक्ति का ह्रास होना बन्द हो जाता है। नींद मे शरीर शान्त रहता है और विषैले पदार्थों का प्रभाव कम हो जाता है। खेल मे विषैले पदार्थ शीघ्र नष्ट किए जाते हैं। पर खोई हुई शक्ति के प्राप्त करने का महत्त्वपूर्ण साधन कतिपय खाद्य वस्तुये हैं। अध्ययनकर्त्ता विद्वानो ने यह पता लगाया है कि शक्कर मिले पदार्थ खाने से शीघ्र थकावट दूर होती है। इसलिये प्राय: लोग चाय और काफी, दूध, शक्कर आदि मिश्रित वस्तुओं का प्रयोग करते हैं। इस प्रकार यदि कार्य के बीच मे विश्राम के समय कुछ खा लिया जाय तो नष्ट हुई शक्ति की वास्तव मे पूर्ति हो जाती है। भारतीय किसान दोपहरी के बाद खाना खाता ही है। शालाओं मे भी विश्राम की घंटी में विद्यार्थियों को नाश्ता देने का रिवाज प्रचलित है। इसका उद्देश्य भी

खोई हुई शक्ति को पुनः प्राप्त करना है।

(७) उपयुक्त वेशभूषा—वेशभूषा यदि मौसम, कार्य, शरीर, स्थान व स... के उपयुक्त न हो तो थकान शीघ्र आती है। यदि कक्षा में नीचे बैठने की व्यव... हो तो पेन्ट का पहना जाना छात्रों मे रोका जाना चाहिए। उद्योग-कार्य और खेल... समय हाफ-पेन्ट पहन कर कार्य करने की आदत छात्रों में डालनी चाहिए। ... के वस्त्र विशेष तंग न होने चाहिएँ। मौसम के अनुकूल वस्त्र होना चाहिए। ... वैज्ञानिक डाक्टर वोहा ने "गर्मी और आर्द्रता" के प्रयोगों के फलस्वरूप ऐसी हवा... पोशाक का आविष्कार किया है जिसमे कर्मचारी को इच्छित गर्मी और आर्द्रता ... वायु पोशाक के भीतर फंसी हुई नाली-जाल से मिलती रहती है। इस पोशाक ... पहन कर कर्मचारी बिना थकावट के अधिक समय तक कार्य कर सकता है। ... पोशाक उद्योगों के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध हुई है।

थकान मिटाने के साधनों से लाभ—इस प्रकार विभिन्न साधनों से थकाव... को कम किया जा सकता है, जिससे कार्य अधिक होने से उत्पादन बढ़ेगा। ... वैज्ञानिक थकावट के विभिन्न प्रयोगों और उनके परिणामों की प्राप्ति की ओर ... आकृष्ट हुए हैं। इस प्रकार के प्रयोगों मे कई लाभ होंगे।

(१) सर्वप्रथम तो यह है कि किसी खास काम को करने का सबसे उत्त... तरीका कौनसा हो सकता है जिसमें शरीर को थकावट कम से कम हो।

(२) इन वैज्ञानिक खोजों के आधार पर यह भी पता लगाया जा सकेगा कि कौनसा मनुष्य किस काम के लिये उपयुक्त है। क्योंकि एक ही प्रकार का कार्य यदि दो व्यक्तियों को दिया जाय तो उनमे मे एक शीघ्र थकेगा और दूसरा विलम्ब से। इस प्रकार कार्य के लिए उपयुक्त व्यक्ति की खोज की जा सकती है।

(३) थकावट को कम करके उत्पादन बढ़ाया जा सकता है।

(४) बालकों को अध्ययन की ओर अधिकाधिक प्रवृत्त किया जा सकता है।

इस प्रकार थकावट दूर करने के उपायों से कार्य-संलग्नता बढ़ेगी, अधिक कार्य करने की रुचि बढ़ेगी और आदत पड़ेगी।

बुनियादी-शालाएं और थकान—बुनियादी-शालाओं में छात्र मानसिक और शारीरिक दोनों प्रकार के कार्य करते हैं। अध्ययन और उद्योग दोनों छात्र की ज्ञानवृद्धि एवं शारीरिक श्रम का आधार बनते हैं। अतः इस कार्यविधि के कारण छात्र दोनों प्रकार की थकान का अनुभव करता है। अतः बुनियादी-शाला के अध्यापक को चाहिए कि वह मानसिक थकान और शारीरिक थकान दोनों के प्रकार को समझे, दोनों के लक्षणों को जान और बालक में थकान आ जाने पर उसे दूर करें।

शारीरिक थकान—शारीरिक थकान उद्योग-कार्य के समय बालक को अधिक ... है। अतः बालक को उसकी शारीरिक शक्ति के अनुकूल कार्य करना चाहिए। उद्योग कृषि-कार्य है तो फावड़ा, कुदाली आदि इतने भारी न होने चाहिएं कि ... भार से बालक शीघ्र ही थक जाय। अभी तक छात्रों की शारीरिक क्षमता के ... फावड़े, कुदाली आदि औज़ारों का निर्माण नहीं होने लगा है क्योंकि

अध्यापक यह प्रयत्न करे कि एक ही बालक निरन्तर काम न करता रहे वरन् बारी-बारी से करते रहें ताकि एक ही छात्र को थकान न महसूस हो। बालकों की शक्ति सीमित होती है। वे शीघ्र ही थक जाते हैं, अतः उद्योग का घंटा छोटा होना चाहिये और साथ ही बालक की व्यक्तिगत क्षमता का ध्यान रखा जाना चाहिये।

इसी प्रकार अन्य उद्योग-कार्य जो कक्षा के कमरे में बैठे बैठे किये जा सकते हैं उनमें भी शारीरिक थकान का आना स्वाभाविक है। कताई-बुनाई, गत्ते का काम, सुतारी, लोहारी आदि सभी कार्यों में शारीरिक थकान आती ही है। जब बालक थक जाता है तब वह हाथ पर हाथ धरे बैठना चाहता है। बैठते समय भी वह सीधा नहीं बैठता। उसकी रीढ़ की हड्डी झुक जाती है, जम्भाई व अँगड़ाई लेने लगता है। आँखें लाल हो जाती हैं, चेहरे पर नींद की चाह दिखाई देने लगती है। अतः अध्यापक इस प्रकार के ढंग जब देखे तो उसे समझ लेना चाहिये कि बालक थक गया है। फिर थकान मिटाने के साधनों द्वारा थकान दूर करने का प्रयत्न करना चाहिये।

मानसिक थकान—अध्यापन के कारण मानसिक थकान बालकों में आती है। कई विषय ऐसे होते हैं जो अधिक थकान लाते हैं और कई विषय शीघ्र नहीं थकाते। गणित शीघ्र थकाने वाली मानी जाती है। कई मनोवैज्ञानिकों ने पढ़ाई के विभिन्न विषयों का थकान की दृष्टि से अध्ययन किया तो वे निम्नलिखित निर्णय पर पहुँचे कि यदि स्कूल के विषयों में गणित को १०० अंक थकाने वाला मान लिया जाय तो इन विषयों की क्रम-सूची इस प्रकार तैयार की जा सकती है:—

गणित	१००
अंग्रेजी भाषा	९१
इतिहास-भूगोल	८
मातृ भाषा	८२
प्रकृति-ज्ञान	८०
धर्म	७७
चित्रकला	७५

इससे स्पष्ट है कि गणित, विदेशी भाषा और इतिहास-भूगोल सबसे अधिक थकाने वाले हैं। अतः बुनियादी शाला के अध्यापक को चाहिये कि वह शीघ्र थकान लाने वाले विषयों का अध्यापन प्रारम्भिक घंटों में रखे। साथ ही इन विषयों का समन्वय उद्योग-कार्य से किया जाय ताकि एक ही प्रकार के विषय के अध्ययन में मानसिक थकान न हो। अध्ययन और उद्योग साथ-साथ चलते रहने से शीघ्र थकान महसूस न होगी।

पर सत्य तो यह है कि विषय की अपेक्षा अध्यापन-प्रणाली पर ही थकान निर्भर है। यदि अध्यापक की पाठन-शैली रुचिकर है तो बालक शीघ्र नहीं थकेगा। यदि बालक को अध्यापन की शैली रुचिकर प्रतीत नहीं हुई तो थकान न होने पर भी वह उकता जायगा। उकताने और थकान में अन्तर है। थकान कार्याधिक्य और परिश्रम से होती है और उकताना रुचि के अभाव के कारण होता है। अतः अध्यापन की पाठन-शैली यदि छात्रों को रुचिकर नहीं होती तो वे थकने के स्थान पर उकता

जाते हैं। पाठन-प्रणाली अवश्य रुचिकर होनी चाहिए।

बुनियादी-शाला में थकान दूर करने के साधन—थकान दूर करने के साधन ऊपर बताए गए हैं, वे ही प्रयोग में लाये जा सकते हैं तथापि बुनियादी-शाला की दृष्टि से उन पर प्रकाश डालना आवश्यक है। बुनियादी-शाला में निम्नलिखित साधन अपनाये जा सकते हैं :—

(१) कक्षा-विषयों का अध्यापन—इस बात का ध्यान रखा जाना चाहिए कि जो विषय थकान शीघ्र लाने वाले हों, उन विषयों को प्रारम्भिक घन्टों में पढ़ाया जाय। साथ ही उद्योग को आधार बनाकर पढ़ाया जाय।

(२) अध्यापन-शैली—यदि प्रारम्भिक घंटों ही में छात्र पढ़ने में रुचि न ले रहे हों अथवा उनका ध्यान बंट रहा हो तो अपनी पाठन-शैली को रुचिपूर्ण बनाया जाना चाहिए। साधारणतया शाला के दैनिक समय की समाप्ति के आस-पास प्रायः बालक थक जाया करते हैं। पर ऐसे प्रयोग भी किए गए हैं कि उस समय थके हुए बालकों को उनकी रुचि के अनुकूल कार्य दिया गया और उन कार्यों के करने में छात्रों ने बड़ी रुचि ली और उसी सफलता से कार्य किए जिस सफलता से वे प्रारम्भिक घंटों में कर सकते थे। अतः अध्यापक को अपनी पाठन-शैली को बालकों की रुचि के अनुकूल बनाना चाहिए ताकि बालक न तो उकतायें और न थकें ही।

(३) अध्ययन और उद्योग का समन्वय—बुनियादी-शाला में एक ही प्रकार का कार्य निरन्तर नहीं चलता। अध्ययन को उद्योग पर आधारित रखना चाहिए। उद्योग-कार्य बालक को अधिक प्रिय होता है। अतः उसके साथ-साथ कराया जाने वाला अध्ययन भी छात्र को शीघ्र नहीं थकायेगा। इस प्रकार कार्य-परिवर्तन होता रहना चाहिए।

(४) आदत का निर्माण—बालकों में परिश्रम करने व अध्ययन करने की आदत डालनी चाहिए। आदत पड़ जाने पर बालक शीघ्र नहीं थकते। यदि कोई परिश्रम से या अध्ययन से जी चुराता है, तो शनैः शनैः रुचिकर प्रणाली द्वारा उसे उस ओर प्रवृत्त करना चाहिए।

(५) उत्साहवर्धन—थके हुये बालकों को यदि जोश दिलाया जाय तो वे पुनः स्फूर्ति से काम में जुट जाएंगे और शीघ्र थकान नहीं महसूस करेंगे। अतः समय-समय पर बालकों को प्रोत्साहित करते रहना चाहिए।

(६) विश्राम और नाश्ता—शाला के दैनिक समय में थोड़ा समय विश्राम का भी होना चाहिए। जहां शालाओं में पूरे दिन-भर कार्यक्रम रहता है अर्थात् छात्र पढ़ने के लिए प्रातः छः बजे आता है और शाम को छः बजे जाता है वहां पर विश्राम का समय कुल मिलाकर लगभग २ या २॥ घण्टे हो सकता है। पर जहां छात्र केवल ५ या ६ घन्टे के लिए पढ़ने आता है वहां एक या दो बार विश्राम का समय दिया जाना चाहिए। इसी विश्राम के समय यदि हो सके तो कभी-कभी शक्कर की बनी हुई वस्तु का नाश्ता दिया जाना चाहिए जो कि स्फूर्ति प्रदान करने में सहायक
·।

इस प्रकार छात्रों की थकावट को दूर कर उन्हें कार्य में संलग्न रखा जा सकता है।

सारांश

मानव-शरीर तथा थकान—मानव शरीर यद्यपि यन्त्र के समान माना जाता है तथापि यन्त्र नहीं थकते और मानव शरीर थक जाता है। थकान आने पर उसके लक्षण उसके शरीर पर स्पष्ट लक्षित होते हैं।

थकान के लक्षण—

(१) कार्य करने में शिथिलता विदित होना।

(२) कार्य करते-करते जम्भाई व अँगड़ाई आना।

(३) आँखों की पलकों का बन्द होना।

(४) कार्य करने में सीधा न बैठा रहना।

(५) ध्यान में चंचलता आना।

(६) कार्य में त्रुटियों का आरम्भ।

(७) नाड़ी की गति में अन्तर।

थकान के भेद—

(१) शारीरिक थकान—शारीरिक परिश्रम के कारण होती है।

(२) मानसिक थकान—मानसिक कार्य अधिक करने के कारण होती है।

(३) स्नायविक थकान—दोनों प्रकार के कार्यों के कारण स्नायु की गति का तेज होना।

थकान के कारण—(१) आक्सीजन की कमी, (२) प्राण-संचालक तन्तुओं का विनाश, (३) विषैले पदार्थों की उत्पत्ति, (४) मौसम का प्रभाव, (५) अनुपयुक्त वेशभूषा, (६) शरीर की निर्बलता, (७) विषय की अरोचकता, (८) अन्य कारण।

थकान को नियन्त्रित करने वाले बिन्दु—(१) स्वास्थ्य, (२) कार्य-काल, (३) काम करने का स्थान, (४) प्राकृतिक परिस्थितियाँ।

थकान निवारण के साधन—(१) विश्राम, (२) नींद, (३) खेल, (४) कार्य-परिवर्तन, (५) अभ्यास और रुचि, (६) भोजन, उपयुक्त वेश-भूषा।

थकान मिटाने के साधनों से लाभ—वैज्ञानिक लोग थकान का अध्ययन बड़ी गहराई से कर रहे हैं। कई प्रयोग किये जा रहे हैं। उनसे कई लाभ होंगे :—

(१) किसी कार्य-विशेष को करने का सरलातिसरल तरीका जिससे थकावट कम से कम हो।

(२) कौन-सा व्यक्ति किस काम के लिए उपयुक्त है अर्थात् कौन किस कार्य में शीघ्र नहीं थकता है।

(३) थकावट को कम करके उत्पादन बढ़ाया जा सकेगा।

(४) बालकों को अध्ययन में अधिकाधिक प्रवृत्त किया जा सकेगा।

बुनियादी-शालाएं और थकान—बुनियादी-शालाओं में बालक शारीरिक और मानसिक दोनों प्रकार के कार्य करते हैं।

शारीरिक थकान—उद्योग-कार्य के करने से प्रतीत होगी। विशेषकर उन कार्यों से जो कक्षा के कमरे के बाहर किए जाते हैं, जैसे कृषि आदि।

मानसिक थकान—पढ़ाई के विषयों के अध्ययन के कारण होगी। कुछ विषय शीघ्र थकान लाने वाले होते हैं और कुछ देर से। गणित शीघ्र थकाने वाला है। चित्रकला सबसे देर से थकाती है। पर पाठन-शैली यदि रुचि के अनुकूल नहीं तो बालक में थकान न आयेगी वरन् वह उकताने लगेगा।

बुनियादी-शाला में थकान दूर करने के साधन—उपरोक्त साधारण साधनों के साथ-साथ निम्नलिखित साधन विशेष लाभदायक होंगे :—

(१) **कक्षा में विषयों का अध्यापन**—शीघ्र थकान लाने वाले विषयों को प्रारम्भिक समय में पढ़ाया जाय।

(२) **अध्यापन शैली**—शैली बालकों में रुचि बनाए रखने वाली होनी चाहिए।

(३) **अध्ययन और उद्योग का समन्वय**—उद्योग बालकों को अधिक प्रिय होता है उसी के आधार पर अध्यापन-कार्य चलाना चाहिए।

(४) **आदत का निर्माण**—परिश्रम करने की आदत डालनी चाहिए।

(५) **उत्साहवर्धन**—प्रोत्साहित करते रहने से बालक शीघ्र नहीं थकते।

(६) **विश्राम और नाश्ता**—शाला के दैनिक समय में एक या दो विश्राम होने चाहिए तथा सम्भव हो तो शक्कर की वस्तु नाश्ते में दी जानी चाहिए।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(१) थकान कितने प्रकार की होती है, उसके लक्षण क्या हैं, और थकान होने के क्या कारण हैं ?

(२) बुनियादी-शाला में थकान को दूर करने के लिए आप कौन-कौन से साधन अपनायेंगे ? थकान सम्बन्धी वैज्ञानिक प्रयोगों से हमें क्या-क्या लाभ होने की सम्भावना है ?

—:०—

:१२:

बुनियादी—शाला भवन

प्रस्तावना—नेशनल इन्स्टीट्यूट ऑफ बेसिक एजूकेशन, दिल्ली द्वारा आयोजित अल्पकालीन प्रशिक्षण शिविर (नवम्बर-दिसम्बर १९५८ ई०) में हिस्सा लेने भारत के विभिन्न प्रान्तों से आये हुए प्रतिनिधियों के समक्ष भाषण देते हुए हमारे प्रधान मन्त्री जी ने शाला की इमारत की दृष्टि से जो विचार व्यक्त किये थे वे इस प्रकार हैं—"अन्तिम रूप से विश्लेषण में छात्रों और शिक्षकों का ही महत्व रहता है अन्य किसी का नहीं—न ईंटों का और न चूने का और न इमारत का। जब हम अपने सीमित साधनों पर दृष्टि डालते हैं तो यह बात महत्वपूर्ण हो जाती है। हमें अपने सीमित साधनों को, शिक्षकों के लिए काम में लाना चाहिए न कि इमारतों पर, क्योंकि शिक्षक से अर्ध-बिभुक्षित रखने वाले वेतन के द्वारा कार्य की आशा नहीं की जा सकती······यही मेरा दृष्टिकोण है, मैं बिना इमारत के स्कूल शुरू करूंगा ··· हम इमारत के बाबत जरूरत से भी ज्यादा सोचते हैं और मानव तत्व (Human Aspect) को भूल जाते हैं······।" शाला-भवन के विषय में चर्चा करते समय उपरोक्त दृष्टि आज की स्थितियों में बड़ी जरूरी है। शाला-भवन की दृष्टि से निम्न बिन्दु महत्वपूर्ण हैं :—

(क) शाला-भवन की स्थिति।

(ख) प्रमुख द्वार एवं शाला-भवन की दिशाएं।

(ग) शाला-भवन की बनावट।

(घ) शाला-भवन के निर्माण का उत्तरदायित्व।

(ङ) शाला-भवन में भवन सम्बन्धी सुविधाएं।

(च) शाला-भवन में अन्य सुविधाएं।

(क) शाला-भवन की स्थिति—बुनियादी-शाला भावी समाज में गाँव की एवं नगर की सामाजिक, सांस्कृतिक व औद्योगिक प्रणालियों का केन्द्र होगी। इस प्रकार यह एक ऐसे ज्ञान-सूर्य का काम करने का प्रयत्न करेगी जिसका प्रकाश घर-घर में पहुँचे। यह तभी सम्भव है जबकि नगर के प्रत्येक नागरिक शाला के आयोजनों में चाव से भाग लें। ऐसा सरलता से हो सके इस हेतु बुनियादी-शाला की इमारत बस्ती के निकट होनी चाहिए जिससे यहाँ से प्रसारित होने वाला ज्ञान नागरिकों के लिए सहज उपलब्ध हो सके। इसी के साथ पर्याप्त प्रकाश, शुद्ध वायु, शान्तिपूर्ण वातावरण आदि स्थितियाँ भी परमावश्यक हैं। इस प्रकार शाला-भवन की स्थिति की दृष्टि से निम्न बिन्दु विचारणीय होंगे :—

(१) शाला-भवन ऐसे स्थान पर स्थित होना चाहिए जहाँ बालक और अन्य नागरिक भी आवश्यकता पड़ने पर, सरलता एवं सुविधा से पहुँच सकें।

(२) शाला-भवन की स्थिति ऊँची भूमि पर होनी चाहिए जहाँ दल सीलन या घाटी न हो, वरन् वह एक ऊँचे स्थान पर कठोर भूमि में स्थित हो चाहिये जहाँ शुद्ध वायु और पर्याप्त प्रकाश उपलब्ध होता रहे।

(३) शाला-भवन की स्थिति शान्तिपूर्ण वातावरण में होनी चाहिये पहुँचते ही बालक ज्ञान प्राप्ति की ओर सहज ही में प्रवृत्त हों और उनको उस से दूसरी ओर आकर्षित करने हेतु वहाँ किसी प्रकार की अशान्ति पैदा करने वा स्थितियाँ न हों। इस दृष्टि से शाला-भवन भीड़ भरे रास्ते, बाजार, सिनेमा रेलवे स्टेशन, बिजलीघर, कारखाना, तांगा या मोटर स्टैण्ड व मरघट आदि स्था से दूर स्थित होने चाहिएँ।

(४) शाला को समाज की विभिन्न सांस्कृतिक प्रवृत्तियों का केन्द्र बनाना है इस दृष्टि से वहाँ पर बहुत बड़ी संख्या में लोग इकट्ठे हो सकें ऐसी सुविधा हो अनिवार्य है। इसी दृष्टि से शाला-भवन के आसपास पर्याप्त भूमि होनी चाहिए।

(५) अगर संभव हो तो शाला-भवन के पास बगीचा भी हो जो बालकों कृषि सम्बन्धित एवं शारीरिक शिक्षा सम्बन्धित क्रियाओं में भी सहायक हो सके।

(ख) प्रमुख द्वार एवं शाला-भवन की दिशाएं—हमारे यहाँ पर ग्रीष्म ऋ बड़ी विकराल हुआ करती है। यदि भवन का प्रमुख द्वार पूर्व या पश्चिम की ओ होता है तो भवन-निर्माण के सिद्धान्तों के अनुसार शेष अन्दर के कमरों के द्वा भी अधिकांशतः पूर्व या पश्चिम की ओर ही होंगे। अतः गर्मी में सम्पूर्ण शाला-भ के अन्दर प्रातः या संध्या को किसी न किसी समय अवश्य ही धूप कमरों के अ तक तेजी से पहुँच जाया करेगी। इस प्रकार शीतकाल के थोड़े से समय के अति शेष समय में यह व्यवस्था किसी भी प्रकार उपयुक्त नहीं रहेगी। ऐसी दश शाला-भवन का मार्ग उत्तर या दक्षिण की ओर हो तो अधिक उपयुक्त रहेगा उत्तरी भारत में सूर्य प्रायः दक्षिण दिशा में रहता है अतः भवन का मुँह दक्षिण ओर होने से प्रकाश की कमी नहीं रहती।

यद्यपि स्थान-स्थान पर दिशा में थोड़े-थोड़े परिवर्तन के साथ हवाएं च हैं। फिर भी इस दृष्टि से यह स्पष्ट किया जाना आवश्यक है कि यह दि साधारणतः गर्मी में दक्षिण की ओर से चलने वाली हवाओं के लिए उपयुक्त है। समय शाला-भवन के दरवाजे दक्षिण की ओर होने से हवा को कमरों में पहुँचने लिए दरवाजे मिलेंगे। परन्तु सर्दी के मौसम में हवा जब उत्तर से चला करेगी कमरों के अन्दर उत्तर की खिड़कियों से प्रवेश पायेगी। छात्र अध्ययन-काल में खिड़कियों को आवश्यकतानुसार बन्द करके या खोलकर न्यूनाधिक वायु का ले सकेंगे। अतः शाला-भवन का प्रमुख द्वार दक्षिण की ओर होना ही लाभप्रद है और भवन पूर्व से पश्चिम की ओर लम्बाई में फैला हुआ होगा।

(ग) शाला-भवन की बनावट—अब तक शाला-भवन के पक्के बनाने की परिपाटी चली आ रही है। जब पक्की इमारत बनाने का प्रश्न पैदा होता अनेकों वस्तुएं जैसे लोहा, सीमेंट आदि के लिए गाँव को शहर की ओर ता है। ऐसी सामग्री से काम करने में गाँव के कारीगर सिद्धहस्त भी नहीं होते

से ही काम करने को कारीगर भी बुलाये जाते हैं। इस प्रकार शहर के गर गांव मे जाकर आवश्यकता से अधिक मजदूरी पाते हैं और गांव के कारीगर जदूर भूखे मरते हैं।

इन परिस्थितियों के कारण शाला की बनावट के विषय मे जो पुरानी रधारा थी उसमें आज परिवर्तन आ गया है। आज हम गांव की शाला की वट की दृष्टि से किसी शहर की इमारत से तुलना करना पसन्द नहीं करते। तो यह चाहते हैं कि शाला की इमारत उसी सामग्री से बनाई जाये जिससे के साधारणतः सभी मकान बने हुए हैं। यदि वहां दीवारें ईंटों की बनाकर र मिट्टी मढ़कर, छन दीवारों को बनाकर ऊपर छप्पर छा दिये जाते हैं तो फिर कारण दिखाई नहीं देता कि शाला की इमारत भी इसी तरीके से तैयार न ाई जाय।

शाला की इमारत बनाने मे स्थानीय सामग्री ही जुटाई जायेगी। शाला के र्माण के लिये शाला के अध्यापक, छात्र, नगर व गांव के व्यक्ति सभी जुट जायेंगे। है कुछ थोड़े से दक्ष गांव के कारीगरों के पथ-प्रदर्शन में ही यह सारा कार्य करना गा। इस प्रकार से शाला के बनाने में खर्चा भी कम पड़ेगा और साथ ही उस ारत के लिए शाला-कुटुम्ब, एवं स्थानीय समाज के नागरिकों के मन में निजत्व ी भावना होगी। आज हमने भव्य भवनों में शालाओं को चलते हुए देखा है ौर साथ ही यह भी देखा है कि छात्रों को शाला की इमारत और मेज कुर्सी को ोड़ने में बड़ा आनन्द आता है। इन सबका एक कारण यह भी है कि उन भव्य मारतों के लिये उन्हें एक भी बूंद पसीना नहीं बहाना पड़ा और फिर उनकी रम्मत का उत्तरदायित्व भी उन पर नहीं है। गांव की बुनियादी शाला के निर्माण म्बन्धी सभी काम शाला एवं ग्राम-समाज के नागरिकों द्वारा किये जायेंगे। ाथ ही उसकी मरम्मत भी प्रति वर्ष दीपमालिका के अवसर पर या आवश्यकता-ुसार एक वर्ष से कम समय में भी शाला-समाज के नागरिक स्वयं ही किया रेंगे।

(घ) शाला-भवन के निर्माण का उत्तरदायित्व—इस प्रकार निर्माण किया गया शाला-भवन गांव के अध्यापक, छात्र व नागरिकों की मेहनत एवं सहयोग के अनमोल फल के रूप में प्रत्येक की सावधानी व निगरानी का पात्र बना रहेगा। बुनियादी शाला भवन निर्माण का प्रमुख सिद्धान्त यही होगा कि सामान खरीदने को रुपया सरकार या संरक्षक वर्ग से प्राप्त होगा और मेहनत शाला एवं ग्राम समाज से निःशुल्क प्राप्त होगी।

(ङ) शाला-भवन में सुविधाएं—एक सीनियर बेसिक स्कूल में आठ कक्षाओं के लिये आठ कमरे होना नितान्त आवश्यक है। प्रत्येक कक्षा को कमरे में माध्यमिक

शिक्षा-आयोग के मतानुसार कम से कम १०. वर्ग फुट स्थान मिलना
हमारे यहाँ साधारणतः एक कक्षा में ३० छात्र होते हैं। एक कमरा जिसमें
सुविधा से अध्ययन कर सकें यह करीब (१६'×२०')—३२०' वर्ग फुट
चाहिए। इसके अतिरिक्त शाला-भवन में पुस्तकालय, प्रार्थना-भवन,
संग्रहालय आदि अनेक सुविधायें होनी आवश्यक हैं। इन सबकी तालिका
सहित निम्न प्रकार होगी :—

स्थान ... कमरों की

(क) बालकों के लिए कमरे ... ...
(ख) सभा भवन, एवं प्रार्थना-कक्ष ... ...
(ग) कर्मचारी-कार्यालय ... ...
(घ) प्रधानाध्यापक का कार्यालय ... ...
(ङ) पुस्तकालय और वाचनालय ... ...
(च) शिक्षकवर्ग कक्ष ... ...
(छ) बुनाई का बन्द बरामदा व स्टोर ... ...
(ज) मिट्टी के काम का बन्द बरामदा व स्टोर ... ...
(झ) गत्ते के काम व बढ़ईगीरी का बन्द बरामदा व स्टोर ...
(ञ) कृषि के काम का बन्द बरामदा व स्टोर ... ...
(ट) औषधालय ... ...
(ठ) बच्चों की दुकान ... ...
(ड) संग्रहालय ... ...
(ढ) पानी का स्थान ... ...
(ण) चौकीदार के लिए घर ... ...
(त) पाकगृह व भोजनालय ... ...

उपरोक्त आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु शाला-भवन के आरम्भ और [illegible]
की योजना शाला-भवन के योजना-चित्र पर अंकित की गई है। [illegible]
चित्र [illegible] का निर्माण तथा उसका योजना चित्र और सम्मुख [illegible]
पर दिये गए हैं।

बुनियादी शाला भवन का योजना चित्र
उत्तर

बुनियादी शाला भवन का सम्मुख दृश्य

शाला-भवन में अन्य सुविधायें—

(१) कृषि-उद्योग क्षेत्र—बुनियादी शाला के अन्दर सबसे महत्वपूर्ण स्थान उद्योग का है। छात्र प्रयोग-हेतु कृषि-क्षेत्र में जाते हैं। उत्तम यही है कि शाला- के निकट ही शाला का कृषि-उद्योग क्षेत्र भी स्थित हो।

(२) खेल का मैदान—शाला-भवन की शारीरिक शिक्षा सम्बन्धित एं जैसे खेल व व्यायाम बुनियादी शिक्षा के पाठ्यक्रम का अंग हैं। इस कार्य के शाला-भवन की हद के अन्दर ही खेल के लिए मैदान होना आवश्यक है।

उपसंहार—शाला-समाज और ग्राम-समाज के सहयोग से निर्मित शाला-भवन भव ही ग्राम की सर्वतोमुखी उन्नति का केन्द्र होगा। उपरोक्त शाला-भवन में प्रकार की सुविधाएँ उपलब्ध हैं। किन-किन कमरों में कितनी-कितनी खिड़कियाँ, दान एवं अलमारियाँ हों, वे किस आकार की हों, कितनी ऊँचाई पर हों, यह भवन की सुन्दरता एवं परिस्थितियों पर निर्भर रहेगा। यह भी ध्यान में रखा ा आवश्यक है कि शाला-भवन को गन्दगी से बचाने की दृष्टि से उसकी कुर्सी inth) एक गज से कम ऊँची न हो।

सारांश

प्रस्तावना—जनतान्त्रिक राष्ट्र में शिक्षा के महत्व ने, शिक्षालय भवन के ाण को समस्या को शिक्षा में एक महत्वपूर्ण स्थान दे दिया है। शाला-भवन- ाण के समय निम्न बातों पर विचार करना आवश्यक होगा—

(क) शाला-भवन की स्थिति।
(ख) प्रमुख द्वार एवं शाला-भवन की दिशाएँ।
(ग) शाला-भवन की बनावट।
(घ) शाला के निर्माण का उत्तरदायित्व।
(ङ) शाला-भवन में सुविधायें।
(च) शाला-भवन █ अन्य सुविधाएँ।

(क) शाला-भवन की स्थिति—इस दृष्टि से निम्न बिन्दु विचारणीय है—
(१) सब सरलता से पहुँच सकें।
(२) भूमि शोर व दलदल से रहित हो व ऊँचे स्थान पर हो।
(३) शान्तिपूर्ण वातावरण हो।
(४) भवन के आस-पास विभिन्न प्रवृत्तियों के लिए पर्याप्त भूमि हो।
(५) पास ही कृषि-क्षेत्र एवं बगीचा भी हो।

(ख) प्रमुख द्वार एवं शाला-भवन की दिशाएँ—शाला-भवन का प्रमुख र दक्षिण की ओर उपयुक्त रहता है। भवन पश्चिम से पूर्व की ओर लम्बाई में ना हुआ होना चाहिए।

(ग) शाला-भवन की बनावट—स्थानीय वातावरण में उपलब्ध सामग्री गाँव के मकान जिस पद्धति से तैयार किए गए हैं वही पद्धति शाला-भवन के र्माण में भी काम में ली जाएगी। गाँव के निवासी, शिक्षक व बालक अपनी मेहनत

युनिवर्सिटी शासन भवन का सम्मुख रूप

(च) शाला-भवन में अन्य सुविधायें—

(१) कृषि-उद्योग क्षेत्र—बुनियादी शाला के अन्दर सबसे महत्वपूर्ण स्थान कृषि-उद्योग का है। छात्र प्रयोग-हेतु कृषि-क्षेत्र में जाते है। उत्तम यही है कि शाला-भवन के निकट ही शाला का कृषि-उद्योग क्षेत्र भी स्थित हो।

(२) खेल का मैदान—शाला-भवन की शारीरिक शिक्षण सम्बन्धित क्रियाएँ जैसे खेल व व्यायाम बुनियादी शिक्षा के पाठ्यक्रम का अंग हैं। इस कार्य के लिए शाला-भवन की हद के अन्दर ही खेल के लिए मैदान होना आवश्यक है।

उपसंहार—शाला-समाज और ग्राम-समाज के सहयोग से निर्मित शाला-भवन निश्चित ही ग्राम की सर्वतोमुखी उन्नति का केन्द्र होगा। उपरोक्त शाला-भवन में सब प्रकार की सुविधाएँ उपलब्ध हैं। किन-किन कमरों मे कितनी-कितनी खिड़कियाँ, हवादान एवं अलमारियाँ हों, वे किस आकार की हों, कितनी ऊँचाई पर हों, यह सब भवन की सुन्दरता एवं परिस्थितियों पर निर्भर रहेगा। यह भी ध्यान में रखा जाना आवश्यक है कि शाला-भवन को कीड़ों से बचाने की दृष्टि से उसकी कुर्सी (Plinth) एक गज से कम ऊँची न हो।

सारांश

प्रस्तावना—जनतान्त्रिक राष्ट्र में शिक्षा के महत्व ने, शिक्षालय भवन के निर्माण की समस्या को शिक्षा में एक महत्वपूर्ण स्थान दे दिया है। शाला-भवन-निर्माण के समय निम्न बातों पर विचार करना आवश्यक होगा —

(क) शाला-भवन की स्थिति।
(ख) प्रमुख द्वार एवं शाला-भवन की दिशाएँ।
(ग) शाला-भवन की बनावट।
(घ) शाला के निर्माण का उत्तरदायित्व।
(ङ) शाला-भवन में सुविधायें।
(च) शाला-भवन में अन्य सुविधाएँ।

(क) शाला-भवन की स्थिति—इस दृष्टि से निम्न बिन्दु विचारणीय हैं—
(१) सब सरलता से पहुँच सकें।
(२) भूमि सील व दलदल से रहित हो व ऊँचे स्थान पर हो।
(३) शान्तिपूर्ण वातावरण हो।
(४) भवन के आस-पास विभिन्न प्रवृत्तियों के लिए पर्याप्त भूमि हो।
(५) पास ही कृषि-क्षेत्र एवं बगीचा भी हो।

(ख) प्रमुख द्वार एवं शाला-भवन की दिशाएँ—शाला-भवन का प्रमुख द्वार दक्षिण की ओर उपयुक्त रहता है। भवन पश्चिम से पूर्व की ओर लम्बाई में फैला हुआ होना चाहिए।

(ग) शाला-भवन की बनावट—स्थानीय वातावरण में उपलब्ध सामग्री से गांव के मकान जिस पद्धति से तैयार किए गए हैं उसी पद्धति शाला-भवन के

से गांव के कारीगरों के निरीक्षण में काम करेंगे और सामान के लिए रुपयों का धंधाने वाले अधिकारियों से प्राप्त होगा। शाला की मरम्मत का उत्तरदायित्व भी शिक्षकों एवं बालकों का ही होगा। ऐसा केवल इसी उद्देश्य से किया जा रहा है कि जिससे शाला के लिए नागरिकों, बालकों और शिक्षकों में आत्मीयता की भावना हो और वे समझें कि हमने अपना पसीना बहाकर इस इमारत का निर्माण किया है।

(घ) शाला-भवन के निर्माण का उत्तरदायित्व—मेहनत नागरिकों, शिक्षकों और बालकों की होगी और रुपया सरकार या संरक्षक वर्ग की ओर से प्राप्त होगा।

(ङ) शाला-भवन में भवन सम्बन्धी सुविधाएँ—भवन सम्बन्धित सुविधाओं की दृष्टि से आठ कक्षाओं के आठ व चार अन्य महत्वपूर्ण कमरे, एक प्रार्थना-कक्ष, एक पुस्तकालय तथा वाचनालय, उद्योगों के चलने हेतु चार बड़े बरामदे व स्टोर, पानी व चौकीदार का घर, संग्रहालय व पेशाबघर आदि की शाला में आवश्यकता रहती है।

(च) शाला-भवन में अन्य सुविधाएँ—कृषि-प्रयोग क्षेत्र, खेल व व्यायाम के लिए पर्याप्त भूमि निकट ही होनी आवश्यक है।

उपसंहार—शाला-भवन में दरवाजे, खिड़कियाँ, हवादान व अलमारियों का आकार, भवन की सुन्दरता एवं परिस्थितियों पर निर्भर रहेगा। शाला-भवन की कुर्सी तीन फीट ही होनी चाहिए, जिससे गन्दगी अन्दर न आवे।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(१) शाला-भवन की स्थिति का चुनाव करते समय किन-किन बातों का विचार रखना चाहिए। कारण सहित वर्णन लिखिए।

(२) बुनियादी शाला-भवन में जो-जो सुविधाएँ होनी आवश्यक हैं उन सब का विस्तार से वर्णन कीजिए।

: १३ :

पाठशाला का रिकार्ड और सामग्री

पाठशाला का रिकार्ड—प्रत्येक विद्यालय को अपना कार्य-सुचारु रूप से ाने के लिए जरूरत की सभी सामग्री जुटानी पड़ती है। इस सामग्री में अनेक ुओं का समावेश होता है। ये सभी वस्तुएँ किसी न किसी प्रमुख अंग के अन्तर्गत ाती हैं। पाठशाला में काम आने वाले प्रमुख रजिस्टर व फार्म भी पाठशाला ामग्री का अंग हैं। इनमें से कुछेक शिक्षकगण पूर्ण करते हैं। कुछेक को छात्र पूर्ण ़रते हैं और कुछेक का उपयोग विद्यालय-कार्यालय करता है। किसी भी कार्यालय ा कार्य सुचारु रूप से चले इसके लिए निम्न सिद्धान्तों का पालन किया जाना ़रूरी है:—

(१) विभिन्न रिकार्ड को निश्चित स्थान या फाइल में इस प्रकार रखा जाये, ़ि वह जरूरत पड़ते ही उपलब्ध हो सके।

(२) जिस स्थान या फाइल में रखा जाये वहाँ भी किसी नियम के अनुसार ़्रमवार रखा जाये।

(३) प्रत्येक विषय की एक फाइल हो उसका क्रमांक निश्चित हो और ़ाइलों की सूची कार्यालय में लगी रहे।

(४) कार्य नियमित रूप से चले और इकट्ठा नहीं होने दिया जाये।

(५) निरीक्षण की नियमित व्यवस्था हो। छात्रों का लेखा-जोखा शिक्षक ़े। शिक्षक का कक्षा सम्बन्धी या कार्यालय सम्बन्धी लेखा प्रधानाध्यापक देखे और ़धानाध्यापक एवं सारे विद्यालय के रेकार्ड का निरीक्षण, निरीक्षक करे।

(६) अच्छा रिकार्ड वही है जो स्वयं बोलता है। जो कुछ भी कार्यवाही, ़िसी निश्चित अवसर पर हुई थी, उसका स्पष्टीकरण देने को किसी भी व्यक्ति को ़पनी ओर से कुछ भी नहीं कहना पड़े। संक्षेप में हम यह कहें कि वह स्वयं ़र्ण हो।

इन्हीं कतिपय सिद्धान्तों के पालन से उपयुक्त रिकार्ड रखा जा सकता है।

विद्यालय के सामग्री सम्बन्धित प्रमुख अंग—ये अंग निम्नलिखित हैं:—

(१) कक्षा सामग्री।

(२) उद्योग की सामग्री।

(३) कला व विज्ञान की सामग्री।

(४) पाठ-सहायक सामग्री।

(५) पुस्तकालय की सामग्री।

(६) औषधालय की सामग्री।

(९) व्यायाम, खेल, वालचर दल का सामान।
(१०) यात्रा का सामान।
(११) संग्रहालय की सामग्री।
(१२) सभा-भवन की सामग्री।
(१३) प्रधानाध्यापक के कार्यालय की सामग्री।
(१४) शाला में काम आने वाले प्रमुख रजिस्टर फार्म।

१. कक्षा सामग्री:—बुनियादी स्कूल भारत की संस्कृति की परम्परा निभाने के लिये एवं बालकों के जीवन में गांवों की संस्कृति को उतारने के लिये कृतसंकल्प है। कक्षा में बैठने की सामग्री में हमारे घरों में बैठने की सामग्री से समानता होनी जरूरी है, क्योंकि हम शाला में जीवन को अपनी घरेलू परिस्थिति से भिन्न बनाकर बालक के जीवन में बनावटीपन नहीं लाना चाहते। बुनियादी शिक्षा के उद्गम स्थान सेवा-ग्राम में भोजनालय, सभा-भवन व शिक्षालय आदि सब स्थानों पर बैठने-हेतु एकमात्र चटाइयाँ काम में आती हैं। प्रत्येक छात्र के बैठने हेतु २॥ फीट लम्बी और २ फीट चौड़ी चटाई होती है। प्रत्येक कक्षा में साधारणतः ऐसी ३० चटाइयाँ होती हैं। प्रत्येक चटाई के साथ उपयुक्त आकार की एक फर्शी डेस्क होती है। शिक्षक के लिये चटाई पर अगर जरूरी समझा जाये तो एक डेस्क का प्रयोग किया जा सकता है। शिक्षक की डेस्क बालक की फर्शी-डेस्क से दुगनी लम्बाई-चौड़ाई की होनी चाहिए।

इसके अतिरिक्त कक्षा में छात्रों को नाश्ता रखने की सुविधा-हेतु एक अलमारी, कक्षा के पुस्तकालय-हेतु एक बन्द अलमारी, शिक्षण-सामग्री-हेतु एक अलमारी, एक श्यामपट्ट व एक मैप स्टैंड होना चाहिए। अलमारियाँ इमारत बनते समय दीवार में ही बन जाती हैं तो वे सस्ती और टिकाऊ रहती हैं और उनका अलमारियों के लिए बार-बार खर्चा करने की परेशानी से भी छुटकारा मिल जाता है।

२. उद्योग की सामग्री :—

(क) कृषि—

(१) स्थायी सुविधा—कृषि के कार्य-हेतु शाला के अधिकार में आठ एकड़ जमीन, एक कुआं, रहट या चरस, एक जोड़ी बैल, एक गाड़ी, एक हल, पटेला आदि वस्तुओं के अतिरिक्त निम्नलिखित औजार भी जरूरी हैं:—

कुदाली, गेंती, फावड़े, खुरपी, तगारी, झारे, बाल्टी, हँसिया, कुल्हाड़ा, चाकू, गुनिया, इंच टेप, खूंटियाँ, सिंचाई-हेतु रबर या लोहे का नल, रखने को कुछ बोतलें या टंकियाँ, तराजू मय बाट के।

(२) अस्थायी सामान—सब्जी, फल और अनाज के बीज, खाद, गमले, रस्सी आदि।

(३) विभिन्न रजिस्टर—सामान का ब्योरा व काम के विवरण के रजिस्टर जो साधारणतः निम्न श्रेणियों में विभाजित होते हैं :—

(अ) स्थायी सामान का रजिस्टर।

(आ) अस्थायी सामान के कक्षा में लेन-देन का रजिस्टर।
(इ) स्थायी सामान के कक्षा में लेन-देन का रजिस्टर।
(ई) आय-व्यय का रजिस्टर।
(उ) कृषि के सामान के बाजार में लेन-देन का व्यक्तिगत रजिस्टर।
(ऊ) कृषि-कार्य के फार्म।
(ए) बालकों के व्यक्तिगत खाते के रजिस्टर।

नोट :—वस्तुओं की संख्या व मात्रा बालकों की संख्या पर निर्भर है।

(ख) कताई-बुनाई—

(१) स्थायी सुविधा—तकली, अटेरन, पूनी सलाई, सलाई पटड़ा, धुनीभार हत्था, धुनकी, धुनीमार हत्था, तकली स्टैंड, बाँस की चटाई, काँटा मय बाट के, कैंची, लकड़ी की तख्तियाँ, यरवदा चक्र चरखा, तकुआ रखने की पेटी, हाथ ओटनी, देशी चर्खा, कुप्पी, बल निकालने का काँटा, तराजू मय बाट के, लोहे की तगारी, बाँस की टोकरियाँ, ट्रंक, कपड़े के थैले, दरी,आसन व निवार के साँचे आदि छोटी वस्तुएँ एवं औजारों के अतिरिक्त एक करघा प्रत्येक शाला में होना जरूरी है।

(२) अस्थाई सामान—कपास, ताँत, कोल्हर या चमड़ा, सूत व सन की रस्सियाँ, खोपरे का तेल आदि।

(३) विभिन्न रजिस्टर—कृषि की सामग्री के अन्तर्गत दर्ज रजिस्टरों का प्रयोग यहाँ भी होगा। केवल बालकों के दैनिक कार्य के फार्म जो यहाँ उपयोग में लाए जाएँगे, वे पूर्व फार्म से भिन्न होंगे।

(ग) गत्ते का काम और बढ़ईगीरी—

(१) स्थायी सुविधा—गत्ते के काम के लिए कैंचियाँ, चाकू, छोटी करौती, गत्ते दबाने की मशीन, कुछ बर्तन और सिगड़ी की आवश्यकता रहती है। बढ़ईगीरी के लिए, अनेक औजार जैसे वसूला, कुल्हाड़ी, करौती, सफाई के लिए रंदा, छेद करने को सियार व बर्मा, कोअनी, हथौड़ियाँ आदि औजार जरूरी होते हैं।

(२) अस्थायी सामान—गत्ते के काम के लिए विभिन्न मोटाई के गत्ते, सफरी बाइडिंग क्लाथ, डोरी, विभिन्न रंग के कागज आदि सामान जुटाना पड़ता है। बढ़ईगीरी लिए लकड़ी, प्लाईवुड, मेसोनाइट, हार्ड बोर्ड, कील, रंग, वार्निश आदि सामान भी जरूरत पड़ती है।

(३) विभिन्न रजिस्टर—अन्य उद्योगों के अन्तर्गत दर्ज रजिस्टरों का प्रयोग यहाँ भी होगा। केवल बालकों के दैनिक कार्य के फार्म जो यहाँ उपयोग में लाये जाएँगे, वे उपरोक्त उद्योगों से भिन्न होंगे।

(घ) मिट्टी व कुट्टी का काम इसका क्षेत्र काफी विस्तृत है। बालकों द्वारा खिलौने बनाने के कार्य से मिट्टी के बर्तन और चीनी के निर्माण व बर्तनों तक का इसमें समावेश हो जाता है।

(१) स्थायी सुविधा—शाला में मिट्टी को तैयार करने का हौज, मिट्टी के औजार, बर्तन बनाने को चाक व विभिन्न प्रयोग में आने वाली भट्टियाँ आदि सामग्री मिट्टी के कार्य के अन्तर्गत जुटानी पड़ती है।

(२) आवश्यकतानुसार मिट्टी, लुग्दी बनाने को पुराना कागज व चीनी मिट्टी आदि वस्तुएँ उद्योग की आवश्यकतानुसार जुटानी पड़ती हैं।

(३) विभिन्न रजिस्टर—उपरोक्त उद्योगों के अन्तर्गत जो रजिस्टर काम में आयेंगे, उनका प्रयोग यहाँ भी होगा। बालकों के दैनिक कार्य के फार्म ही केवल भिन्न प्रकार के होंगे।

३. कला व विज्ञान की सामग्री :—

(क) कला—कला विषय के अन्तर्गत चित्रकला और संगीत एवं नृत्यकला आते हैं। चित्रकला में प्रयोग-हेतु निम्न सामग्री की आवश्यकता होगी :—

(अ) स्थायी सुविधा—वस्तु-चित्रण-हेतु विभिन्न वस्तुओं का संग्रह, ड्राइंग बॉक्स व लकड़ी के तख्ते आदि।

(आ) अस्थायी सामान—पैन्सिल, रबर, कागज, रंगीन, पैन्सिलें, रंग के बॉक्स तूलिकाएँ आदि।

(ख) विज्ञान—

(अ) स्थायी सुविधा—शाला में बालकों को प्रयोग द्वारा पाठ को समझने में सहायता प्राप्त हो इस हेतु सभी यन्त्र व उपकरणों को जुटाया जाता है।

(आ) अस्थायी सुविधा—प्रयोगशाला की विभिन्न औषधियाँ एवं वस्तुएँ जिन पर उनका प्रयोग किया जाता है, उनको संगृहीत किया जाना आवश्यक है।

४. पाठ-सहायक सामग्री :—शिक्षा के तरीकों के विकास के साथ-साथ पाठ्य-सामग्री में भी विकास होता जा रहा है। पहले पाठ्य-सहायक सामग्री में जहाँ केवल श्याम पट्ट ही विद्यमान था, वहाँ उसके स्थान पर तो आज हम यह भी कल्पना करते हैं कि ऐसा समय आने वाला है जब राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय महत्व के विषयों पर पाठ पढ़ाने हेतु टेलीविजन का शिक्षक के स्थान पर कक्षा में प्रयोग किया जा सकेगा। यह एक गहन विषय है जो इस पाठ के क्षेत्र से बाहर है, परन्तु उपरोक्त उदाहरण द्वारा इस समय हम केवल यह स्पष्ट करना चाहते हैं कि पाठ्य-सहायक सामग्री में शिक्षक के लिए गहराई से सोचने विचारने के लिए कितना बड़ा क्षेत्र सामने उपस्थित है। पाठ्य-सहायक सामग्री के अन्तर्गत बुनियादी शाला में जिन वस्तुओं को जुटाया जायेगा, वे निम्न प्रकार की होंगी :—

(क) श्यामपट्ट, खड़िया व झाड़न—कक्षा में आवश्यकता की दृष्टि से सर्व-प्रथम वस्तु श्यामपट्ट है। इस पर लिखने हेतु खड़िया व लिखी हुई सामग्री का उपयोग हो चुकने पर उसे मिटाने हेतु झाड़न वहाँ होना अनिवार्य है। प्रत्येक कक्षा में प्रकाश की दिशा और छात्रों के बैठने की सुविधा को देखकर अगर सीमेंट सुविधा से उपलब्ध हो तो दीवार पर ही सीमेंट द्वारा श्यामपट्ट तैयार कर लिया जाना उपयुक्त रहता है। इसके अतिरिक्त लकड़ी का श्यामपट्ट साधारणतः कक्षाओं में इस तरह प्रयोग में लाया जाता है। यद्यपि आकार में यह छोटा होता है परन्तु इसमें [illegible] यह रहती है कि इसे कक्षा में आवश्यकतानुसार हटाया या घुमाया [illegible] है।

(ख) मानचित्र—सामाजिक ज्ञान के अन्तर्गत सहायक सामग्री की दृष्टि से स्थानीय वातावरण, तहसील, जिला, प्रान्त, राष्ट्र एवं संसार के नक्शे स्कूल में आवश्यकतानुसार निश्चित संख्या में जुटाने होंगे। इनका कुछ शालाओं में जरूरत के मुताबिक कक्षावार वितरण कर देने की भी व्यवस्था होती है और जब शाला में मानचित्र पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध न हों तो उन सबको इकट्ठा रखना उपयुक्त रहता है।

(ग) चित्र—विभिन्न साहित्यकारों के, सामाजिक ज्ञान में विभिन्न अन्वेषकों के व देशों के, राजनीतिज्ञों के, युद्धों के व पुराने राज्यों के सामान्य विज्ञान में विभिन्न आविष्कारों के व प्रयोगों के चित्रों की जरूरत पड़ती है। गणित में विभिन्न समस्याओं के समाधान में सहायक चित्र और चित्रकला में विभिन्न ऐसी वस्तुओं एवं जीवधारियों के चित्र जिनको बालक साकार में नहीं देख सकते हैं, जुटाना जरूरी होता है। इसी प्रकार विभिन्न उद्योग एवं विषयों में आवश्यक चित्रों का इकट्ठा करना शिक्षण के स्तर को उन्नत करने हेतु जरूरी होता है।

(घ) चार्ट्स (Charts)—सामाजिक ज्ञान के विभिन्न अंग जैसे पैदावार का तुलनात्मक अध्ययन व ऐसे ही अन्य अंग, इतिहास में राष्ट्रीय घटनाओं और विभिन्न राष्ट्रों के विकास एवं ऐतिहासिक घटनाओं के तुलनात्मक अध्ययन-हेतु तिथि-रेखाओं के चार्ट्स व अन्य विषयों में भी चित्रों और मानचित्रों में जो सामग्री अंकित नहीं हो सकती है, उनके समावेश-हेतु इनकी जरूरत पड़ती है। इनको जुटाना भी पड़ता है और विभिन्न विषयों के महत्वपूर्ण पाठों के गूढ़ विषयों को स्पष्ट करने हेतु जहाँ तैयार चार्ट्स उपलब्ध न हों वहाँ उन्हें बनवाया भी जाता है। चार्ट्स उपरोक्त अन्य प्रकार की सहायक सामग्री की तरह ही पाठ के स्तर को उन्नत करने के महत्वपूर्ण साधन के रूप में माने जाते हैं।

(ङ) मॉडल—पाठ के अन्तर्गत कठिन विषय में जहाँ, चित्र व मानचित्र आदि अन्य सहायक सामग्रियाँ असफल हो जाती हैं, मॉडल की सहायता ली जाती है। ये लकड़ी, मिट्टी, कागज की लुग्दी, सीमेंट, प्लास्टर आफ पेरिस, मोम व अन्य अनेक प्रकार के मिश्रण से तैयार होते हैं। मॉडल विभिन्न वस्तुओं, दृश्यों, भू-भागों, जल, भागों व जीवधारियों की आकृति को साकार परन्तु छोटे रूप में प्रस्तुत बालकों को सिखाए जाने वाले ज्ञान को समझाने में शिक्षक के हेतु सहायक होते हैं। मॉडल साधारणतः तैयार मिलते हैं और आवश्यकता पड़ने पर बुनियादी शाला के छात्र शिक्षकों के पथ-प्रदर्शन में उनको तैयार करने का कार्य बड़ी प्रसन्नता से करना पसन्द करेंगे।

(च) पाठ-सहायक नवीनतम सामग्रियाँ—बिजली के आविष्कार ने पाठ-सहायक सामग्रियों के कार्य में पर्याप्त विकास किया है। जहाँ पर बिजली की सुविधा होगी वहाँ पर दृष्टि-श्रवण सामग्रियों का उपयोग बड़ा लाभप्रद होता है। इस दृष्टि से १६ मिलीमीटर का प्रोजेक्टर बड़ा लाभप्रद प्रमाणित हुआ है। इसमें प्रयोग की फिल्म हमारी भारत सरकार का शिक्षा-विभाग एवं सार्वजनिक सम्पर्क विभाग निःशुल्क उपलब्ध करने की व्यवस्था करता है, जो बालकों को दिखाने के पश्चात् वापस उपरोक्त विभाग को सुरक्षित लौटाई जा सकती है, और इस प्रकार नई-नई फिल्में प्राप्त करने का क्रम चालू रहता है। इसके अतिरिक्त रेडियो, एपीडियस्कोप

व मैजिक लेन्टर्न भी शाला की पाठ-सहायक-सामग्रियों में शामिल होते हैं। सामग्री यदि एक शाला खरीदने की सामर्थ्य नहीं रखती हो तो तीन या चार शाला मिलकर खरीद सकती है और क्रम से उनका लाभ उठा सकती है। जहाँ पर बिजली की सुविधा न हो वहाँ पर बैटरी भी उपरोक्त यन्त्रों के उपयोग में सहायक हो सकेगी।

५. पुस्तकालय की सामग्री—पाठशाला में पुस्तकालय का बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है। पुस्तकालय में दीवार में ही अलमारियाँ बनी हुई हों तो उत्तम है। उनमें शीशे के दरवाजे होने आवश्यक हैं। इसके अतिरिक्त यहाँ चटाइयाँ व डेस्क होंगी। पुस्तकालय में पुस्तकों के चुनाव में बालकों के हित को सर्वप्रथम ध्यान दिया जाना चाहिए। बालकों को कक्षा के पुस्तकालय में उनके पाठ्यक्रम सम्बन्धी सहायक पुस्तकें उपलब्ध होने की सुविधा तो होगी ही, पर यहाँ पर बालकों को अधिक विस्तृत ज्ञान देने में सहायक हो सकें, ऐसी पुस्तकों का संग्रह रहेगा। यहाँ ऐसी पुस्तकें भी उपलब्ध की जाएँगी जो शिक्षकों को कक्षा के शिक्षण में सहायक हो सकें। यहाँ पर बालकों के लिए सामयिक समाचारपत्रों की विशेष प्रकार से सुविधा होगी। बालक अवकाश का समय साधारणतः यहीं पर व्यतीत करना पसंद करेंगे।

सम्पूर्ण पुस्तकों की सूची व रजिस्टर जिसमें पुस्तकें दर्ज करके दी जाएँ, यहाँ उपलब्ध किए जाएँगे। पुस्तकालय के विषय में विस्तार से 'पुस्तकालय' अध्याय में देखिए।

६. औषधालय की सामग्री—औषधालय में कुछ अलमारियाँ, बोतलें, प्राथमिक सहायता का सन्दूक व कुछ औजार, व तामचीनी के प्याले, स्टोव, एक स्ट्रेचर, थर्मामीटर स्थायी सामग्री के रूप में संचित किए जाएँगे।

यहाँ पर स्थायी सामग्री के रूप में कुछ दवाइयाँ, रुई, पट्टियाँ आदि सब समय संगृहीत रहेंगी। यहाँ सामान के जमा-खर्च का एक रजिस्टर होगा और सेवाकार्य का विवरण दर्ज करने को एक रजिस्टर रहेगा।

७. बच्चों की दूकान की सामग्री—बच्चों की दूकान में सामान रखने को शीशे के किवाड़ वाली अलमारियाँ व कुछ मेजें जिन पर सामान बाहर भी रखा जा सके, जुटाई जानी चाहिएँ। काँच की कुछ बरनियाँ, एक तराजू व तिजोरी बाट सहित भी स्थायी सामान के रूप में संग्रह की जानी चाहिएँ।

स्थायी सामान के रूप में बालकों द्वारा तैयार की हुई बेचने की वस्तुएँ रखी जाएँगी और इनके अतिरिक्त कुछ ऐसी वस्तुएँ जिनकी बालकों को दैनिक जीवन में आवश्यकता होती है, उनको भी जुटाया जाएगा।

स्थायी सामान का रजिस्टर, बेचने के सामान की खरीद व बिक्री का ब्यौरा दर्ज करने का रजिस्टर व बिल-बुक, छात्रों के व्यक्तिगत खातों के रजिस्टर यहाँ अनिवार्य रूप से रहेंगे।

८. पानी के कमरे का सामान—यहाँ पर स्थायी सामान के अन्तर्गत पीतल या ताँबे के कुछ घड़े, बालटियाँ, लोटे व गिलास जुटाई जाएँगी। अस्थायी सामान के अन्तर्गत मिट्टी के मटके, पानी छानने को कपड़ा व रस्सियाँ यहाँ उपलब्ध की जाएँगी।

९. व्यायाम, खेल, बालचर दल का सामान—बुनियादी शाला में देशी खेल अधिक महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। फिर भी घर के अन्दर व मैदान के खेलों की सामग्री जुटानी आवश्यक होगी। बालचरों की गतिविधियों को सुचारु रूप से चलाने हेतु आवश्यक सामग्री को जुटाने का जिम्मा भी शाला का होगा।

१०. यात्रा का सामान—शाला-सामग्री की प्रमुख प्रवृत्तियों के अन्तर्गत शिविर और यात्रा भी आते हैं। यात्रा के समय एक या दो खेमे, दो मोमजामे, सामूहिक भोजन के बर्तन, प्रकाश हेतु कुछ चिराग, कम से कम दो पेट्रोमैक्स व कुछ बालटियाँ जरूरी होती हैं। इनका शाला में उपलब्ध किया जाना जरूरी होता है।

११. संग्रहालय की सामग्री—संग्रहालय को यदि सीमित रूप में माना जाये तो केवल छात्रों के द्वारा तैयार की गई श्रेष्ठ कृतियाँ ही यहाँ संग्रह की जा सकती हैं। परन्तु विस्तृत दृष्टि से तो यात्रा, कैम्प व विभिन्न अवसरों पर अनोखी व सुन्दर वस्तुएँ जिनको बालक सुरक्षित रखना चाहे सभी यहाँ इकट्ठी की जा सकती है। इन वस्तुओं को इकट्ठी करने के हेतु संग्रहालय में शीशे की बन्द अलमारियाँ एवं शो-केस होंगे। यहाँ पर एक रजिस्टर में सारी सामग्री क्रमवार दर्ज रहेगी और दूसरा रजिस्टर संग्रहालय के विषय में दर्शकों के अपने मत अंकित करने हेतु यहाँ उपलब्ध किया जायगा।

१२. सभा-भवन की सामग्री—बुनियादी शाला में सभा-भवन का एक विशेष महत्व होता है। यहाँ पर बिछाने के लिए कक्षाओं के अनुसार ही एक बड़ी चटाई या जाजम होगी और सब अवतारों, पैगम्बरों व महापुरुषों के चित्र यहाँ दीवार पर लगे हुए होंगे। यहाँ पर एक चबूतरा भी होगा, जहाँ खड़े रह कर प्रवचन किया जा सके। परमात्मा में कुछ क्षण लीन होने में सहायक होने हेतु यहाँ पर धूप-दान की व्यवस्था भी की जाएगी जो वातावरण को सुगन्धित बनाने में सहायक होगा।

१३. प्रधानाध्यापक के कार्यालय की सामग्री—यहाँ पर प्रधानाध्यापक के बैठने को एक कुर्सी, सामने एक बड़ी टेबिल, आगन्तुकों के लिए कुछ कुर्सियाँ, गोपनीय साहित्य रखने को एक अलमारी, लोहे का सन्दूक, कलमदान, घड़ी, घंटी व कुछ रजिस्टर यहाँ उपलब्ध किए जाएँगे।

१४. शाला में काम आने वाले प्रमुख रजिस्टर व फार्म—शाला के प्रत्येक काम का ब्योरा लिखा जाना जरूरी है। लम्बे समय के अनुभव ने इस सारे विवरण को व्यवस्थित रूप में रखने का मार्ग भी प्रशस्त कर दिया है।

शाला में सामान्यतः निम्न फार्मों का प्रयोग होता है :—

(क) शिक्षकों द्वारा पूर्ण करने के फार्म—

१……शिक्षण की वार्षिक योजना।
२……शिक्षण की मासिक योजना।
३……दैनिक पाठ-संकेत।
४……मासिक विवरण का वर्णन।
५……उद्योग का सामूहिक ब्योरा।
६……उद्योग की व्यक्तिगत डायरी।

(५) निरीक्षण की व्यवस्था हो।

(६) रेकार्ड स्वयं पूर्ण हो।

विद्यालय-सामग्री के प्रमुख अंग—

(१) कक्षा-सामग्री।

(२) उद्योग की सामग्री।

(३) कला व विज्ञान की सामग्री।

(४) पाठ-सहायक सामग्री :—

(क) श्यामपट्ट, खड़िया व झाड़न।

(ख) मानचित्र।

(ग) चित्र।

(घ) चार्ट्स।

(ङ) मॉडल्स।

(५) पुस्तकालय की सामग्री।

(६) औषधालय की सामग्री।

(७) बच्चों की दूकान की सामग्री।

(८) पानी के कमरे का सामान।

(९) व्यायाम, खेल, स्काउट दल का सामान।

(१०) यात्रा का सामान।

(११) संग्रहालय की सामग्री।

(१२) सभा-भवन की सामग्री।

(१३) प्रधानाध्यापक के कार्यालय की सामग्री।

(१४) शाला में काम आने वाले प्रमुख रजिस्टर व फार्म।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(१) पाठशाला सामग्री संकलन के प्रमुख अंगों का संक्षेप में वर्णन कीजिए।

(२) शाला के प्रबन्ध में प्रमुख रजिस्टरों के प्रयोग का क्या महत्व है ? विस्तार से लिखिए।

—:•:—

: १४ :

उद्योग-कार्य की व्यवस्था, विवरण व हिसाब

प्रस्तावना—नेशनल इन्स्टीट्यूट ऑफ बेसिक एज्यूकेशन, शिक्षा मन्त्रा भारत सरकार द्वारा प्रकाशित पुस्तिका, बुनियादी शिक्षा का शासन (१९६०) बुनियादी शालाओं के स्तर के सुधार-विषयक विचारों में उद्योग-कार्य की व्यव की दृष्टि से व्यक्त किया गया है—"चूंकि उद्योग शिक्षा का सबल माध्यम है, शिक्ष इस क्रिया की व्यवस्था में प्रवीण होना चाहिए। ऐसा दोषारोपण है कि उद्योग छात्र रुचि नहीं लेते। परन्तु रुचि को जागृत करना और उसको कायम रखना विषय के प्रस्तुतिकरण पर ही निर्भर करता है। उद्योग की एकरसता (Monotony) उसमें स्वयं में नहीं है वरन् उसकी पद्धति में है।.........सुआयोजित उद्योग प्रारम्भिक आवश्यकता है शिक्षक की उस कौशल में प्रवीणता। द्वितीय बिन्दु शिक्षक की उपस्थिति में सम्पूर्ण उद्योग कक्ष पर प्रभाव डालता है वह है उसका स्व का छात्रों के सामने उदाहरण, केवल उसके उपदेश द्वारा ही नहीं वरन् उसके उद्योग के अभ्यास द्वारा......।"

(१) योग्य उद्योग-शिक्षक—बुनियादी शालाओं में शिक्षक उद्योग के होते हैं। फिर भी प्रत्येक उद्योग का एक शिक्षक ऐसा होना जरूरी है, जो उस उद्योग में विशेष योग्यता रखता हो। आज देश में कारीगर तो फिर भी हमें मिल सकते हैं परन्तु ऐसे कारीगर जो अपनी कारीगरी को बालकों को पढ़ा सकें नहीं मिलते। एक ओर ऐसे शिक्षक हैं जो पढ़ाने की कला में सिद्धहस्त हैं, पर वे कारीगरी में दक्ष नहीं और दूसरी ओर ऐसे कारीगर हैं जो अपनी कारीगरी में दक्ष हैं परन्तु अध्यापन में दक्ष नहीं। इस स्थिति में भी शालाओं के काम को आगे बढ़ाना है। इस बाबत भारत सरकार द्वारा नियुक्त 'एसेसमेंट कमेटी ऑन बेसिक एज्यूकेशन १९५६' की रिपोर्ट में सुझाव दिया है कि कुशल कारीगरों को पाठशाला से सम्बद्ध किया जाकर उन्हें बुनियादी प्रशिक्षण प्राप्त अध्यापकों के संरक्षण में उद्योग शिक्षा का अवसर दिया जाना चाहिए। और दूसरा तरीका उपरोक्त कमेटी ने यह भी सुझाया है कि हर रोज कुछ समय के लिए या हफ्ते में दो या तीन दिन के लिए बच्चों को बुनियादी प्रशिक्षण प्राप्त अध्यापक के संरक्षण में दक्ष कारीगरों की उद्योगशाला में ले जाया जाना चाहिए। ऐसा करने से बालक उद्योग तो सीखेंगे ही एवं उन्हें उन अनेक स्थितियों का भी ज्ञान होगा जो गाँव के उस कारीगर को प्रभावित करती हैं, जो गाँव की रीढ़ है। ऐसा होने पर वर्तमान कठिनाई का एक सीमा तक हल निक[illegible] है। फिर भी यह स्पष्ट है कि बुनियादी शाला की सफलता ऐसे उद्योग-[illegible] पर ही निर्भर करती है जो उद्योग और शिक्षण-कला दोनों में दक्ष हों।

(२) उद्योग-कक्ष व उसकी सामग्री—इस विषय में पाठशाला सामग्री नचयन नामक पाठ में विस्तार से विवेचन हो चुका है। अतः यहां केवल यही बिन्दु स्पष्ट करना पर्याप्त होगा कि प्रत्येक कुशल उद्योगी व कारीगर के अपने खुद के औजार होते हैं, और प्रत्येक योग्य, विद्वान विचारक व लेखक अपनी निजी पुस्तकों का संग्रह रखता है, जिनकी उपस्थिति में वह यह अनुभव करता है कि वह अपने उन साथियों के बीच है, जिनके सहयोग से उसे सब प्रकार की सफलताएं प्राप्त होंगी। अनेकों कारीगर, जब उनको कारणवश किसी अन्य के औजारों से काम करना पड़ा, यह कहते पाए गए—"अगर मेरे औजार होते तो मैं इस वस्तु को अधिक सुन्दर और अधिक जल्दी तैयार कर देता।" ये वाक्य स्पष्ट करते हैं कि व्यक्ति अपने निजी साधनों को रोजाना काम में लाते-लाते उनके ऊपर ऐसा अधिकार प्राप्त कर लेता है कि उसके द्वारा वह वैसे ही अन्य साधनों की तुलना में, अधिक सफलता प्राप्त कर सकता है। इस दृष्टि से उद्योग-कक्ष में शाला को ऐसी सामग्री ही जुटानी चाहिए जिनको बालक खुद नहीं खरीद सकते हैं। बालकों को उद्योग-कक्ष में ऐसी सुविधा भी मिलनी चाहिए कि अगर वे चाहें तो उद्योग के अपने औजार वहीं पर सुरक्षित छोड़ कर घर जा सकें।

(३) बालकों में उद्योग-कार्य का विभाजन—कार्य का उपयुक्त विभाजन सफलता में भारी योग देता है। ऐसे उपकरण जो बालकों के अपने निजी होते हैं उनसे बालक किसी भी काम को एक साथ कर सकते हैं। परन्तु समस्या तब पैदा होती है जब पाठशाला की ओर से उपलब्ध करने के उपकरण संख्या में कमी के कारण प्रति व्यक्ति के हिसाब से छात्रों में बांटे नहीं जा सकते। ऐसी स्थिति में छात्रों को टोलियों में बांट कर काम में व्यस्त रखा जा सकता है। टोली का प्रत्येक छात्र उस टोली को सुपुर्द किए गए काम में लगा रहता है। ऐसे अवसर पर कार्य की पूर्णता के सुख का अनुभव सारी टोली को होता है। प्रत्येक छात्र टोली में रहकर अपनी टोली की सफलता में अपनी सफलता मानता है। टोली में काम करते हुए काम में सुस्त छात्र और मेहनती छात्र दोनों ही सफलता के समान अंश में भागी होते हैं। कृषि के कार्य को करते हुए ऐसे अवसर ज्यादा आते हैं, क्योंकि इस उद्योग में करीब-करीब सारा काम टोलियों के द्वारा ही पूरा होता है। ऐसे अवसर बालकों को वैयक्तिक दृष्टिकोण से ऊंचा उठाकर सामाजिक दृष्टिकोण की ओर प्रवृत्त करते हैं।

छात्रों की उद्योग की व्यक्तिगत योग्यता का मूल्यांकन करने के अधिक अवसर कताई-बुनाई उद्योग में आते हैं। इस उद्योग में बालक कपास की सफाई से प्रारम्भ करके कपड़े की बुनाई तक अकेला भी काम कर सकता है। उसे अपने द्वारा पूरे किए गए काम से पूर्णता का आनन्द लेने का अवसर मिलता है। उसके शिक्षक भी उसके इस काम से उसकी खुद की योग्यता का मूल्यांकन कर उसकी रुचि का अध्ययन कर सकते हैं। इस प्रकार प्रत्येक शाला में एक उद्योग ऐसा होना चाहिए जो बालक की निजी योग्यता का अध्ययन करने में मदद करे और दूसरा ऐसा हो जो बालक की समाज में अपने को व्यवस्थित करने की क्षमता के अध्ययन में सहायक हो सके। ऐसी व्यवस्था शाला में उपयुक्त रहती है।

उद्योग-कार्य का विवरण—पाठशाला में बालकों के उद्योग के काम का व्योरा रखना उद्योग की शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति में बहुत मुख्य ... है। प्रत्येक बालक उद्योग में प्रतिदिन कितना समय लगाता है? ... कितना काम करता है? उस काम का स्तर कैसा है? किए हुए काम ... शिक्षा के स्वावलम्बन के पक्ष में कितने प्रतिशत सफलता मिलती है? इन सब ... का उत्तर उद्योग का विवरण रखने के ऐसे रजिस्टर ही दे सकते हैं जिनको नियमित रूप से पूरा किया गया है। साधारणतः प्रत्येक शाला में कताई-बुनाई और कृषि ... ही चलते है जिसका व्योरा निम्न तरीके से रखा जाना चाहिए :—

(१) **कताई-बुनाई और उसका विवरण रखना**—कताई-बुनाई के विवरण के फार्म साधारणतः निम्नलिखित होते हैं :—

क-१—कपास की सफाई से पूनी बनाने तक की क्रियाओं का ... विवरण।

क-२—पूनी बनाने तक की क्रियाओं में कच्चे माल का मूल्यांकन और ... का मूल्यांकन।

क-३—कताई के कार्य का दैनिक विवरण।

क-४—कताई के श्रम का मूल्यांकन।

क-५—बुनाई का दैनिक विवरण।

क-६—बुनी हुई वस्तु का मूल्यांकन।

उपरोक्त फार्म के नमूने इस पुस्तक के अन्त में परिशिष्ट "क" पर दिये हैं।

(२) **कृषि और उसका विवरण रखना**—कृषि का विवरण रखने के ... साधारणतः निम्नलिखित होते हैं :—

ख-१—बुआई, देखभाल, फसल व पैदावार का विवरण।

ख-२—कृषि पर किए गए श्रम का विवरण।

ख-३—कृषि का आर्थिक पहलू—आय-व्यय का विवरण।

उपरोक्त फार्म के नमूने इस पुस्तक के अन्त में परिशिष्ट "ख" पर दिये हैं।

सारांश

उद्योग-कार्य की व्यवस्था—उद्योग के महत्व की दृष्टि से इस विषय को शालाओं में सुयोजित रूप में चलाया जाना चाहिये। इस क्रम में निम्न लिखित महत्वपूर्ण है :—

(१) **योग्य उद्योग शिक्षक**—इसका बड़ा अभाव है। वर्तमान स्थिति में किसी दक्ष कारीगर को शाला में बालकों के सामने उद्योग एवं उसके विभिन्न कार्यों का प्रदर्शन (डेमान्स्ट्रेशन) देने हेतु नियुक्त करके उद्योग के सैद्धान्तिक पक्ष पर कक्षा में नियुक्त शिक्षक द्वारा काम लिया जाना चाहिए।

(२) **उद्योग-कक्ष व उसकी सामग्री**—ऐसा सामान जिसे ...

खरीद सकें, पाठशाला के उद्योग-कक्ष में नहीं खरीदा जाना चाहिए। उपरोक्त सामान के अतिरिक्त सामान शाला की ओर से उपलब्ध किया जाना चाहिए।

(३) बालकों में उद्योग-कार्य का विभाजन—यह समस्या तब पैदा होती है जब एक कक्षा के सब छात्रों को बांटने की दृष्टि से उद्योग-कक्ष में पूरा सामान उपलब्ध नहीं होता। ऐसे अवसर पर छात्रों को टोलियों में बांट कर काम लिया जाना चाहिए। एक टोली जब एक काम करे, दूसरी दूसरे काम में व्यस्त रखी जा सकती है और इसी प्रकार अन्य टोलियां भी काम में लगी रह सकती है। कृषि का काम टोलियों में लिया जाना उपयुक्त रहता है और कताई-बुनाई में व्यक्तिगत रूप से काम में व्यस्त रह सकते है।

उद्योग-कार्य का विवरण—इस कार्य में विशेष प्रकार से कताई और कृषि का समावेश होता है। इन दोनों उद्योगों के विवरण रखने के फार्म परिशिष्ट "क" और "ख" पर दिए गए है।

निरीक्षण का व्यावहारिक पक्ष—निरीक्षण केवल खानापूर्ति मात्र नहीं होना चाहिये। इस को अधिकाधिक व्यावहारिक बनाने के लिए इन बातों का ध्यान रखना: (१) उद्योग व्यवस्था—उसकी वातावरण अनुकूलता प्रगति आदि देखना आवश्यक है। (२) समवायी शिक्षण—अध्यापक अच्छे ढंग से समवाय कर पाता है या नहीं? (३) वातावरण का केन्द्र शाला—शाला गांव के समृद्ध वातावरण का केन्द्र है या नहीं? (४) शाला की अन्य विशेषताएं शाला में अन्य कौन-कौन सी विशेषताएं है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(१) निरीक्षक कार्य की आवश्यकता और महत्ता प्रदर्शित करते हुए बतायें कि बुनियादी शाला के निरीक्षक में किन-किन गुणों का होना आवश्यक है?

(२) आप बुनियादी शाला के निरीक्षक की तरह एक बुनियादी शाला का निरीक्षण किस प्रकार करेंगे?

—:०:—

: १५ :

अनुशासन

अनुशासन से तात्पर्य—शिक्षा के कई उद्देश्यों में से एक यह भी है कि शि बालक का शारीरिक, मानसिक और नैतिक विकास करे। बालकों को चरित्र सभ्य, सदाचारी, समाज-सेवी और राष्ट्र-सेवी बनाने के लिए ही शिक्षा तथा शा की व्यवस्था की आवश्यकता है। अतः बालक में अच्छी आदतें उत्पन्न करना का कार्य है। इस दृष्टि से शाला के अध्यापकों का यह कर्तव्य हो जाता है कि व के लिए ऐसा वातावरण उत्पन्न करे कि बालक स्वतः इन बातों को सीखें लिए बालकों से शाला के नियमों का पूर्णतः पालन कराया जाए। उसे परि और सुभाषी बनाया जाए। उसे अच्छाइयों के प्रति प्रेम रखने वाला बनाया बुराइयों के प्रति घृणा उत्पन्न कराई जाए। तात्पर्य यह है कि बालकों को ऐसे का पालन करना सिखाया जाए कि वह भावी जीवन में सदाचारी, होनहार, कर्तव्यशील, मधुर भाषी तथा नियम-पालक नागरिक बने।

पर इसका तात्पर्य यह कदापि नहीं है कि बालकों द्वारा इन नियमों के कराने में किसी प्रकार की कठोरता अथवा भय का प्रयोग किया जाए। अनु का अर्थ डंडे के आधार पर नियम पालन नहीं है। अनुशासन का अभिप्राय छा मूर्तियाँ बना देना नहीं और न ही उन को मशीनें बना देना है। अध्यापक के कारण छात्र ने यदि कार्य करना सीखा तो यह प्रभाव स्थायी न रहेगा। अनु का मुख्य ध्येय यह है कि अध्यापक स्वयं ऐसा वातावरण उपस्थित करे कि छात्र मानसिक अवस्थाएँ ऐसी हो जाएँ कि वे हृदय से प्रसन्नतापूर्वक उन कार्यों को शाला में अच्छे अनुशासन का तात्पर्य यही है कि अध्यापक तथा छात्र सब पाठशाला तथा कक्षा के नियमों का यथोचित रीति से पालन करें। अध्य प्रधानाध्यापक की आज्ञाकारिता निभाएँ और छात्र अध्यापक और प्रधानाध्य दोनों की। शाला में कोई भी प्राणी नियम-विरुद्ध कार्य न करे। यदि वातावरण की छाप बालकों पर लगाई जाए तो वे वास्तव में अनुशासित बालक है जो अपने राष्ट्र को उन्नतिशील बनाने में अपनी छाप अंकित करते हैं।

एक भारतीय यात्री ने अपनी विदेश यात्रा के वर्णन में बताया था कि वि के लोगों का जीवन बड़ा अनुशासित और नियन्त्रित होता है। एक बार भार जीवन की आदत के अनुसार वह भारतीय यात्री अमरीका की सड़क पर चल अपनी जेब के कागजों को निकाल कर उनमें से रद्दी कागजों को फाड़-फाड़ कर पर ही फेंकता जा रहा था। कुछ दूर तक इसी प्रकार चलते रहने पर उस कि एक बालक उसके पीछे-पीछे उन टुकड़ों को उठाता चला आ रहा था।

...ार के साधनों पर प्रकाश डालने के पूर्व अनुशासनहीनता के कारणों को जानना ...वश्यक है। वर्तमान समय में प्राथमिक शाला से लेकर उच्च विद्यालय तथा ...श्वविद्यालय तक के छात्रों पर अनुशासनहीनता का दोष लगाया जाता है। प्राये ...न समाचार-पत्रों में छात्रों की अनुशासनहीनता के विषय में सूचनाएँ पढ़ने को ...लती हैं। इस प्रकार निरन्तर बढ़ने वाली अनुशासनहीनता के कारणों का अध्ययन ...रने के लिए कई शिक्षा विशारद प्रवृत्त हुए। प्रो० हुमायूँ कबिर ने विद्यार्थियों में ...नुशासनहीनता का गहरा अध्ययन किया। उन्होंने जो कारण खोज निकाले वे ...स प्रकार हैं :—

(क) अध्यापकों में नेतृत्व का लोप—विद्यार्थियों में फैली हुई अशान्ति का ...रण अध्यापकों में सही नेतृत्व का अभाव है। अध्यापकों में असन्तोष, उनकी ...र्थिक, सामाजिक पतित अवस्था, ट्यूशन करने की प्रथा, विद्वत्ता का अभाव, ...क्षा की सामग्री का अभाव, शिक्षा सम्बन्धी समस्याओं पर अध्यापकों का वश न ...ना, व्यवसाय के प्रति अरुचि, योग्यता का अभाव, स्वयं का अनुशासनहीन जीवन ...दि कई ऐसे कारण हैं जो अध्यापकों में छात्रों के नेतृत्व का अभाव लक्षित करते ...। जहाँ भी अध्यापकों का सही नेतृत्व रहता है वहाँ पर विद्यार्थियों में अनुशासन-...ीनता की समस्या ही नहीं उठती। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि अध्यापक की स्वयं ...ी दुर्बलता के कारण तथा जीवन में आदर्श न रखने के कारण बालक प्रायः अनु-...ासन विहीन होते हैं।

(ख) वर्तमान शिक्षा पद्धति के दोष—वर्तमान शिक्षा पद्धति दोषपूर्ण है और ...त्रों में अनुशासन न बनाए रखने का एक महत्वपूर्ण कारण है। वर्तमान शिक्षा ...द्धति केवल साहित्यिक है और साथ ही अव्यवहारिक भी है। छात्रों को भावी ...वन में उचित जीविका उत्पन्न करने योग्य नहीं बनाती, उन्हें धन्धे नहीं सिखाती ...न् सभी अफसरी नौकरियाँ प्राप्त करना चाहते हैं। जब छात्र यह समझता है कि ...स शिक्षा-पद्धति से उनका केवल अक्षर ज्ञान ही होना है—वह रोटी कमाना नहीं ...ख सकता तो फिर बालक, अध्यापक और शिक्षा दोनों की ओर उपेक्षित रहता ... साथ ही पाठ्यक्रम भी ऐसा है जो विद्यार्थियों के बिना समझे बहुत सी बातें ...पने दिमाग में ठूँस लेने को बाध्य करता है। परीक्षाएँ भी केवल याददास्त पर ...र्भर हैं जिसमें बालक परीक्षा के दिनों में परिश्रमी बन जाता है अन्यथा शेष समय ...उच्छृंखलता प्रदर्शित करता है। साल के अधिकांश समय में विद्यार्थियों की शक्ति ... तौर से काम में नहीं लगती इसलिए वह उद्दण्डताओं की ओर प्रवृत होकर समाज ...रोधी बन जाता है। इस प्रकार वर्तमान शिक्षा पद्धति के दोषों के कारण भी ...र्थियों में अनुशासनहीनता विद्यमान है।

(ग) आर्थिक कठिनाइयों का बढ़ना—... आर्थिक ...ठिनाइयाँ अनुभव करने लगते हैं क्योंकि छात्रों ... माता-...ा पूरी नहीं कर सकते। फैशन ... आव-...ता की माँग करता है, पर ... जिसके ...ण छात्र उसकी ...

करनी चाहिये। बड़े बालकों में वही अनुशासन चिरस्थाई होगा जिसके अभ्यास में बालकों की रुचि निरन्तर बनी रहती हो।

बालकों में अनुशासन स्थापित करने के साधन—

(क) अध्यापक की दृष्टि से—बालकों में अनुशासन के प्रति रुचि उत्पन्न करना अध्यापक का ही कर्त्तव्य है यद्यपि अनुशासन जमाने में अन्य साधन भी उपेक्षणीय नहीं। अध्यापक की दृष्टि से निम्नलिखित बातें सहायक होंगी :—

(१) सर्वप्रथम अध्यापक को बालकों का सफल नेतृत्व प्राप्त करना चाहिये। अध्यापकों को अपने जीवन में उन आदर्शों को अपनाना चाहिये जिन्हें वे बालकों द्वारा अनुसरण कराना चाहते हैं। अध्यापकों को स्वयं अपने जीवन में अच्छाइयाँ अपनाकर बालकों के सामने अनुकरणीय आदर्श रखना चाहिए।

(२) अध्यापक के जीवन तथा कथन का प्रभाव बालकों पर तभी पड़ सकता है, जब अध्यापक अपने विषय में विद्वान हो, उसकी विद्वत्ता से छात्र प्रभावित हों। अतः अध्यापक को अपनी विद्वत्ता को बढ़ाने में निरन्तर रत रहना चाहिए।

(३) बालकों को समय-समय पर प्रोत्साहित करते रहना चाहिए। उनको अच्छे कार्यों के प्रति उत्साहित करते रहने से इस ओर उनकी रुचि बढ़ती रहेगी।

(४) प्रायः अध्यापक अपनी आर्थिक अवस्था के कारण समाज अथवा बालकों के प्रति उपेक्षित रहते हैं। अध्यापकों के आर्थिक स्तर में वृद्धि अवश्य होनी चाहिए पर इसके न होने का दोष यदि अध्यापक बालकों पर मढ़ता है तो भारी भूल करता है। अपनी आर्थिक अव्यवस्था के कारण छात्रों के प्रति उपेक्षित रहना अनुचित है। ऐसा करने से वह समाज की सहानुभूति भी खो देगा, जो सरकार द्वारा उसके आर्थिक स्तर को उन्नत कराने में निश्चित ही सहायक हो सकती है।

(५) अध्यापकों की ट्यूशन प्रवृत्ति के कारण भी अनुशासन व्यवस्था पर बुरा असर पड़ता है।

(६) पाठ को पढ़ाने की पूरी तैयारी करके ही रोचक ढंग से पाठ पढ़ाया जाना चाहिए। पाठ को पढ़ाते समय यदि बालक को आनन्द आए तब ही अध्यापक का बालक पर प्रभाव पड़ सकता है।

(७) अनुशासन तभी अच्छे ढंग से बना रह सकता है जबकि बालक अपने आपको बेकार न महसूस करे। अतः अध्यापक को चाहिए कि कक्षा में प्रत्येक बालक को कार्य में संलग्न रखे।

(८) अध्यापक को सम्पूर्ण कक्षा पर निगाह रखनी चाहिए। कई बार श्यामपट्ट पर लिखने में लगे अध्यापक की छात्र अपनी ओर पीठ देखकर उच्छृंखलता करने लग जाते हैं। अतः अध्यापक को श्यामपट्ट पर लिखित कार्य करते हुए भी छात्रों पर निगाह रखनी चाहिए। यदि कक्षा में कोई अनुचित कार्य होने लगे तो तुरन्त ही उसे रोकना चाहिए।

(९) अध्यापक में यह योग्यता होनी चाहिए कि वह शासन भंग करने वाले छात्रों को पहचान ले तथा ऐसे बालकों को हमेशा काम में लगाए रखे। उन्हें

में छात्र चोरी इसीलिए करते हैं कि वे चुराई हुई वस्तु द्वारा अपनी कोई न कोई आवश्यकता को पूरी करना चाहते हैं। गाँवों में भी एक गरीब घर का बालक सेठ जी के बालक की आवश्यकताओं को पूरी होते देखता है तो वह अपनी इच्छा पूर्ति के लिए कोई न कोई नया मार्ग खोज निकालता है। इस प्रकार समाज आर्थिक अव्यवस्था भी विद्यार्थियों की अनुशासनहीनता का एक प्रमान कारण है।

(घ) समाज में आदर्श का अभाव—विद्यार्थियों की अनुशासनहीनता का कारण वर्तमान समाज में आदर्श का अभाव भी है। छात्र जब समाज को देखता है तो उसे सर्वत्र छीना-झपटी, अन्याय, कपट, छल आदि ही दृष्टिगोचर हैं। वह देखता है कि एक व्यक्ति इसीलिए मौज कर रहा है क्योंकि उसने दूसरे धन चुरा लिया है, छीन लिया है, छल या कपट में प्राप्त कर लिया है और वह स्वयं भी ऐसा ही करने को उद्यत हो जाता है। वह देखता है कि ईमानदार उठाता है और बेईमान आनन्द में है। समाज का लक्ष्य ही भौतिकवाद रह गया समाज की यह अव्यवस्था छात्र पर भी अपनी छाप अंकित करती है। जिसके का छात्र-समाज अनुशासनहीन बनता जा रहा है।

(ङ) माता-पिताओं में शिक्षा का अभाव—बालक घर में माता-पिता आदतें सीखता है। शिक्षा के अभाव के कारण माता-पिता स्वयं ही अनुशा जीवन व्यतीत नहीं करते। कई माता-पिता तो शिक्षा के अभाव में बालक अनुशासनहीन जीवन व्यतीत करने के लिए प्रेरित करते हैं और कई बालक अनुशासनहीन जीवन व्यतीत करने की प्रणाली की ओर से उपेक्षित रहते हैं। जिस परिणाम यह होता है कि छात्र उच्छृंखल बनता जाता है।

बालकों की आयु तथा अनुशासन—अध्यापक को प्रत्येक कार्य में बालक आयु का ध्यान रखना आवश्यक है। अनुशासन के लिए भी बालकों की आयु अनुकूलता का ध्यान रखा जाना चाहिए। छोटी आयु वाले बालकों में तथा अवस्था वाले बालकों के अनुशासन की प्रणालियाँ भिन्न होती हैं पर अध्यापक ओर ध्यान नहीं देते। जिसके कारण भी हमारी शालाओं में अनुशासन बिग हुआ है।

छोटी अवस्था वाले बालक स्वभाव से ही सरल होते हैं, निष्कपट होते होते हैं। ऐसे बालकों के लिए आरम्भ से ही रुचिकर वातावरण उपस्थि ए। अनुशासन के नियम उन्हें भारस्वरूप प्रतीत न हों वरन् उन उन्हें आनन्द आए। कक्षा के बाहर चलने पर वे पंक्तिबद्ध चलें, कद , सीधे तन कर चलें, एक साथ साथ हाथ हिलाते चलें, और ऐसा करने आने लगे। बालक कितना आनन्द लेते हैं इस प्रकार चलने में वस्तु है पर यह सिखाने में अध्यापक कभी कठोरता का प्रयो

ही ५६३१ ज.
एक बालक उस कभी-कभी नियम लादने पड़ते हैं। पर नियमों को लादने में वरन् नियमों को अपनाने की ओर उनकी रुचि जाग्रत

करनी चाहिये। बड़े बालकों में वही अनुशासन चिरस्थाई होगा जिसके अभ्यास में बालकों की रुचि निरन्तर बनी रहती हो।

बालकों में अनुशासन स्थापित करने के साधन—

(क) अध्यापक की दृष्टि से—बालकों में अनुशासन के प्रति रुचि उत्पन्न करना अध्यापक का ही कर्तव्य है यद्यपि अनुशासन जमाने में अन्य साधन भी उपेक्षणीय नहीं। अध्यापक की दृष्टि से निम्नलिखित बातें सहायक होंगी :—

(१) सर्वप्रथम अध्यापक को बालकों का सफल नेतृत्व प्राप्त करना चाहिये। अध्यापकों को अपने जीवन में उन आदर्शों को अपनाना चाहिये जिन्हें वे बालकों द्वारा अनुसरण कराना चाहते हैं। अध्यापकों को स्वयं अपने जीवन में अच्छाइयाँ अपनाकर बालकों के सामने अनुकरणीय आदर्श रखना चाहिए।

(२) अध्यापक के जीवन तथा कथन का प्रभाव बालकों पर तभी पड़ सकता है, जब अध्यापक अपने विषय में विद्वान हो, उसकी विद्वत्ता से छात्र प्रभावित हों। अतः अध्यापक को अपनी विद्वत्ता को बढ़ाने में निरन्तर रत रहना चाहिए।

(३) बालकों को समय-समय पर प्रोत्साहित करते रहना चाहिए। उनको अच्छे कार्यों के प्रति उत्साहित करते रहने से इस ओर उनकी रुचि बढ़ती रहेगी।

(४) प्रायः अध्यापक अपनी आर्थिक अवस्था के कारण समाज अथवा बालकों के प्रति उपेक्षित रहते हैं। अध्यापकों के आर्थिक स्तर में वृद्धि अवश्य होनी चाहिए पर इसके न होने का दोष यदि अध्यापक बालकों पर मढ़ता है तो भारी भूल करता है। अपनी आर्थिक अव्यवस्था के कारण छात्रों के प्रति उपेक्षित रहना अनुचित है। ऐसा करने से वह समाज की सहानुभूति भी खो देगा, जो सरकार द्वारा उसके आर्थिक स्तर को उन्नत कराने में निश्चित ही सहायक हो सकती है।

(५) अध्यापकों की ट्यूशन प्रवृत्ति के कारण भी अनुशासन व्यवस्था पर बुरा असर पड़ता है।

(६) पाठ को पढ़ाने की पूरी तैयारी करके ही रोचक ढंग से पाठ पढ़ाया जाना चाहिए। पाठ को पढ़ाते समय यदि बालक को आनन्द आए तब ही अध्यापक का बालक पर प्रभाव पड़ सकता है।

(७) अनुशासन तभी अच्छे ढंग से बना रह सकता है जबकि बालक अपने आपको बेकार न महसूस करे। अतः अध्यापक को चाहिए कि कक्षा में प्रत्येक बालक को कार्य में संलग्न रखे।

(८) अध्यापक को सम्पूर्ण कक्षा पर निगाह रखनी चाहिए। कई बार श्यामपट्ट पर लिखने में लगे अध्यापक की छात्र अपनी ओर पीठ देखकर उच्छृंखलता करने लग जाते हैं। अतः अध्यापक को श्यामपट्ट पर लिखित कार्य करते हुए भी छात्रों पर निगाह रखनी चाहिए। यदि कक्षा में कोई अनुचित कार्य होने लगे तो तुरन्त ही उसे रोकना चाहिए।

(९) अध्यापक में यह योग्यता होनी चाहिए कि वह शासन भंग करने वाले छात्रों को पहचान ले तथा ऐसे बालकों को हमेशा काम में लगाए रखे। उन्हें

अनुशासन भंग करने का अवसर नहीं मिलना चाहिए। इस प्रकार शनैः शनैः बालकों की अनुशासन भंग करने की आदत मिटाई जा सकती है।

(१०) अध्यापक को चाहिए कि बालकों को सोच समझकर आज्ञा दे। दी हुई आज्ञा का पालन बिना किसी तर्क-वितर्क के बालक से अवश्य कराए।

(११) अध्यापक को सभी बालकों के प्रति एक-सा व्यवहार करना चाहिए। पक्षपात-रहित व्यवहार सुशासन के लिए नितान्त आवश्यक है। अध्यापक का व्यवहार प्रत्येक छात्र के प्रति सहानुभूतिपूर्ण होना चाहिए।

(ख) पाठशाला की दृष्टि से—

(१) शाला का वातावरण ही ऐसा होना चाहिए जिसमें बालक आनन्द अनुभव करे। शाला में आने से उसे प्रसन्नता हो न कि भय उत्पन्न हो।

(२) शाला के नियम ठीक ढंग से सोचकर ऐसे बनाए जाएँ कि जिनके पालन में छात्रों को असुविधा न हो। यदि किसी बालक को व्यक्तिगत आपत्ति हो तो उसे दूर करना भी शाला का कर्तव्य है।

(३) शाला के कार्य में माता-पिता का सहयोग अत्यन्त वांछनीय है। अतः शाला को छात्रों के माता-पिता या संरक्षक से सम्बन्ध स्थापित करना चाहिए। [illegible] में [illegible] अभिभावक सम्मेलन आयोजित किए जाएँ जिनमें बालकों की [illegible] प्रगति के सम्बन्ध में भी वार्तालाप हो।

(४) शाला में जहाँ तक हो सके एक संग्रहालय होना चाहिए जिसमें बालकों के विभिन्न सृजन, कलात्मक तथा साहित्यिक कृत्यों का प्रदर्शन किया जा सके।

(५) अनुशासन जमाने में बालचर, शेर दल, रेडक्रास तथा [illegible] एन० सी० सी०, एन० सी० सी० आदि बड़े सहायक सिद्ध हुए हैं। अतः शाला में [इस] प्रकार के आयोजन अवश्य किए जाने चाहिएँ।

(६) शाला में यदि पुस्तकालय हो तो वह भी अनुशासन के जमाने में सहायक होता है। बालकों की श्रेणी व योग्यता के अनुसार उन्हें पुस्तकों के पढ़ने को [illegible] प्रदान किया जाना चाहिए।

(७) विद्यार्थी संघ तथा कक्षा प्रमुख (मॉनिटर) चुन कर उन पर जिम्मेदारि[illegible] डाली जा सकती हैं जिससे उनका जीवन सफल बन सके।

(८) समय-समय पर सम्पूर्ण शाला अथवा अलग-अलग कक्षाओं का [illegible] [illegible], खेल आदि किए जाने चाहिएँ जिससे बालकों में मिल-जुल कर काम [illegible] तथा सहयोग की भावना उत्पन्न होती है।

[illegible]) शाला में सफाई, स्वच्छ वायु, पूर्ण प्रकाश, बैठने का उचित [illegible] [illegible] की वैज्ञानिकता आदि का ध्यान रखा जाने [illegible] अनुशासन में [illegible] जाता है।

[illegible]) [illegible] बालकों को शाला के [illegible] [illegible] व्यस्त रहना चाहिए।

(११) शाला में [illegible] शिक्षा का प्रारम्भ किया जाना चाहिए जो [illegible] और बालक [illegible] हो।

(ग) बालक की दृष्टि से—

(१) बालक स्वभाव से ही चंचल होता है अतः उसकी चंचलता का सदुपयोग किया जाना चाहिए।

(२) बालकों में स्वातन्त्र्य प्रेम होता है। अतः बालकों को स्वतन्त्रता मिलते रहने तक बालक अनुशासन भंग नहीं करता। पर यह ध्यान रखा जाना चाहिए कि बालक स्वतन्त्रता का दुरुपयोग न करे।

(३) बालक को उतना ही काम गृह-कार्य के रूप में दिया जाना चाहिए जितना कि उसके करने की क्षमता हो।

(४) बालक प्रसन्नता-प्रिय है। उसका दमन होने पर अनुशासन बिगड़ता है।

(५) बालकों में परस्पर प्रेम का व्यवहार होता रहना चाहिए। अनुचित व्यवहारों को बढ़ावा न मिलना चाहिए।

(६) अनुशासन बालक के जीवन का अंग बन जाने पर ही अनुशासन भंग की स्थिति नहीं आती। अतः बालक में आन्तरिक अनुशासन की वृद्धि होनी चाहिए।

(घ) शिक्षा की दृष्टि से—

(१) वर्तमान शिक्षा के दोषों को दूर करने का प्रयत्न किया जाना चाहिए। शिक्षा को जीवनोपयोगी बनाने पर ही वर्तमान अनुशासन की समस्या हल हो सकती है।

(२) पाठ्यक्रम छात्रों की रुचि के अनुकूल होना चाहिए। जबरदस्ती ठूंसा हुआ ज्ञान अनुपयोगी होता है।

(३) शिक्षा-क्रम में शारीरिक शिक्षा को स्थान होना चाहिए तथा बड़े स्कूलों में सैनिक शिक्षा प्रारम्भ की जानी चाहिए। नैतिक शिक्षा का स्थान तो सभी स्कूलों में होना चाहिए। इस प्रकार के आयोजन अनुशासन को बनाए रखने में बड़ी सहायता देते हैं।

(४) परीक्षा-प्रणाली में सुधार करने पर भी अनुशासन की समस्या सुलझ सकती है। वर्तमान परीक्षा-प्रणाली बालकों को केवल परीक्षा के दिनों में व्यस्त रखती है। अगर विद्यार्थियों को पूरे साल काम में अच्छी तरह लगा रखा जाय तो आजकल की अनुशासनहीनता और असन्तोष भी बहुत कुछ कम हो जाय। लगातार काम में लगे रहने से उनकी प्रचुर शक्तियों का उपयोग होता रहेगा, और उन्हें दूसरी तरफ जाने का मौका न मिलेगा। इससे उनमें लगातार काम करने की आदत पड़ेगी। ऐसी आदतों का पैदा करना शिक्षा का मुख्य उद्देश्य है। यदि हमारी परीक्षा प्रणाली का इस प्रकार पुनर्निर्माण हो, कि जिसमें विद्यार्थी की योग्यता को परखने के लिए अन्तिम परीक्षा के साथ, साल भर किए गए काम पर भी विचार किया जाए तो इससे अधिकांश विद्यार्थियों के जीवन में एक नया अनुशासन पैदा हो जाएगा।

(५) प्राथमिक शालाओं में बालकों को ऐसे काम दिये जाने चाहिए जिनमें उनका मन लगे और वे उनमें लगे रहें। जहाँ छात्रों को कक्षा के काम में सक्रिय भाग लेना पड़ता है वहाँ काम के अनुशासन से ही उनके चरित्र का भी विकास होता है।

(६) बालकों को बौद्धिक तथा काल्पनिक गुणों के विकास की भी शिक्षा

मिलनी चाहिए जिससे बालकों को अपने भावों और विचारों के परिष्कार का अवसर मिल सके।

अन्य साधन—बालकों में अनुशासन-हीनता का भार केवल शाला पर ही नहीं वरन् समाज और घर भी इसके भार से वंचित नहीं। अतः समाज में सुधार व घर की स्थिति सुधारने की भी नितान्त आवश्यकता है। समाज की सामाजिक स्थिति में सुधार, सभ्यता और शिष्टता का प्रयोग, अध्यापकों का सम्मान, शिक्षा का प्रसार, नैतिकता का विस्तार आदि कई साधनों का शाला के छात्रों के अनुशासन पर प्रभाव पड़ता है। यद्यपि शाला तथा अध्यापक समाज में इस प्रकार का परिवर्तन लाने में तत्काल सफल नहीं हो सकते, यहाँ तक कि कई तो इस परिवर्तन को शाला के क्षेत्र से भी भिन्न समझेंगे, तथापि शाला तथा अध्यापक शनैः शनैः समाज तथा घर की विशृंखलित परिस्थितियों में सुधारवादी परिवर्तन लाने का प्रयत्न करें तो इसका प्रभाव शाला के छात्रों के अनुशासन पर अवश्य पड़ेगा। समाज को तत्काल बदल देना यद्यपि अध्यापक के हाथ की बात नहीं है तथापि यह निश्चित बात है कि अध्यापक की विचारधाराएँ ही समाज का यथोचित निर्माण कर सकती हैं। अतः अनुशासित एवं अनुशासन-प्रिय कर्मठ अध्यापक इस ओर अवश्य सफल हो सकते हैं।

बुनियादी प्राथमिक शाला में अनुशासन—बुनियादी प्राथमिक शालाएँ बालक के जीवन का सर्वप्रथम स्कूल है। यद्यपि इसके पूर्व भी नर्सरी स्कूलों में बालकों को रखा जाना चाहिए। अनुशासनयुक्त जीवन बिताने का प्रारम्भ बालक के जीवन में नर्सरी स्कूलों में सफलता के साथ किया जाता है। परन्तु हमारे देश में नर्सरी स्कूल नहीं के बराबर हैं।

बुनियादी प्राथमिक शाला में प्रवेश के समय बालक बड़ा ही सरल प्रकृति का होता है। उसे उचित अनुचित का विशेष ज्ञान नहीं होता। बुनियादी शाला के अध्यापक का कार्य ऐसे अवसर पर बड़ा ही महत्वपूर्ण होता है क्योंकि इस समय की पड़ी हुई नींव पर ही तो जीवन-रूपी महल खड़ा होता है। अतः बुनियादी शाला के अध्यापकों को छात्रों के प्रति निम्नलिखित साधन प्रयोग में लाने चाहिएँ—

(१) बालकों को अच्छे कार्यों को करने की ओर प्रवृत्त करना चाहिए। उनकी मूल प्रवृत्तियों का न तो दमन ही करना चाहिए और न दुरुपयोग ही किया जाना चाहिए। वरन् संकेत और उदाहरण द्वारा बालकों का मार्ग-प्रदर्शन करना चाहिए।

(२) बालकों में अनुकरण करने की प्रवृत्ति अधिक होती है। अतः अध्यापक को चाहिए कि अपने स्वयं के जीवन में ऐसी कोई बुराई न आने दे जिसका बालक अनुकरण करना सीख जाएँ।

(३) बालक की इस अवस्था में हाथ से काम करने की तीव्र रुचि होती है। अतः बालकों से क्रियात्मक कार्य कराये जाने चाहिएँ जिससे वे अनुशासनबद्ध होकर सामूहिक रूप में कार्य करना सीखें। बुनियादी शाला के अध्यापकों के पास कार्य कराने की प्रणाली एक ऐसा साधन ...

जीवन में संयम को स्थापित किया जा सकता है। दस्तकारी के कार्यों द्वारा बालकों मे अनुशासन जमाना सरल है।

(४) अध्यापक को बालकों के प्रति सहानुभूति प्रदर्शित करनी चाहिए। किसी प्रकार के भय, दंड अथवा पक्षपात का प्रयोग बालकों मे मानसिक ग्रंथियों को उत्पन्न कर देगा और उनका जीवन सरलता को छोड़ कर विकृत मार्ग अपना लेगा। अतः अध्यापक को कभी इस प्रकार का व्यवहार छात्र के साथ न करना चाहिए।

(५) यदि कभी कोई बालक अनुशासन भंग करे तो अध्यापक की थोड़ी सी अप्रसन्नता का प्रदर्शन बालक को सही मार्ग पर ला सकता है, क्योंकि बालक अध्यापक को खुश रखने मे तत्पर रहते है। अत. अनुशासन भंग करने वाला बालक शीघ्र अपने आपको सुधार सकता है।

(६) अध्यापक को प्रत्येक छात्र के प्रति ऐसा व्यवहार करना चाहिये कि वह छात्र अध्यापक के साथ आत्मीयता का अनुभव कर सके। इस प्रकार की आत्मीयता या गहन सम्पर्क बालकों के जीवन पर महत्त्वपूर्ण प्रभाव डालता है।

(७) छोटे बालकों को प्रोत्साहित करना, उनका उत्साहवर्धन करना, उनको शाबाशी देना आदि बहुत ही शीघ्र असर दिखाते हैं। अत. समय-समय पर बालकों को उत्साहित करते रहना चाहिए।

(८) बालकों को कभी बुरे शब्द नहीं कहने चाहिएं जैसे 'गधा', 'मूर्ख', 'पागल', 'बेवकूफ', 'नीच' आदि। इस प्रकार के अपशब्दों से बालक पर बुरा प्रभाव पड़ता है। वह अपने को ऐसा ही समझना प्रारम्भ कर देता है।

(९) शाला मे सांस्कृतिक कार्यक्रम मनाए जाने चाहिएं तथा उन्हें सभा के समय चुप रहना, ध्यानपूर्वक सुनना, सभा के बीच से न उठना, आयोजनों को मनाने के तरीके आदि सिखाने चाहिएं ताकि बालकों के आगे के जीवन मे भी ये बातें स्थाई रूप से बनी रह सकें।

(१०) बालचर संस्था प्रारम्भ की जानी चाहिये। वन भ्रमण के आयोजन किये जाने चाहिएं। छोटे बालकों की शक्ति के अनुकूल श्रमदान कार्य कराया जाना चाहिए तथा उन्हें किसी न किसी रुचिकर कार्य की ओर प्रवृत्त किया जाना चाहिए जिससे बालक इन कार्यों मे रुचि लेकर अनुशासन मे रहना सीख सकें।

बुनियादी माध्यमिक शाला में अनुशासन—बुनियादी प्राथमिक शालाओं की अपेक्षा बुनियादी माध्यमिक शालाओं मे अनुशासन की समस्या जटिल होने लगती है, क्योंकि इस अवस्था तक बालकों को उचित-अनुचित का ज्ञान होने लगता है। यदि प्राथमिक शाला मे बालक को अनुशासन नहीं सिखाया गया है, तो यह समस्या माध्यमिक शाला मे अधिक विकट बन जाती है। माध्यमिक शाला मे समस्या के जटिल बनने का एक और कारण भी है और वह यह है कि इस अवस्था तक बालक समाज की अच्छाइयों और बुराइयों से भी परिचित होने लगता है। इस प्रकार वह अनुशासनहीन समाज की रीतियों को अपने शाला के जीवन मे अपनाता है। साथ ही बालक की आवश्यकताएं बढ़ने लगती है और घर की परिस्थिति जब उनको पूरा नहीं कर सकती, तब भी उसका प्रभाव छात्र के जीवन पर शाला मे स्पष्ट लक्षित

होता है। इस प्रकार माध्यमिक शालाओं में अनुशासन की समस्या विकट बन
है और उच्च शालाओं और विद्यालयों में तो उत्तरोत्तर और भी विकट हो
जाती है।

बुनियादी माध्यमिक शालाओं मे अनुशासन बनाए रखने के लिए उपरोक्त
बुनियादी प्राथमिक शालाओं के लिए बनाए गए साधनों के साथ निम्नलिखित
भी प्रयोग मे लाए जा सकते हैं :—

(१) छात्रों को अधिकाधिक दस्तकारी सीखने में लगाया जाय।
क्रियात्मक कार्यों मे प्रवृत्त किया जाय।

(२) अध्यापक की पाठन-शैली ही ऐसी होनी चाहिए कि विद्यार्थी
सक्रिय भाग ले सकें।

(३) शाला के दैनिक समय के अलावा भी छात्रों को स्कूलों में अधिक
का प्रयास किया जाय। जैसे शाम को खेल के आयोजन हों, अभिनय, वाद-वि
अन्ताक्षरी, कविता-पाठ आदि सांस्कृतिक आयोजन कराए जाने चाहिएं।
सम्भव हो तो सांस्कृतिक कार्यक्रमों की अन्तर्कक्षा प्रतियोगिता प्रारम्भ कर
चाहिए जिससे बालक इसकी तैयारी मे प्रवृत्त रहें।

(४) यदि कक्षाएँ अथवा छात्र परस्पर झगड़ पड़ें तो अध्यापक को
निपटारा करना चाहिए जिससे बालक अनुशासन मे रहना सीखेंगे।

(५) अनुशासन के पालनार्थ अनुचित आदेश नहीं दिया जाना चाहि
अनुशासन का उचित आधार ही प्रभावोत्पादक होता है।

(६) इस बात का अध्यापक को अवश्य ध्यान रखना चाहिए कि
आज्ञा दी जाय उसका पालन छात्र अवश्य करें।

(७) शाला को सजाने, बगीचा लगाने, सिंचाई करने आदि कार्यों में बाल
को अधिक प्रवृत्त करना चाहिए।

इस प्रकार के प्रयोगों से शाला मे अनुशासन सुविधापूर्वक स्थापित किया
सकता है।

सारांश

अनुशासन से तात्पर्य—शालाओं और विद्यालयों में अनुशासन का
अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। अनुशासन का तात्पर्य है कर्तव्य पालन। शाला के सभी
अर्थात् प्रधानाध्यापक, अध्यापक और छात्र अपने कर्तव्यों, शाला के नियमों
आदेशों ... न करें।

... के प्रति विभिन्न मत—अनुशासन के प्रति कई भिन्न मत हैं—
... का अर्थ डाँट-फटकार के लेते हैं।
... का अर्थ व्यक्तित्व का ऐसा विकास जो जीवन को ...

... अनुशासन में रहना आत्म-अनुशासन है।
अनुशासन व्यवहार में सीखा जाता है।

(५) अनुशासन स्वयं नियन्त्रण का रूप है।

(६) अनुशासन का भार केवल शाला पर है।

अनुशासन के प्रकार—अनुशासन दो प्रकार का होता है—(१) बाह्य ासन, (२) आन्तरिक अनुशासन। बाह्य अनुशासन से तात्पर्य है नियम पालन देश देना, और आन्तरिक अनुशासन से तात्पर्य है बालक स्वयं नियम और पालन करना आवश्यक समझें। अनुशासन के प्रति स्वयं प्रेम हो।

शालाओं में अनुशासनहीनता के कारण—शालाओं में अनुशासनहीनता म्नलिखित कारण हैं :—

(क) अध्यापकों में नेतृत्व का लोप—अध्यापकों में असंतोष, आर्थिक या, सामाजिक सम्मान की समस्या, ट्यूशन की प्रथा, विद्वत्ता का अभाव, शिक्षा णी का अभाव, व्यवसाय में अरुचि, स्वयं का अनुशासनहीन जीवन आदि के कारण पक सही नेतृत्व खो बैठा है, जिससे छात्रों में अनुशासन बिगड़ा हुआ है।

(ख) वर्तमान शिक्षा-पद्धति के दोष—वर्तमान शिक्षा-पद्धति दोषपूर्ण ौर छात्रों में अनुशासन बिगड़ने का कारण है।

(ग) आर्थिक कठिनाइयों का बढ़ना—छात्र अपनी आवश्यकताओं को की आर्थिक स्थिति सुधरी हुई न होने के कारण, पूरी नहीं कर सकते। तब वे साधन प्रयोग में लाते हैं, जिससे अनुशासन बिगड़ता है।

(घ) समाज में आदर्श का अभाव—वर्तमान अनुशासनहीन समाज की भी छात्रों पर पड़ती है, जिससे भी छात्रों में अनुशासन बिगड़ जाता है।

(ङ) माता-पिताओं में शिक्षा का अभाव—अशिक्षित माता-पिता बालक मिक विकास के अनुकूल अपनी सन्तानों का ध्यान नहीं रख सकते। वरन् माता-पिता तो अज्ञानता के कारण छात्र के जीवन को बिगाड़ने में सहायक हैं।

बालकों की आयु तथा अनुशासन—अनुशासन के लिए बालकों की आयु अनुकूलता का ध्यान रखा जाना चाहिए।

बालकों में अनुशासन स्थापित करने के साधन—निम्नलिखित दृष्टि-यों से अनुशासन जमाने के प्रयत्न किये जा सकते हैं :—

(१) अध्यापक की दृष्टि से, (२) पाठशाला की दृष्टि से, (३) बालक की ष्टि से, (४) शिक्षा की दृष्टि से, (५) अन्य साधन।

बुनियादी प्राथमिक शाला में अनुशासन—बालक प्रारम्भ में बुनियादी थमिक शाला में प्रवेश पाता है। ऐसी अवस्था में अनुशासन का प्रारम्भ बड़ा हत्वपूर्ण है। बुनियादी प्राथमिक शाला में अनुशासन जमाने के कई साधन हैं :—
(१) मूल प्रवृत्तियों का तथा संवेगों का अनुशासन स्थापित करने में उचित प्रयोग। (२) बालकों की अनुकरण की प्रवृत्ति को उचित रूप से कार्य में लेने के लिए ध्यापक को अपना जीवन अनुकरणीय बनाना चाहिए। (३) क्रियात्मक कार्य राए जाने चाहिए। (४) बालकों के प्रति सहानुभूति का व्यवहार किया जाना ाहिए। (५) अध्यापक थोड़ी प्रसन्नता दिखाकर बालकों को अनुशासित बना

सकता है। (६) बालकों के प्रति व्यक्तिगत आत्मीयता प्रदर्शित करनी चाहिए। (७) बालकों को प्रोत्साहन देना चाहिए। (८) बुरे शब्द जैसे गधा, नीच, मू आदि नहीं कहने चाहिए। (९) सांस्कृतिक कार्यक्रम को मनाने के तरीके सिख चाहिए। (१०) बालचर संस्था, वन भ्रमण, श्रम दान आदि की ओर प्रवृत्त कि जाना चाहिए।

बुनियादी माध्यमिक शाला में अनुशासन—बुनियादी प्राथमिक शाला के लिए दिये गए साधनों के साथ निम्नलिखित साधन अपनाये जाने चाहिए। (१) अधिक दस्तकारी का प्रयोग, (२) पाठन शैली में छात्र का सक्रिय प्रयोग, (३) खे आदि आयोजन का बाहुमूल्य, (४) अध्यापक की निष्पक्षता, (५) अनुचित का न किया जाना, (६) आज्ञा का अवश्य पालन कराया जाना, (७) शा सजाने, बगीचा लगाने में प्रवृत्त करना आदि।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(१) अनुशासन से क्या तात्पर्य है? अनुशासन के प्रति कौन-कौन से भिन्न-भि प्रचलित हैं?

(२) शालाओं में अनुशासनहीनता के क्या कारण हैं?

(३) अनुशासन कितने प्रकार से स्थापित किया जा सकता है? आप कौन से प्र उत्तम समझते हैं और क्यों?

(४) बुनियादी प्राथमिक शाला में अनुशासन स्थापित करने के लिए आप कौन-कौन से साधन प्रयोग में लायेंगे?

—: o :—

: १६ :

दण्ड

दण्ड का अभिप्राय—हमारी प्राचीन संस्कृति के अनुसार चाणक्य नीति का निम्नलिखित नीति श्लोक प्रचलित है :—

> लालयेत् पंचवर्षाणि दशवर्षाणि ताड़येत् ।
> प्राप्तेषु षोडशे वर्षे, पुत्रं मित्रवदाचरेत् ॥

अर्थात् बालक का प्रथम पाँच वर्षों में लाड़-प्यार से लालन-पालन किया जाना चाहिए। अगले दस वर्षों में बालक को ताड़नाएँ दण्ड आदि दिये जाने चाहिएँ। सोलह वर्ष की आयु से ही पुत्र के साथ मित्रता का व्यवहार किया जाना चाहिए।

इस कथन में कितनी मनोवैज्ञानिकता है ? क्या बालक के क्रमिक विकास की ये ही तीन अवस्थाएँ हैं ? हम इन समस्याओं में न पड़कर दण्ड की नीति पर विचार करेंगे। प्राचीन परिपाटी पाँच वर्ष की आयु से ही बालक को दण्ड देना आरम्भ करती है और दस वर्ष तक बालक को दण्ड का भागी मानती है। डंडे के बल पर अनुशासन स्थापित करना, कान ऐंठ कर शिक्षा देना, तमाचे मारना आदि सब 'ताड़येत्' शब्द की कार्यविधियाँ हैं। यहाँ तक कि यह भी माना जाता था कि बिना गुरु की मार खाए विद्या नहीं आ सकती। पर ये सब परिपाटियाँ अमनोवैज्ञानिक थीं। मनोविज्ञान का विकास न हो पाया था। अतः बालक की जिज्ञासा प्रवृत्ति आदि का दमन डंडे के बल पर किया जाता था, जिसके कारण उसका सम्यक् विकास न हो पाता था।

मनोविज्ञान के विकास के साथ-साथ वर्तमान युग में शिक्षा के उद्देश्य, व पद्धतियाँ सभी बदल गये हैं। यों कहना चाहिए कि शिक्षा के यन्त्र, तन्त्र और मन्त्र सभी बदलते जा रहे हैं। समाज के, शिक्षा के, राजनीति के, धर्म के मूल्य बदल गए। ऐसी अवस्था में दण्ड की वही प्राचीन परिपाटी कैसे निभा सकती है।

वर्तमान समय में बालक ही शिक्षा का केन्द्र है न कि स्कूल। यदि बालक का मन पढ़ने में नहीं लगता, तो कोई न कोई खास कारण है। उस कारण को खोज निकालना अत्यन्त आवश्यक है और उसका समाधान होने पर बालक अवश्य पढ़ने में रुचि लेगा। अब बालक की रुचि को डंडे के बल पर पढ़ाई में लगाने का अवसर न रहा। यदि बालक अनुशासन भंग करता है तो उसको दण्ड देने के पूर्व विचार किया जाना चाहिए कि बालक ने किन परिस्थितियों में अनुशासन भंग किया, उसका उद्देश्य क्या था ? क्या उसने जान-बूझकर अथवा अनजाने में अनुशासन भंग किया है ? इन सब बातों का विश्लेषण करने के बाद यदि बालक अपराधी ठहरे और

सुधार की दृष्टि से उसके प्रति जो कठोरता का व्यवहार किया जाता है उसे ही दण्ड कहा जाता है।

दण्ड के उद्देश्य—अपराधी को दण्ड देना जगत का स्वाभाविक नियम है। आध्यात्मिक दृष्टि से भी यह धारणा प्रचलित है कि भगवान् पापों का दण्ड देता है और नरक में भेजता है। प्रकृति के विरुद्ध भी यदि कोई काम किया जाता है तो तत्काल उसका दण्ड मिलता है। खाट सर्दी में खुले में सोइए निमोनिया हो जाएगा और यों प्रकृति भी दण्ड देती है। आवश्यकता से अधिक खाइये, पेट में गड़बड़ी हो जाएगी। यहाँ तक कि पशु-पक्षी भी दण्ड देने में किंचित मात्र भी नहीं हिचकिचाते। पशु से छेड़-छाड़ कीजिए, तत्काल उससे दण्ड मिल ही जायगा। तात्पर्य यह है कि सम्पूर्ण जगत् में दण्ड का विधान है।

पर इन दण्डों का यदि विश्लेषण किया जाय तो विदित होगा कि इनके भिन्न-भिन्न उद्देश्य हैं। पशु इसलिए दण्ड देता है कि उसे आपसे भय है। अतः वह अपनी आत्मरक्षा के वशीभूत होकर छेड़ने वाले को दण्ड देता है। भगवान् से पापों के दण्ड देने की विचारधारा में अपराधों से बचाव की प्रेरणा निहित है। स्वयं शरीर के प्रति किए गए अपराध में दण्ड का उद्देश्य सजग या सचेत करना है कि शरीर की मशीन को ठीक होने दो। प्रकृति के प्रति किए गए अपराध में सम्पूर्ण मानव-समाज को शिक्षा के रूप में दण्ड प्राप्त होता है। सभी में सजगता आ जाती है।

इसी प्रकार छात्रों को दिए गए दण्ड में भी विभिन्न उद्देश्यों का समावेश होना चाहिए। बालकों को दिए गए दण्ड के निम्नलिखित उद्देश्य होने चाहिएँ :-

(१) दण्ड का प्रथम उद्देश्य यह होना चाहिए कि बालक को अपराध की पुनरावृत्ति के लिए सचेत तथा जागृत कर देना है ताकि वह भविष्य में ऐसे अपराध को न दुहराए।

(२) दण्ड का दूसरा उद्देश्य बालक में सुधार लाना है। यदि वह पुनः एक ही अपराध को दुहराता है तो उसके कारणों की खोज की जानी चाहिए और उन कारणों के निराकरण के साथ ही दण्ड दिया जाना चाहिए।

(३) दण्ड का तीसरा उद्देश्य सम्मान रक्षा होना चाहिए। अर्थात् जिस छात्र के प्रति अपराधी बालक ने अपराध किया है और अपराध का दण्ड यदि न मिले तो जिसके प्रति अपराध किया है वह अपने में हीनता का अनुभव करेगा। अतः अपराधी को दण्ड देकर जिसके प्रति अपराध किया गया है, उसके सम्मान की रक्षा की जानी चाहिए।

(४) दण्ड का चौथा उद्देश्य शाला के सभी छात्रों की अपराधों से रक्षा करना है। एक छात्र को दिए गए दण्ड की प्रणाली और आदर्श ऐसा होना चाहिए कि अन्य बालक उस ओर प्रवृत्त न हों।

(५) दण्ड का पाँचवा उद्देश्य है शाला के स्वाभिमान की रक्षा। शाला के स्वयं के अपने नियम होते हैं। अतः शाला को अपने स्वाभिमान की रक्षा के लिए नियमों का उल्लंघन करने वालों को दण्ड देना अत्यन्त आवश्यक है अन्यथा शाला के नियमों का कोई मूल्य नहीं रह जाता।

(६) छठा उद्देश्य है बालक में पश्चात्ताप के भाव उत्पन्न करना। बालक
ये गए अपराधों के लिए पश्चात्ताप करना सीखे।

दण्ड के विभिन्न प्रकार—इस प्रकार यद्यपि बालकों को दण्ड देने के निश्चित
श्य हैं, तथापि वर्तमान समय में दण्ड देने की जो प्रणालियाँ प्रचलित हैं उनमें
ोरता, अमनोवैज्ञानिकता, क्रोध और उद्देश्यहीनता विद्यमान है। वर्तमान समय
शालाओं में निम्नलिखित दण्ड की प्रणालियाँ प्रचलित हैं —

(१) शारीरिक दण्ड—प्रायः अध्यापक छात्र के छोटे-मोटे सभी अपराधों के
इसे रामबाण औषधि मानते हैं। अध्यापक क्रोध के वशीभूत होकर बेंत, डंडे
ाकर अथवा तमाचे मारकर, कान ऐंठकर, बालक को दण्ड देता है, परन्तु यह
ाली अत्यन्त दोषपूर्ण है।

(क) सर्वप्रथम दोष इसमें यह है कि शारीरिक दण्ड मनोवैज्ञानिक नहीं और
ही नियमानुकूल है। इसमें सुधारवादी दृष्टिकोण नहीं है, वरन् बालकों का
ावश्यक दमन करने की नीति है।

(ख) शारीरिक दण्ड अमानुषिक है। एक मानव दूसरे मानव को शारीरिक
ट दे यह न्यायसंगत प्रतीत नहीं होता। जिन छात्रों को शारीरिक दण्ड अधिक
या जाता है, वे अपने भावी जीवन में अत्यन्त कठोर और निर्दयी बन जाते हैं और
े बड़े अपराध कर बैठते हैं।

(ग) इसके द्वारा बालक में अध्यापक, शाला तथा समाज के प्रति विरोध की
वना प्रबल होती जाती है। और वह अधिकाधिक उद्दण्ड हो जाता है। प्रेम तथा
ानुभूति के स्थान पर ईर्ष्या, द्वेष, घृणा आदि उत्पन्न हो जाते हैं।

(घ) बालक में भय की वृद्धि होती है। इसके कारण बालक डरपोक, भयभीत
ने वाला, निरुत्साही और अकर्मण्य बन जाता है। वीरता के भाव उनमें जाग्रत
ीं हो पाते।

(ङ) शारीरिक दण्ड देने वाले अध्यापकों का छात्रों एवं समाज में कोई मान
ो होता। यहाँ तक कि कई बार तो छात्र इतनी हिम्मत कर लेते हैं कि अध्यापक
वापस पीटने लगते हैं। इस प्रकार अध्यापक और छात्रों में आपसी सम्बन्ध बिगड़
े हैं।

शारीरिक दण्ड की सार्थकता—इस प्रकार यह स्पष्ट है कि शाला में छात्रों
शारीरिक दण्ड न दिया जाना चाहिए। इस प्रकार के दण्ड से छात्र सुधरने के
ान पर बिगड़ता है। तथापि कभी-कभी इसकी आवश्यकता प्रतीत होती है। यदि
लक अत्यन्त उद्दण्ड है तथा उसके अपराधों के परिष्कार के लिए अन्य सभी साधन
विफल हो गए हैं और बालक पुनः अपराधों के करने में जान-बूझ कर प्रवृत्त होता
है तो इसका प्रयोग किया जा सकता है। पर इसमें निम्नलिखित बातों का ध्यान
रखा जाना आवश्यक है :—

(क) इस दण्ड के प्रयोग के पहले छात्र को सचेत किया जाना आवश्यक है।
साथ ही छात्र के माता-पिता तथा संरक्षक को सूचित किया जाना चाहिए कि छात्र

को अमुक अपराधों के करने के कारण तथा कई बार सचेत कर देने पर भी न मानने के कारण शारीरिक दण्ड दिया गया।

(ख) शारीरिक दण्ड शारीरिक हानि पहुँचाने वाला न होना चाहिए। तात्पर्य यह है कि शारीरिक दण्ड हाथ-पाँव न तोड़ दे, अथवा कान से बहरा न कर दे। मुँह से या नाक में खून न आने लगे। अर्थात् मुँह अथवा कानों पर बेंत लगाना, कानों को मरोड़ना, थप्पड़ लगाना सर्वथा अनुचित है।

(ग) शारीरिक दण्ड देने का अधिकार केवल प्रधानाध्यापक को ही होना चाहिए। प्रत्येक अध्यापक शारीरिक दण्ड न दे। कई प्रदेशों में शिक्षा विभाग का यह नियम है कि केवल प्रधानाध्यापक को ही शारीरिक दण्ड देने का अधिकार है।

(घ) प्रधानाध्यापक को भी चाहिए कि बालक के बहुत बड़े नैतिक अपराध पर ही शारीरिक दण्ड दे। उस समय प्रधानाध्यापक की मुद्रा शांत एवं गम्भीर होनी चाहिए। साथ ही शारीरिक दण्ड देना प्रधानाध्यापक की आदत न बन जानी चाहिए।

पंचायत या सरकार को आर्थिक दण्ड चुकाने ही पड़ते हैं। अतः बालक पर शाला में आर्थिक दण्ड दिया जाकर ही उसको भावी जीवन का क्रियात्मक पाठ छात्र जीवन में ही पढ़ाना चाहिए। परन्तु उनकी यह दलील युक्ति-संगत नहीं। हम यह पहले से ही आशा क्यों करें कि बालक अपने भावी नागरिक जीवन में अपराध करेगा ही।

इस प्रकार आर्थिक दण्ड उपयुक्त नहीं है, क्योंकि यह दण्ड के विभिन्न उद्देश्यों की पूर्ति नहीं करता। अतः आर्थिक दण्ड नहीं दिया जाना चाहिए। दण्ड की यह पद्धति बुनियादी-शिक्षा के उद्देश्यों से भी मेल नहीं खाती। फिर भी किन्हीं कारणों से यदि आर्थिक दण्ड देना आवश्यक ही हो तो इस प्रकार का दिया जाना चाहिये कि बालक स्वयं कमाकर दण्ड चुकाये। शाला ही उनको कमाने योग्य काम बताए।

(३) अधिक गृह-कार्य देना—घर से काम न कर लाने के कारण अध्यापक द्वारा बालक को उस काम के साथ ही साथ दण्ड स्वरूप कुछ और काम घर से कर लाने को दिया जाता है। कई बार एक ही त्रुटि को छात्र से कई बार यहाँ तक कि एक हजार बार तक लिखाया जाता है।

इस प्रकार के दण्ड का जहाँ तक उद्देश्य बालक की भूल सुधार है, वहाँ तक तो ठीक है, पर इस प्रकार के अधिक गृह-कार्य से लाभ तभी तक है जब तक कि बालक उस कार्य को भार स्वरूप न समझे। यदि बालक उसे बेगार स्वरूप समझने लगता है तो उसमें अनैतिकता की उत्पत्ति हो जाती है। अधिक भार के कारण वह दुःखी रहने लगता है तथा काम के प्रति उसकी रुचि नहीं रहती। अतः अधिक गृह-कार्य सोच समझकर दिया जाना चाहिये। साथ ही दण्ड स्वरूप दिया गया कार्य भी ऐसा होना चाहिये जिसमें बालक साधारणतया रुचि लेता हो अन्यथा वह अतिरिक्त गृह-कार्य को भी नहीं करेगा। बुनियादी-शाला में दण्ड स्वरूप दिये गये अतिरिक्त गृह-कार्य इस प्रकार के होने चाहिएं जिनसे बालक की कार्यक्षमता के साथ-साथ ज्ञान भी बढ़े।

(४) शाला के दैनिक समय की समाप्ति के पश्चात् छात्र को रोकना—किए गए अपराध का दण्ड छात्रों को छुट्टी के बाद रोकना भी है। ऐसे कई छोटे-मोटे अपराध हो सकते हैं। जैसे—बालक का कक्षा से भाग जाना, शाला में देर से आना, घर से काम न कर लाना आदि। छुट्टी हो जाने पर भी बालक घर जाने को बड़े उत्सुक होते हैं। यदि किसी बालक को ऐसे समय पर रोका जाता है, तो वह वास्तव में दण्ड का अनुभव करता है और भविष्य में अपराध से बचने का प्रयत्न करता है।

अपराधी बालकों को इस प्रकार रोक कर उन्हें खाली बिठाए रखना प्रभावोत्पादक नहीं और न ही नैतिक है। बालक को रोक कर उनसे काम लिया जाना चाहिये। यदि वह घर से काम न कर लाने के कारण रोका गया है तो उससे छुट्टी के बाद रोक कर काम कराया जाना चाहिए।

बुनियादी-शालाओं में आस-पास के गावों के बालक यदि पढ़ने आते हों तो उन बालकों को छुट्टी के बाद रोकने का दण्ड नहीं दिया जाना चाहिए। अगर उन्हें कभी रोका भी जाए तो उनके रोकने की सूचना माता-पिता को भेजी जानी चाहिए। अन्यथा बालक कभी-कभी मार्ग में खेलने लग सकते हैं और पूछे जाने पर यह भी बता

सकते हैं कि स्कूल में रोक लिए गए थे। अतः जब-जब बालक को रोका जाए, उसकी सूचना घर भेजनी चाहिए। साथ ही बालक को रोक कर उससे काम कराने के लिए अध्यापक को भी रुकना चाहिये। यदि बालक को रोक कर आवश्यक आदेश देकर अध्यापक महाशय घर चले जाएं तो बालक में जी चुराने की आदत पैदा हो जाएगी। सुधार के स्थान पर बिगाड़ की ही सम्भावना है।

(६) तिरस्कार—अपराध के लिए छात्र को धिक्कारना, तिरस्कार करना, डांटना-डपटना आदि भी अध्यापकों द्वारा दण्ड स्वरूप प्रयोग में लाया जाता है। साधारण अपराधों के लिये अथवा छात्र के आरम्भिक अपराधों के लिए दण्ड का यह रूप प्रयोग में लाया जा सकता है। यह पद्धति विशेषकर उन छात्रों के लिए अधिक लाभकारी सिद्ध हो सकती है, जो साधारणतया अच्छे छात्र हैं पर कारण विशेष से लापरवाही कर बैठे है। ऐसे छात्रों को डांटने, डपटने, फटकारने, धिक्कारने से कक्षा के अन्य छात्रों के सामने लज्जित होना पड़ता है। समझदार छात्रों के लिये यह दण्ड पर्याप्त होता है।

परन्तु वस्तुतः यह प्रणाली भी अमनोवैज्ञानिक है। छात्र का अन्य बालकों के सामने अपमान करना उसके स्वाभिमान को चुनौती देना है। अच्छे बालकों में भी यह प्रणाली कभी-कभी हीनता का भाव पैदा कर देती है। अध्यापक भी धिक्कारते समय अपशब्दों का प्रयोग करने लग जाते हैं। कई अध्यापक तो बालक की [illegible] सम्बन्धी विवेचना करते हुए फटकारने लग जाते हैं जैसे काने बालक को कहते [illegible] आंख तो पहले ही फूट रही है दूसरी फोड़ दूंगा या भगवान ने पहले ही [illegible] बनाया है फिर भी अपराधों से बाज नहीं आता आदि। इस प्रकार के [illegible] अनुचित हैं।

(६) कक्षा में खड़े रखना अथवा बाहर निकालना—साधारण अपराधों के लिए छात्र को कक्षा में खड़ा रखा जाता है अथवा कक्षा से बाहर निकाल दिया जाता है। कक्षा में खड़ा रखने के रूप में दिया गया दण्ड कक्षा से बाहर निकालने की अपेक्षा उत्तम है। कक्षा में खड़ा करने के लिए बालक की शारीरिक क्षमता का ध्यान रखा जाना आवश्यक है। बालक को उतनी ही देर खड़ा रखा जाना चाहिए जितनी देर में वह कष्ट प्रतीत करने लगे। छोटे बालक तथा दुर्बल बालक [illegible] बड़े बालक और स्वस्थ बालक अधिक देर तक खड़े रह सकते हैं। अतः सभी बालकों को बराबर समय तक खड़ा नहीं रखा जाना चाहिए। खड़ा रहने वाला [illegible] पीछे बैठने वाले छात्रों के लिए आड़ न बन जाना चाहिए। अतः बालक को [illegible] छात्रों की अन्तिम पंक्ति के पीछे खड़ा करना चाहिये।

कक्षा से बाहर निकाल देना अनुचित है। एक तो इससे छात्रों की पढ़ाई की हानि होती है। दूसरे छात्र कक्षा से बाहर निकल कर अन्य कक्षाओं की [illegible] [illegible] सिनेमा अथवा किसी प्रकार की कोई अन्य उद्दण्डता कर बैठेगा। क्योंकि [illegible] दिमाग शैतान का घर बन जाता है या उसे आत्मग्लानि होगी। अतः कक्षा से बाहर निकालने का दण्ड देना अनुपयुक्त है।

(७) नैतिक दण्ड—नैतिक दण्ड देने का अर्थ है मानसिक पश्चात्ताप [illegible]

तिक दण्ड का प्रभाव तभी पड़ता है जबकि शाला का नैतिक वातावरण हो और ण्ड का दृष्टिकोण भी नैतिक हो। बुनियादी-शालाओं का वातावरण एवं दृष्टिकोण तिकता लिए हुए होता है। अतः इस प्रकार की दण्ड की पद्धति बुनियादी-शालाओं अनुकूल होती है। नैतिक दण्ड कई प्रकार से दिये जा सकते हैं।

(क) क्षमा मांगना—अपराधी बालक द्वारा अपराध स्वीकार करा कर उसे ामा प्रार्थी बनवाना नैतिक धर्म की प्रथम पद्धति है। इसमें बालक किए गए अपराध ो स्वीकार करता है, पश्चात्ताप प्रकट करता है, क्षमा याचना करता है और भविष्य कभी न करने के लिए आश्वासन दिलाता है। इस प्रकार की क्षमा-याचना के दो प होते हैं—प्रथम मौखिक, द्वितीय लिखित। अपराध के अनुकूल क्षमा-याचना राई जानी चाहिए। अर्थात् केवल अध्यापक या प्रधानाध्यापक के सामने, कक्षा छात्रों के तथा सम्पूर्ण शाला के छात्रों के सामने क्षमा-याचना कराई जा सकती । अपराध की गुरुता के अनुसार ही विस्तृत क्षेत्र के सामने क्षमा-याचना कराई ानी चाहिए। यह पद्धति अधिक सफल हुई है।

(ख) प्रगति-पत्र में अपराधों का उल्लेख—प्रत्येक मासिक परीक्षा या तिमाही रीक्षा के प्रगति-पत्र में छात्र के द्वारा किये गए अपराधों का उल्लेख किया जाता । इस प्रकार जब प्रगति-पत्र छात्र के पालकों के पास जाता है तो उनको अपने त्र के अपराधों का पता लग जाता है जिसे बालक पसन्द नहीं करता है और इस कार वह सावधान हो जाता है। यद्यपि यह पद्धति सफल अवश्य है तथापि छात्र के ावी-जीवन पर प्रभाव अवश्य डालती है। छात्र अपने इन प्रगति-पत्रों को भावी-ीवन में आवश्यकता पड़ने पर छिपाने की चेष्टा करते हैं, जिससे दूसरे प्रकार की ुराइयाँ पनपने लगती हैं।

(ग) कक्षा में छात्र का स्थान-परिवर्तन—कई बार अपराध का दण्ड देने के लस्वरूप बालक का बैठने का स्थान बदल दिया जाता है। आगे बैठने वाले छात्र ो कक्षा की अन्तिम पंक्ति में बिठा दिया जाता है। यद्यपि यह पद्धति भी बालक में ीनता की भावना ही पैदा करती है तथापि कभी-कभी बड़ी सफल सिद्ध हुई है।

(घ) आमोद-प्रमोद से वंचित करना—अनुचित व्यवहार के लिए कक्षा के नोरंजन के कार्यों से छात्र को वंचित कर देने की दण्ड की पद्धति विद्यमान है। ायः खेलों में अपराधी छात्रों को सम्मिलित नहीं किया जाता है। पर इस प्रकार ी पद्धति कभी-कभी प्रयोग में लाई जानी चाहिए। इसकी बार बार आवृत्ति छात्र ें विद्रोह, वैमनस्य, भ्रान्ति और उद्दण्डता के भाव उत्पन्न कर देती है।

(ङ) छात्र-सुलभ सुविधाओं से वंचित करना—अपराधी छात्रों को अन्य सभी छात्रों को प्राप्त सुविधाओं से वंचित रखना भी दण्ड की पद्धति है। शाला अथवा छात्रालय में इस प्रकार की सुविधाओं से अपराधी बालक को कुछ दिन के लिए वंचित कर बालक को सुधारा जा सकता है।

(च) शाला से निष्कासन—अपराधों की बार-बार आवृत्ति पर, भयंकर अपराध पर अथवा अन्य सब प्रकार के दण्डों के विफल रहने पर, शाला से निष्कासन

का दण्ड दिया जा सकता है। इस दण्ड से बढ़कर छात्र के लिए अन्य कोई दण्ड है, यह दण्ड तीन प्रकार से दिया जा सकता है:—

(क) विद्यार्थी को कुछ समय के लिए शाला से निकाल देना। छात्र नाम उपस्थिति-पत्रक से काट दिया जाता है और अवधि समाप्त होने पर छात्र पुनः फीस वसूल कर नए छात्र की भाँति भरती कर लिया जाता है।

(ख) निष्कासन का दूसरा रूप यह है कि छात्र एक शाला से निकाला ग[या] पर भी दूसरी शाला में जाकर शिक्षा प्राप्त कर सकता है।

(ग) निष्कासन का तीसरा रूप यह है कि निष्कासित विद्यार्थी किसी [भी] शाला में जाकर प्रवेश प्राप्त नहीं कर सकता है।

इस प्रकार निष्कासन के साधारणतया तीन रूप देखे जाते हैं। उद्देश्य बालक को सुधारना है। अतः जो दण्ड बालक सुधारने की क्षमता न[हीं] वे दण्ड उपयोग में नहीं लाए जाने चाहिएँ। निष्कासन के दण्ड बा[लक] शिक्षा को वहीं रोक देते हैं, अतः इस प्रकार का दण्ड नहीं दिया जाना [चाहिए।] बुनियादी-शाला में इस प्रकार के दण्ड का प्रयोग करने का निषेध करते हुए [म.] गांधी ने कहा था कि बुनियादी शाला में प्रथम तो ऐसा अवसर ही नहीं आए[गा कि] छात्र को निष्कासन की आवश्यकता प्रतीत हो। और सत्य तो यह है कि छा[त्र को] निष्कासन का दण्ड देकर अध्यापक अपने में सुधार कर सकने की क्षमता का [अभाव] प्रदर्शित करना है। अतः शालाओं में निष्कासन का दण्ड नहीं दिया जाना चाहि[ए।]

सम्भावित अपराध और उनका दण्ड विधान—

(१) शाला के समय की पाबन्दी का उल्लंघन—कई छात्र शाला के स[मय] की पूर्ण पाबन्दी नहीं निभाते। इसके अन्तर्गत घर से शाला में देर से आना, कक्षा में समय पर प्रवेश न करना, खेल की घंटी के समाप्त होते ही तत्काल कक्षा में प्रवे[श न] करना आदि का समावेश किया जा सकता है। शाला में समय की पाबन्दी न निभाने के लिए अध्यापक को कारण खोज निकालने चाहिएँ। इसके कई कारण [हो] सकते हैं, जैसे माता-पिता या संरक्षक की ओर से अव्यवस्था, मार्ग में खेल तमा[शे] आदि मनोरंजन का प्रलोभन, कार्य का आधिक्य, छात्र का स्वयं का स्वभाव [बन] जाना, सुस्ती आदि। अतः बालक को दण्ड देने के पूर्व उसके समय के उल्लंघन [के] कारण का पता लगाना चाहिए। यदि शाला में देर से आने का कारण घर की अव्यवस्था है अर्थात् समय पर भोजन का न मिलना आदि ही इसके प्रमुख कारण [हैं] अथवा मार्ग के किसी मनोरंजन के प्रलोभन से बालक समय पर शाला में उपस्थित नहीं होता है तो इसके लिए अध्यापक को चाहिए कि वह छात्र के माता-पिता को इसके लिए सूचित करे कि वे छात्र की उचित व्यवस्था करें। यदि शाला द्वारा दिए गए गृह-कार्य के आधिक्य के कारण ऐसा होता है तो बालक को गृह-कार्य कम दि[या जाए]। यदि बालक की आदत ही ऐसी रह गई है तो बुरी आदतों के हटा[ने के] उपायों द्वारा समय की पाबन्दी न अपनाने की बुरी आदत को [छुड़ाना चाहिए]। देर से छात्र स्वयं की सुस्ती के कारण ऐसा करता है तो दण्ड [दिया] जानी चाहिए। देर से आने वाले बालक को शाला की छुट्टी के

पश्चात् रोक कर काम लिया जा सकता है। ऐसा करने से भी उसकी आदत में सुधार हो सकता है।

(२) गृह-कार्य सम्बन्धी—गृह-कार्य सम्बन्धी कई अपराध हो सकते हैं जैसे कक्षा में दिए गए गृह-कार्य को न करके लाना, दूसरे छात्रों की कापी से नकल कर लाना, अधूरा करना, अत्यधिक त्रुटियाँ करना, लेखन का अत्यधिक दोषपूर्ण होना आदि।

यदि बालक गृह-कार्य न कर लाए तो उसके कारण को खोज निकालना चाहिए। यदि घर की किसी असुविधा के कारण गृह-कार्य नहीं किया गया है तो बालकों को दण्ड न देकर उनके माता-पिता को इसकी सूचना देनी चाहिए। पर यदि बालक ने स्वयं की लापरवाही से नहीं किया है तो पाठशाला की छुट्टी के बाद उसे रोक कर काम पूरा कराना चाहिए या रुचि के अनुकूल दण्ड स्वरूप अतिरिक्त गृह-कार्य दिया जाना चाहिए।

इसी प्रकार यदि बालक दूसरे छात्र की नकल कर लाया है तो पता लगाना चाहिए कि बालक पाठ को ठीक समझ सका है या नहीं, या उसकी स्वयं की लापरवाही ही इसका कारण है। यदि बालक पढ़ाये जाने को ठीक न समझ पाया हो तो ठीक समझाना चाहिए और यदि लापरवाही से ही ऐसा किया है तो इसके बुरे परिणामों को ठीक-ठीक ढंग से उसे समझाना चाहिए। साथ ही जिस छात्र ने नकल करने के लिए अपनी कापी दी है, उसे भी सचेत किया जाना चाहिए। नकल करना बहुत बुरा अवगुण है। इसे तत्काल रोका जाना चाहिए।

(३) कक्षा में पढ़ने में रुचि न लेना अथवा भाग जाना—कई छात्र कक्षा से भाग जाते हैं और यदि कक्षा में बैठे रहते हैं तो भी पढ़ने में रुचि नहीं लेते। इसके लिए यह आवश्यक है कि अध्यापक अपनी पाठन-विधि को सुधारे और उसे रोचक बनाए। साथ ही कक्षा का कार्यक्रम भी रोचक होना चाहिए, जिसमें बालक सीखने में रुचि ले और साथ ही थकावट भी महसूस न करे। सभी बातें ठीक होने पर भी यदि बालक पढ़ने में रुचि नहीं लेता और भाग जाता है तो उसे अन्य छात्रों को सुलभ सुविधाओं से वंचित किया जाना चाहिए। पर इसमें सीमितता का ध्यान रखना चाहिए। अन्यथा उसको अत्यन्त वंचित रखना बालक के दोषों को और भी बढ़ा देगा।

(४) मिथ्या भाषण तथा छल करना—झूठ बोलना बहुत बड़ा अपराध है। छात्र, कई कारणों से झूठ बोलने लग जाते हैं। जैसे भय से रक्षा, लालच या स्वार्थ-पूर्ति, माता-पिता या कुटुम्बी-जनों की आदत का अनुसरण, सहपाठियों की आदत का प्रभाव, छल या धोखा देने हेतु आदि।

इस अपराध का दण्ड देना उतना सरल नहीं है जितना कि समझा जाता है। बालक स्वभाव से सरल और सत्यभाषी होता है, पर किन्हीं विशेष परिस्थितियों में पड़ कर वह झूठ बोलता है। अतः उन परिस्थितियों और कारणों को खोज निकालना चाहिए और उनको दूर करने के उपाय करने चाहिएँ। साथ ही अध्यापक को स्वयं भी सत्यभाषी होना चाहिए और अपनी सत्यप्रियता से छात्रों को प्रभावित

करना चाहिए। अध्यापक को छात्रों में पूर्ण विश्वास रखना चाहिए और पूर्ण विश्वास का प्रदर्शन छात्रों के सम्मुख करना चाहिए ताकि वे अविश्वास करने का साहस न कर सकें। बालक की सत्यवादिता को बढ़ावा देना चाहिए उसे उत्साहित करना चाहिए।

(५) परीक्षाओं में नकल करना—परीक्षा के समय बालक प्रायः नकल करते हुए पकड़े जाते हैं। एक छात्र की कापी से दूसरा नकल करता पाया जाता है या घर से सम्भावित प्रश्न का उत्तर अलग कागज पर लिख कर लाता है और नकल करता है।

वस्तुतः तो परीक्षा प्रणाली ही दोषपूर्ण है तथापि बालक में परीक्षा में नकल करने का स्वभाव होना और भी खराब है। यदि कोई बालक नकल करते पकड़ा जाय तो प्रथम बार में तो उसे सचेत कर छोड़ देना चाहिए, पर उस पर पूर्ण निगाह रखनी चाहिए कि वह पुनः नकल तो नहीं करता है। यदि पुनः नकल करता हुआ पकड़ा जाए तो उसे नैतिक दण्ड दिया जाना चाहिए।

(६) दुर्व्यवहार—दुर्व्यवहार-सम्बन्धी कई दोष बालकों में पाये जाते हैं, परस्पर असभ्यता का व्यवहार, अपशब्द कहना, निर्बल छात्रों को छेड़ना, तंग करना, छीना-झपटी करना, चुगली खाना, निन्दा करना आदि।

इस प्रकार के दुर्व्यवहार के कारण बालक की अज्ञानता, कुसंगति, दूषित वातावरण, स्वभाव, वस्तुओं का अभाव आदि हो सकता है। व्यवहार के इन दुर्गुणों का सर्वोत्तम उपाय है—अध्यापक का छात्र के साथ निजी सम्पर्क। अध्यापक बालक के निकट रहकर अपने व्यक्तित्व की छाप उस पर डाले तो वह वास्तव में सुधर सकता है। यदि बालक गालियाँ निकालता है तो तत्काल रोकना चाहिए और उसे गालियों द्वारा की जाने वाली हिंसा का ज्ञान कराना चाहिए। यदि बालक निर्बल छात्रों को छेड़ता है तो बालक को समझाना चाहिए कि किसी की आत्मा को दुःख पहुँचाने का अर्थ परमात्मा को अप्रसन्न करना है। यदि बालक जिद्दी है तो शनैः शनैः उसकी जिद के मनोवैज्ञानिक कारणों को जानकर उन्हें दूर करने का प्रयत्न करना चाहिए। यदि बालक अपना काम निकालने के लिए अन्य छात्र की वस्तु को बिना माँगे जबरदस्ती छीन लेता है तो उस वस्तु को वापिस दिलाना चाहिए और सभ्यतापूर्वक माँगने का विनम्र-भाव उसमें उत्पन्न करना चाहिए। अपने किए गए अपराध के लिए उस छात्र से क्षमा-याचना कराई जानी चाहिए। यदि बालक में चुगली खाने या निन्दा करने की आदत है तो उसे ऐसे व्यवहार पर तत्काल रोक देना चाहिए।

(७) पठन-सामग्री को घर पर भूल आना—कक्षा में जिस घंटे की वस्तु छात्र घर भूल आया हो तो घर नजदीक होने पर उसे भेजकर तत्काल मंगवाई जानी चाहिए। घर के दूर होने की अवस्था में बालक को कक्षा में खड़े रहने का दण्ड दिया जा सकता है। अथवा कक्षा में उससे दूसरा काम कराया जा सकता है। और कक्षा का उस समय का काम उससे घर कर लाने को कहा जा सकता है।

(८) उद्योग कक्षा में आज्ञा का उल्लंघन—कई छात्र उद्योग कक्षा में ...

उल्लंघन करते हैं अथवा काम बिगाड़ देते हैं। ऐसी अवस्था में बालक को एकान्त में बुलाकर समझा देना चाहिए। उद्योग कक्षा में उससे दुगुना कार्य कराया जाना चाहिए। अथवा रुचि के अनुकूल अतिरिक्त गृह-कार्य दिया जाना चाहिए।

(९) चोरी करना—कई छात्र शाला में चोरी करना प्रारंभ कर देते हैं। शाला की वस्तुएँ चुराते हैं अथवा अपने सहपाठियों की पुस्तकें चुराते हैं। चोरी की आदत पड़ने के कारण ये हो सकते हैं जैसे कुटुम्बीजनों में आदत का होना, बालक के घर की आर्थिक स्थिति का खराब होना, कुसंगति, खाने-पीने की इच्छा की पूर्ति न होना, अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति न होना, शाला के आर्थिक दण्ड की अदायगी करने के लिए चोरी करना आदि।

चोरी करने वाले बालक की सभी स्थितियों का पूर्ण अध्ययन करना चाहिए और उन कारणों को खोज निकालना चाहिए जिनके द्वारा प्रेरित होकर छात्र ने चोरी की है और तब उन्हें दूर करना चाहिए। चोरी कभी निष्प्रयोजन नहीं होती। अतः चोरी का प्रायोजन ढूंढ निकालना अत्यन्त आवश्यक है, और तभी बालक में उचित सुधार किया जा सकता है। बालक को सचेत करने पर भी यदि अपराध की पुनरावृत्ति हो तो उसे नैतिक दण्ड दिया जा सकता है और तब भी न मानने पर उसे शारीरिक दण्ड भी दिया जा सकता है।

(१०) अन्य—अन्य कई छोटे-छोटे अपराध हो सकते हैं जैसे उतावलापन, झगड़ने की प्रवृत्ति, आलस्य आदि। इनका कारण छात्र की स्वाभाविक चचलता और संयमहीनता है। अतः छात्र में आत्म-शक्ति एवं आत्म-नियंत्रण उत्पन्न करना चाहिए। बालक में गाम्भीर्य उत्पन्न किया जाना चाहिए। आलसी बालक के आलस्य का कारण ढूंढना चाहिए। उसके आलस्य का कारण यदि उसकी अस्वस्थता है तो उसे काम कम दिया जा सकता है। रुचिकर एवं क्रियात्मक तथा उपयोगी काम कराने पर आलस्य दूर हो सकता है।

बुनियादी शालाओं में दण्ड विधान—बुनियादी शालाओं की कार्य प्रणाली रुचिकर होती है। अतः उसमें अपराधों के किये जाने की स्थिति भी बहुत कम उत्पन्न होती है। बालकों के अपराधों की बहुलता वहीं देखी जाती है जहाँ या तो शाला के नियमों के पालन में ढिलाई हो, या अध्यापक की पाठन-विधि रुचिकर न हो, अथवा कक्षा का कार्यक्रम क्रियात्मक एवं जीवनोपयोगी न हो साथ ही मनोरंजक भी न हो। बुनियादी-शाला की शिक्षा-पद्धति में ये दोष विद्यमान नहीं हैं। अतः बालक पढ़ने में रुचि लेते हैं और इस कारण अपराधों की संख्या न्यून होती है।

तथापि बुनियादि-शाला में भी यदि बालक स्वाभाविक चचलता के कारण अपराध कर बैठे तो उसका दण्ड उससे रुचि-अनुकूल कार्य को अधिकाधिक कराना ही होना चाहिए। साथ ही उनको दिये जाने वाले दण्ड का नैतिक आधार होना चाहिए जो किए गए अपराध के प्रति पश्चाताप की भावना उत्पन्न कर सके। शारीरिक और आर्थिक दण्ड बुनियादी-शिक्षा-पद्धति के सर्वथा प्रतिकूल है। अतः ऐसे दण्डों को कदापि बुनियादी-शाला में स्थान न दिया जाना चाहिए। बुनियादी-शिक्षा-पद्धति बालक में स्वाभिमान उत्पन्न करती है। अतः ऐसे दण्ड, जो बालक में हीनता

के भाव पैदा करें, देने से वे बालक के सम्यक् विकास में बाधक होंगे। बुनियादी शाला के अध्यापक को चाहिए कि वह बालक को बहुत सोच समझकर दण्ड

सारांश

दण्ड का अभिप्राय—डण्डे के आधार पर शिक्षा [illegible] की प्रणाली वर्तमान युग के अनुकूल नहीं मानी जाती। बालक के अपराध के कारणों और उसके सुधार की दृष्टि से जो उसके प्रति कठोर व्यवहार किया जाता है—दण्ड कहा जाता है।

दण्ड के उद्देश्य—दण्ड के विभिन्न उद्देश्य होते हैं। जैसे बालक को अपराध की पुनरावृत्ति से सचेत करना, उसमें सुधार लाना, सम्मान रक्षा, अन्य छात्रों को सचेत करना, शाला के स्वाभिमान की रक्षा बालक में पश्चात्ताप उत्पन्न करना आदि।

दण्ड के विभिन्न प्रकार—बालकों को दण्ड [illegible] की कई प्रणालियाँ (१) शारीरिक दण्ड - सर्वथा अनुपयुक्त है। विशेष परिस्थितियों में प्रधानाध्यापक ही इसका प्रयोग करने के अधिकारी हैं। (२) आर्थिक दण्ड—यह प्रणाली दोषपूर्ण है। इसका प्रभाव छात्र पर न पड़कर उसके परिवार पर पड़ता है। बुनियादी शाला में इसके रूप को इस प्रकार सुधारा जा सकता है कि बालक स्वयं कमा कर आर्थिक दण्ड चुकाए। (३) अधिक गृह-कार्य देना—यह प्रणाली उपयोगी हो सकती है, पर अतिरिक्त गृह-कार्य भार न बन जाना चाहिए। बुनियादी-शालाओं के अनुकूल उद्योग कार्य दण्ड स्वरूप करा सकती हैं। (४) शाला के दैनिक कार्य की समाप्ति के पश्चात् छात्र को रोकना—यह पद्धति लाभकारी सिद्ध हो सकती है यदि बालक उसे जेल न समझने लगे और अध्यापक स्वयं ठहर कर उससे काम करवाए। (५) तिरस्कार—डांटना, डपटना, धिक्कारना, तिरस्कार करना भी प्रयोग में लाया जाता है। पर यह पद्धति भी अमनोवैज्ञानिक है। (६) कक्षा में खड़े रखना अथवा बाहर निकालना—कक्षा में खड़े रखना बाहर निकालने की अपेक्षा अधिक उपयुक्त है। (७) नैतिक दण्ड—पाँच प्रकार के होते हैं : (क) क्षमा माँगना; (ख) प्रगति-पत्र में अपराधों का उल्लेख; (ग) कक्षा में छात्र का स्थान-परिवर्तन; (घ) आमोद-प्रमोद से वंचित करना; (ङ) छात्र-सुलभ सुविधाओं से वंचित करना। (८) शाला से निष्कासन—यह पद्धति अध्यापक की असफलता सिद्ध करती है।

सम्भावित अपराध और उनका दण्ड-विधान—सम्भावित अपराध हैं (१) शाला के समय की पाबन्दी का उल्लंघन, (२) गृह-कार्य सम्बन्धी, (३) कक्षा में रुचि न लेना अथवा भाग जाना, (४) मिथ्या भाषण तथा छल कपट, (५) परीक्षा में नकल करना, (६) दुर्व्यवहार, (७) पठन सामग्री [illegible] घर पर भूल आना, (८) उद्योग कक्षा में आज्ञा उल्लंघन, (९) चोरी करना, (१०) अन्य।

बुनियादी शालाओं में दण्ड विधान—प्रथम तो बुनियादी-शालाओं में शिक्षा-पद्धति की उपयोगिता के कारण अपराधों की न्यूनता रहती है। यदि अपराध किए भी जाएँ तो नैतिक दण्ड की प्रणाली अधिक सफल सिद्ध होगी।

अभ्यासार्थ प्रश्न

दण्ड की प्राचीन और अर्वाचीन प्रणाली का अन्तर स्पष्ट करते हुए दण्ड देने के श्य बताइए।

दण्ड कितने प्रकार से दिये जा सकते हैं? आप किस-किस प्रणाली को उत्तम व गी समझते हैं? सप्रमाण पुष्टि कीजिए।

बुनियादी-शालाओं में दण्ड विधान क्या होना चाहिए? आप उसके पालन के र प्रयत्न करेंगे?

निम्नलिखित अपराधों में आप क्या दण्ड देंगे—(१) चोरी करना, (२) उद्योग का उल्लंघन, (३) समय की पाबन्दी का उल्लंघन, (४) परीक्षा में नकल करना।

: १७ :

पारितोषिक

पारितोषिक का तात्पर्य—बालक के अच्छे कार्य-व्यवहार तथा अनुशासन पालन के समय अध्यापक या शाला की ओर से उत्साहवर्धक जो शब्द कहे जाते या कोई वस्तु प्रदान की जाती है या प्रगति-पत्र में प्रशंसा की जाती है उसे पारितोषिक या पुरस्कार कहते हैं। दण्ड बालक को बुरे कार्यों के करने से रोकता है। पारितोषिक लाभदायक कार्यों की ओर प्रवृत्त करता है। बालक के जीवन में, पारितोषिक का बड़ा महत्त्व है। बालक प्रारम्भ ही से प्रशंसा-लोलुप होता है। यदि उसको प्रशंसा अथवा किसी न किसी रूप में पारितोषिक मिलता रहता है तो अच्छे कार्यों की ओर प्रवृत्त रहता है। यही भावना उसे अपने भावी नागरिक जीवन में भी सहायक होती है। समाज में भी पुरस्कार या पारितोषिक प्रदान करने की प्रवृत्ति

ते हैं। यहाँ तक कि दंगल, अखाड़े तथा मारपीट की नौबत भी आती है।

(४) चौथी शंका यह उठाई जाती है कि कई बार निर्णय देने वाले अध्यापक क्षपात कर बैठते हैं। अध्यापक मानवीय दुर्बलताओं का शिकार बनकर पक्षपातपूर्ण र्णय दे देता है, जिसके कारण भी बालकों में मनोविकार उत्पन्न होने लगते हैं।

(५) पाँचवी शंका शिक्षा के क्षेत्र में होड़ की भावना को अनुचित ठहराती । शिक्षा 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का प्रतिपादन करने वाली होनी चाहिए। फिर एक ो पारितोषिक देना और दूसरे को न देना उनमें स्वार्थ की भावना को अंकुरित रती है।

(६) छठी शंका यह है कि पारितोषिक उन्ही छात्रों को दिया जाता है जिनमें वाभाविक अच्छाइयाँ हों। प्रकृति द्वारा जन्मजात गुणों के कारण अथवा सौभाग्य-वश अच्छे वातावरण में पलने के कारण यदि एक बालक पारितोषिक प्राप्त करने योग्य हो जाता है तो दूसरे बालक का इसमें स्वयं का क्या दोष है? यदि प्रकृति से उसे । वैसे ही गुण प्राप्त होते अथवा अच्छे वातावरण में रहने को मिलता तो वह ालक भी पारितोषिक प्राप्त करने की योग्यता प्राप्त कर सकता था। अतः बालकों यह विचार मानसिक ग्रन्थियाँ उत्पन्न करता है।

शंकाओं का समाधान—इस प्रकार विद्वत्समाज में पारितोषिक प्रदान करने विचार पर कई शंकाएँ उत्पन्न की जाती हैं। यद्यपि इनमें से कई शंकाएँ उचित ीत होती हैं तथापि पारितोषिक प्रदान करने की आशातीत सफलताएँ भी देखने मिलती हैं। पारितोषिक बालकों को अच्छी उत्तेजना देते हैं, इसमें भिन्न मत नहीं सकते और यही उत्तेजना बालक को अधिकाधिक लगन तथा उत्साह से कार्य में ग्न रखती है। अतः पारितोषिक का प्रदान किया जाना सर्वथा अनुचित तो नहीं तथापि यह अवश्य ध्यान रखा जाना चाहिए कि पारितोषिक परिश्रम के फलस्वरूप दिये जाने चाहिएँ। संख्या में थोड़े होने चाहिएँ और इनके प्राप्त करने के लिए तियोगिता भी कठिन होनी चाहिए और ये आत्म-प्रयत्न को बढ़ावा देने वाले चाहिएँ।

पारितोषिक प्रदान करने की अवस्थाएँ—शाला में पारितोषिक बहुत कम दिए चाहिएँ। साथ ही साधारण कार्यों के लिए पारितोषिक दिया जाना उपयुक्त है। किन्हीं खास गुणों, व्यवहारों, कार्यों और परिश्रम के प्रदर्शन पर ही रितोषिक दिये जाने चाहिएँ। पारितोषिक प्रदान करने का उद्देश्य बालक का रीरिक, मानसिक और नैतिक विकास होना चाहिए। अर्थात् शारीरिक विकास दृष्टि से खेल-कूद, व्यायाम, एन. सी. सी., ए. सी. सी. आदि में सर्वोत्तम छात्र पुरस्कार दिया जाना चाहिए। इसी प्रकार पढ़ाई में परिश्रम करने वाले छात्र भी जो कक्षा में निरन्तर उपस्थित रहता हो और जो परीक्षा में प्रथम आता हो, तोषिक दिया जाना चाहिए। इससे छात्र अध्ययनशील बनेंगे। इनमें से प्रत्येक के लिए अलग-अलग पुरस्कार दिया जा सकता है। इसी प्रकार शाला में सद्-ार, आज्ञाकारिता, अनुशासन-पालन आदि गुण जिस बालक में सबसे अधिक हों, भी पारितोषिक दिया जाना चाहिए। साथ ही श्रमदान, समाज सेवा आदि के

कार्य में श्रेष्ठता प्रदान करने वाले छात्र को भी पारितोषिक दिया जाना चाहिए। इसी प्रकार कई नये विकास प्रसंग के क्षेत्र हैं जिनके लिए छात्र को विशेषता प्रदर्शित करने पर उसे अधिकाधिक प्रोत्साहन देने के लिए पारितोषिक दिये जा सकते हैं।

पारितोषिक के विभिन्न स्वरूप—बालकों को विभिन्न प्रकार के पारितोषिक प्रदान किए जाते हैं। ये पारितोषिक मौखिक भी होते हैं, लिखित भी होते हैं और साथ ही उपयोगी वस्तुओं के रूप में भी। प्रायः शालाओं में पारितोषिक के निम्नलिखित स्वरूप प्रचलित हैं :—

(१) प्रशंसा—यह मौखिक पारितोषिक है। बालक की प्रशंसा केवल उसी बालक के सामने अकेले में की जाती है तो उसका प्रभाव अधिक नहीं होता। प्रशंसा तभी प्रभावोत्पादक होगी जब वह या तो कक्षा के छात्रों के सामने अथवा सम्पूर्ण शाला के छात्रों के सामने की गई हो। प्रशंसा संक्षिप्त और सत्य होनी चाहिए। उसका विस्तार या कृत्रिमता उसके मूल्य को घटा देती है। पढ़ाई में परिश्रम, ईमानदारी, सद्व्यवहार, सुकार्य, समाज-सेवा कार्य, स्काउटिंग, उद्योग पर्व में सर्वश्रेष्ठ कार्य, उद्योग कक्षा में परिश्रम या कार्य आदि में सर्वोच्चता प्राप्त करने वाले छात्र की प्रशंसा की जानी चाहिए। इस प्रकार की प्रशंसा यदि शाला के प्रारम्भ में की जाने वाली सामूहिक प्रार्थना के समय की जाए तो वह अन्य छात्रों पर अनुकरणीय प्रभाव डालेगी।

(२) सम्मान पट्ट—पढ़ाई में परिश्रम कर कक्षा में मासिक या प्रत्येक त्रिमासिक परीक्षाओं में प्रथम आने वाले छात्र का नाम कक्षा में लगाए गए सम्मान-पट्ट पर अंकित करना भी पारितोषिक का एक स्वरूप है। इससे भी छात्र में उत्साहवर्धन होता है।

(३) प्रगति-पत्र में उल्लेख करना—विद्यार्थी के प्रशंसनीय कार्य का उसके प्रगति-पत्र में उल्लेख करना भी पारितोषिक का स्वरूप है। बालक प्रगति पत्र में उल्लिखित प्रशंसा को अपने माता-पिता को दिखलाता है। माता-पिता द्वारा प्रशंसा किये जाने पर छात्र को प्रोत्साहन मिलता है। सुनागरिकता एवं अच्छे व्यवहार व सदाचार आदि के लिये अंक प्रदान करने की प्रणाली को कई विद्वान अच्छा समझते हैं। इस प्रकार प्राप्त अंकों को परीक्षा के अंकों में जोड़कर श्रेणी का निर्णय हो। ऐसा दृष्टिकोण अब बल पकड़ता जा रहा है। सुनागरिकता की दृष्टि से परीक्षा लेने का अभी तक कोई सर्वमान्य तरीका नहीं निकल पाया है। ऐसा हो जाने पर स्थिति में तीव्र गति से सुधार होने की अपेक्षा की जा सकती है।

(४) प्रमाण-पत्र—आजकल पारितोषिक-स्वरूप प्रमाण-पत्र देने का अत्यधिक प्रचलन है। परीक्षा में पास होने का प्रमाण-पत्र दिया जाता है। खेल का प्रमाण-पत्र, स्काउटिंग का प्रमाण-पत्र, एन. सी. सी. का प्रमाण-पत्र, ए. सी. सी. का प्रमाण-पत्र, शारीरिक व्यायाम का प्रमाण-पत्र, चरित्र का प्रमाण-पत्र आदि कई प्रकार के प्रमाण-पत्र दिये जाते हैं। छात्र के लिए प्रमाण-पत्र बड़े उपयोगी प्रतीत होते हैं। उच्च विद्यालय, कालिज आदि में भर्ती आदि के समय भी इन प्रमाण-पत्रों की आवश्यकता होती है। पर सबसे अधिक आवश्यकता तो उनकी तब पड़ती है जब

छात्र कहीं नौकरी प्राप्त करने जाता है। उस समय ये प्रमाण-पत्र नौकरी देने वाले व्यक्ति पर बड़ा प्रभाव डालते हैं। पर यह ध्यान रखा जाना चाहिये कि प्रमाण-पत्र अधिक संख्या में न दिए जाएँ अन्यथा उनका कोई मूल्य नहीं रहता। प्रमाण-पत्रों के देने से बालकों में प्रमाण-पत्र प्राप्त करने की प्रबल इच्छा रहती है और वे अपने क्षेत्र में प्रमाण-पत्र प्राप्त करने की क्षमता का प्रदर्शन करने लगते हैं।

(५) पदक (Medals), कप, शील्ड आदि—पदक प्रायः मेलों और सांस्कृतिक कार्यक्रमों में प्रथम, द्वितीय आदि आने पर दिया जाता है। पदक प्रायः व्यक्तिगत रूप में दिये जाते हैं। कप और शील्ड व्यक्तिगत पारितोषिक और सामूहिक पारितोषिक दोनों के रूप में दिये जाते हैं। पर पदक प्रदान का रिवाज अधिक बढ़ गया है इसलिए पदकों का मान अब इतना अधिक न रहा। पदक बहुत कम दिये जाने चाहिएँ। साथ ही ऐसी विशेषताओं के लिये भी जैसे सबसे अधिक उपस्थिति के लिए, स्वास्थ्य के लिये, सर्वोत्कृष्ट सद्व्यवहार अथवा सदाचार के लिये पदक दिये जाने चाहिएँ। पदक शाला के सामूहिक उत्सव के अवसर पर दिये जाने से वे अधिक प्रभावोत्पादक होंगे।

(६) अन्य वस्तुएँ—यह पारितोषिक भौतिक वस्तुओं के अन्तर्गत आता है। कई बार छात्रों को पारितोषिक में ऐसी वस्तुएँ दी जाती हैं जैसे बनियान, कपड़ा, गिलास, शीशा, तेल, कंघा, रुमाल आदि। पर ऐसी वस्तुएँ छात्र के सामने कोई आदर्श नहीं रखतीं। पारितोषिक में ऐसी वस्तुएँ नहीं दी जानी चाहिएँ। इन वस्तुओं का प्रभाव स्थिर नहीं रहता क्योंकि ये तत्काल खराब होने वाली तथा प्रयोग में आकर समाप्त होने वाली हैं। यदि वस्तुएँ दी ही जाएँ तो ऐसी वस्तुएँ दी जानी चाहिएँ जो उपयोगी हों, जैसे पढ़ाई की वस्तुएँ, पुस्तकें, कापियाँ, पैन, पैन्सिल, होल्डर, दवात, कागज आदि; चित्र-कला की वस्तुएँ जैसे ड्राइंग बोर्ड, पटरी, रंग का बॉक्स, ड्राइंग पिन आदि; खेल की वस्तुएँ जैसे गेंद, बल्ले, रिंग, बच्चों के खिलौने आदि। जो पारितोषिक पढ़ाई में योग्यता प्रदर्शन हेतु दिया जाए उसमें पढ़ाई की वस्तुएँ दी जानी चाहिएँ। खेल के निमित्त पारितोषिक में खेल की वस्तुएँ दी जानी चाहिएँ। बुनियादी शाला में उद्योग-सम्बन्धी वस्तुएँ, तकली, पूनी आदि अथवा कृषि में छात्र द्वारा उत्पन्न वस्तुओं को पारितोषिक रूप में दिया जाना चाहिए। इस प्रकार की उपयोगी वस्तुएँ छात्र की रुचि को उसी क्षेत्र में वृद्धि करती हैं।

(७) अन्य सुविधाएँ—कई बार अच्छे छात्रों को कुछ विशेष प्रकार की सुविधाएँ प्रदान करने पर भी उनको प्रोत्साहन मिलता है। जैसे किसी खिलाड़ी को शाला की फर्स्ट इलेवन (सर्वप्रथम टीम) में सम्मिलित करना, विजयियों को विशेष सुविधाएँ देना, स्काउटिंग में अच्छा-कार्य करने वाले को विशेष सुविधाएँ देना, अधिक पढ़ने वालों को पुस्तकों की सहायता देना आदि कई प्रकार की सुविधाएँ दी जा सकती हैं।

(८) छात्रवृत्तियाँ तथा शाला-फीस से मुक्ति—पढ़ाई में सर्वप्रथम आने वाले छात्रों को छात्रवृत्ति दी जाती है। कहीं-कहीं उन्हें शाला की फीस से भी मुक्त किया जाता है। छात्रवृत्तियाँ गरीब छात्रों को भी दी जाती हैं। अतः छात्रवृत्तियाँ

देने के दो रूप हुए, एक तो योग्यता के आधार पर और दूसरे आर्थिक स्थि
आधार पर। पारितोषिक के रूप में योग्यता के आधार पर दी जाने वाली
वृत्तियाँ ही गिनी जाती हैं। योग्यता के आधार पर दी जाने वाली छात्र
छात्रों को अधिकाधिक अध्ययनशील बनाती है। छात्रों में इसकी प्राप्ति के
प्रतियोगिता सी होती रहती है जिससे छात्रों में अध्ययन के प्रति सजगता और
बनी रहती है।

(६) सामूहिक पारितोषिक—सामूहिक पारितोषिक समूह-प्रतियोगिता
संचालन करता है। किसी कक्षा, दल, टोली समिति आदि को दिया जाने
पुरस्कार सामूहिक पारितोषिक कहलाता है। इसकी प्राप्ति में उनमें भाग लेने
प्रत्येक छात्र का सहयोग होता है, पर यह पारितोषिक व्यक्तिगत नहीं होता
पारितोषिक प्रदान करने की प्रणाली में सामूहिक पारितोषिक प्रदान करने
प्रणाली सर्वोत्तम है। बालकों में इससे परस्पर सद्व्यवहार, सहयोग और मिल
काम करने की भावना के साथ ही साथ निःस्वार्थ कार्य करने की आदत पड़ती
इस प्रकार का सामूहिक पुरस्कार स्वच्छता, खेल, अध्ययन आदि प्रत्येक कार्य
लिए दिया जा सकता है। सामूहिक पुरस्कार एक ही दल, कक्षा टोली की स
बनी न रहनी चाहिए। प्रतियोगिताएँ साप्ताहिक, पाक्षिक अथवा मासिक
रहनी चाहिएँ। पारितोषिक नई विजयी कक्षा को मिलता रहना चाहिए जिस
शाला को भी अधिक आर्थिक व्यवस्था न करनी होगी और बार-बार प्रतियोगित
होती रहने के कारण छात्र भी उसके प्रति सजग रहेंगे। बालकों को व्यक्ति
पुरस्कार देने में जो दोष गिने जाते हैं उनका निराकरण सामूहिक-पुरस्कार
किया जा सकता है।

बुनियादी शालाओं में पारितोषिक—रूढ़िवादी स्कूलों में प्रचलित पारितो
प्रदान करने की प्रणालियाँ यद्यपि बुनियादी-शाला में भी अपनाई जा सकती
तथापि बुनियादी-शाला में व्यक्तिगत पारितोषिक को बहुत कम स्थान दिया जा
चाहिए। बुनियादी शिक्षा व्यक्तिगत परिश्रम का सार्वजनिक उपयोग
सिखाती है। अतः बुनियादी-शाला में पारितोषिक भी ऐसे होने चाहिएँ जो मिल
की भावना जाग्रत करते हों। इसके लिए सामूहिक पुरस्कार अधिक सफल
होंगे।

बुनियादी-शाला में पारितोषिक प्रदान करने में इस बात का ध्यान
रखा जाना चाहिए कि बालकों को ऐसे पारितोषिक दिए जाएँ जिनके द्वारा
की उद्योग की ओर लगन बढ़े तथा कार्य करने की शक्ति प्राप्त हो। उद्योग-कार्य
अधिक अग्रसर रहने वाले दल को दूसरे उद्योग का सामान देकर उन्हें उस
किया जा सकता है। उद्योग में बहुत अच्छा काम करने वाले किसी छात्र को
व्यक्तिगत पारितोषिक देने से उसके उत्साह में भी वृद्धि होती है और अन्य छात्रों
को प्रोत्साहन मिलता है। उद्योग-कार्य के लिए पारितोषिक में उद्योग
वस्तुएँ दी जानी चाहिएँ।

[illegible] इस बात को याद किया जाना चाहिए कि कभी-कभी

द्वारा उत्पादित वस्तुओं को उन्हीं को पारितोषिक रूप में दिया जाना चाहिए जिससे वे अपने स्वयं के उत्पादन को स्वाभिमानपूर्वक अपने माता-पिताओं को दिखाकर उनसे प्रोत्साहन प्राप्त कर सकें। पर इसमें इस बात का ध्यान रखा जाना चाहिए कि उनको दी गई वस्तुएँ सरकारी मूल्य की न हों।

बुनियादी शाला में समृद्ध प्रतियोगिताओं की भावना उत्पन्न कर उसके निर्णय के आधार पर पारितोषिक प्रदान करना चाहिए। यह प्रतियोगिताएं कक्षा की टोलियों में परस्पर हो सकती हैं और अन्तर्कक्षीय भी। एक ही कक्षा में विभिन्न टोलियों में स्वच्छता, उद्योग और अध्ययन की दृष्टि से प्रतियोगिता की जा सकती है। कौन-सी टोली अधिक स्वच्छ है ? किस टोली ने अच्छी कताई की ? किस टोली ने नियमानुकूल कार्य किया ? किस टोली की क्यारी में उत्पादन अधिक हुआ, आदि। इसी प्रकार विभिन्न कक्षाओं में भी परस्पर प्रतियोगिता संचालित की जा सकती है, जिससे छात्र अधिकाधिक लगन, स्फूर्ति, चेष्टा, सहयोग और परिश्रम से काम करेंगे। पर पारितोषिक प्रदान करने के लिए निर्णय निष्पक्ष होना चाहिए।

पारितोषिक प्रदान करने के पूर्व छात्रों के उत्पादन की प्रदर्शनी कर समारोह किया जाए और इस उत्सव में उनके माता-पिता तथा संरक्षकों को बुलाकर उनके सामने ही पारितोषिक प्रदान किए जाएँ। ऐसी अवस्था में दिए गए पारितोषिक अधिक प्रभावोत्पादक होंगे।

बुनियादी-शालाओं में पारितोषिक में उपयोगी वस्तुएँ ही प्रदान की जानी चाहिएँ और वे भी अधिक मूल्यावान नहीं होनी चाहिएँ। अधिक मूल्यवान वस्तुएँ लोभ उत्पन्न कर देती हैं। छात्रों को स्वयं की उत्पादित वस्तुएँ पारितोषिक में प्रदान करने से उनके सामने एक आदर्श बना रहेगा। तात्पर्य यह है कि जिस दशा में बालक उन्नति की हो उसी के अनुकूल उपयोगी पारितोषिक दिया जाना चाहिए।

बुनियादी-शालाओं में पारितोषिकों की संख्या सीमित होनी चाहिए। अधिक पारितोषिकों से उनका मूल्य घट जाता है। पर छोटी कक्षाओं में पारितोषिक वर्ष में ३ या ४ बार भी वितरण किया जा सकता है।

सारांश

पारितोषिक का तात्पर्य—दण्ड बालक को बुरे कार्य करने से रोकता है और पारितोषिक लाभदायक कार्यों की ओर प्रवृत्त करता है।

पारितोषिक प्रदान करने के लिए भिन्न मत—पारितोषिक प्रदान करने में कई शंकाएँ की जाती हैं। (१) पारितोषिक लोभ उत्पन्न करता है। (२) समाज की वर्तमान रिश्वत प्रणाली का लघु रूप है। (३) परस्पर ईर्ष्या-द्वेष उत्पन्न करता है। (४) पारितोषिक प्रदान करने में बहुधा पक्षपात होता है। (५) पारितोषिक शिक्षा के क्षेत्र में अनुचित होड़ उत्पन्न करता है। (६) प्रायः अधिक जन्म-जात गुण वालों ही को पारितोषिक प्रदान किए जाते हैं।

शंकाओं का समाधान—इस प्रकार की शंकाएँ होने पर भी पारितोषिक प्रदान करने के लिए जो अध्ययन किए गए उनसे पता चलता है कि पारितोषिक

के प्रदान करने से आशातीत सफलताएँ प्राप्त होती हैं। अतः ... लाभकारी है।

पारितोषिक प्रदान करने की अवस्थाएँ—शाला में पारितोषिक ... की शारीरिक, मानसिक और नैतिक विकास की दृष्टि से दिए जाने चाहिएँ। ... ही श्रमदान, समाज-सेवा आदि के लिए व्यक्तिगत और सामूहिक पारितोषिक ... जाने चाहिएँ।

पारितोषिक के विभिन्न स्वरूप—

(१) प्रशंसा—यह मौखिक पारितोषिक है। कक्षा के संपूर्ण छात्रों ... सम्पूर्ण शाला के छात्रों के सम्मुख किया जाना चाहिए। (२) सम्मान पट्ट—... लगाए हुए पट्ट पर प्रति मास अध्ययनशील छात्र का नाम अंकित ... (३) प्रगतिपत्र में उल्लेख करना—प्रशंसनीय कार्य का बालक के प्रगतिपत्र ... उल्लेख भी प्रभावोत्पादक होता है। (४) प्रमाण-पत्र—प्रमाण-पत्र बालक के लिए ... अधिक मूल्यवान होते हैं पर इनकी भरमार अधिक नहीं होनी चाहिए। (५) ... कप, शील्ड आदि—पदक आदि पारितोषिक रूप में बहुत कम दिये ... चाहिएँ (६) अन्य वस्तुएँ—अन्य वस्तुएँ जो पारितोषिक में दी जाएँ वे उपयोगी होनी चाहिएँ। (७) अन्य सुविधाएँ प्रदान करने से भी उनको प्रोत्साहन मिलता है। (८) छात्रवृत्तियाँ तथा शाला फीस से मुक्ति छात्रवृत्तियाँ यदि ... अध्यवसाय के कारण दी जाती हैं तो वे पारितोषिक का वातावरण उत्पन्न ... करतीं। जो पढ़ाई-लिखाई आदि के आधार पर दी जाती हैं वे अधिक प्रभावोत्पादक होती हैं। (९) सामूहिक पारितोषिक—सामूहिक पारितोषिक समूह प्रतियोगिता का वातावरण उपस्थित करते हैं। यह प्रणाली सर्वोत्तम प्रणाली है।

बुनियादी शालाओं में पारितोषिक—(१) बुनियादी शालाओं में व्यक्तिगत पारितोषिक को बहुत कम स्थान दिया जाना चाहिए। सामूहिक पुरस्कार ... सफल सिद्ध होंगे। (२) उद्योग की लगन बढ़ाने वाले पारितोषिक दिए जाने चाहिएँ। (३) कभी कभी बालकों द्वारा उत्पादित वस्तुएँ उन्हें ही पारितोषिक में दी ... चाहिएँ। (४) समूह प्रतियोगिताओं के आधार पर पारितोषिक दिये जाने चाहिएँ। (५) छात्रों के माता-पिता आदि के सम्मुख उत्सव पर पारितोषिक दिये ... चाहिएँ। (६) अधिक मूल्यवान वस्तुएँ नहीं दी जानी चाहिएँ। (७) बुनियादी शाला में पारितोषिक की संख्या सीमित होनी चाहिए पर छोटी कक्षाओं में वर्ष में ... या ४ बार पारितोषिक प्रदान किये जाने चाहिएँ। (८) बुनियादी-शाला में पुरस्कार उत्पादन-कार्य से समतोल रखने वाले होने चाहियें।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(१) पारितोषिक प्रदान करने का क्या तात्पर्य होता है? पारितोषिक प्रदान करने ... विद्वानों के क्या क्या विभिन्न मत हैं? आप उनसे कहाँ तक सहमत हैं?

(२) पारितोषिक किन-किन रूपों में दिये जाते हैं? प्रत्येक का संक्षिप्त विवेचन ... कर बतलाइये कि आप पारितोषिक के किस रूप को सर्वोत्तम समझते हैं और क्यों?

(३) बुनियादी-शाला में किन-किन अवस्थाओं में किस-किस प्रकार के पारितोषिक ... आप पसन्द करेंगे? अपने मत की सप्रमाण पुष्टि कीजिये।

: १८ :

बुनियादी-शाला में स्वशासन

प्रस्तावना—विद्यालयों में अनुशासहीनता को दूर करने के अनेक साधनों में एक यह भी माना जाता है कि बालकों पर अधिक जिम्मा डाला जावे। इससे उनमें जिम्मेदारी की भावना जागृत होगी। दूसरे बालकों को लोकतन्त्रीय प्रणाली का व्यावहारिक ज्ञान भी देना है। छात्रों की व्यवस्थापिका-सभा या छात्र-परिषद् के निर्माण की शुरुआत इन दो प्रमुख उद्देश्यों से ही हुई है। हमारे देश के विधान में स्वतन्त्रता, समानता और बंधुत्व को प्रमुख स्थान दिया गया है। हमारे यहाँ केन्द्र में केन्द्रीय मन्त्रिमडल है और राज्यों में भी अपने-अपने मन्त्रिमडल हैं। इसी प्रकार विद्यालय में भी केन्द्रीय मन्त्रिमडल और कक्षा मन्त्रिमडल होने चाहिएं। इनकी अवधि सुविधानुसार निश्चित की जा सकती है। केन्द्रीय मन्त्रिमडल सारे स्कूल का जिम्मा उठाए और कक्षा मन्त्रिमंडल कक्षा की व्यवस्था की जिम्मेदारी उठाए।

(क) मन्त्रिमंडल के सदस्य और उनका उत्तरदायित्व

प्रधान मंत्री—उसका नेतृत्व स्पष्टतया स्वीकृत किया गया है। वह मन्त्रिमंडल की गतिविधि को नियन्त्रित करते हुए मन्त्रि-परिषद् और राष्ट्रपति के मध्य कड़ी का काम करता है। वह मंत्रिमंडल का संचालन करता है। मन्त्रिपरिषद् के सब निर्णयों को राष्ट्रपति तक पहुँचाता है और उसे सब जानकारी देता है जो वह प्राप्त करना चाहे। वह शाला-समाज की आवश्यकता के अनुसार मन्त्रियों में कार्यों का बँटवारा करता है।

गृह-मन्त्री—यही उप-प्रधान मन्त्री भी होता है। प्रधान मन्त्री की अनुपस्थिति में उसके कार्यभार को सभालता है। साधारण स्थिति में शाला-समाज के अतिथियों का स्वागत व उनकी व्यवस्था एवं तत्सम्बन्धी आयोजन उसके कार्य-क्षेत्र में आते हैं। इन आयोजनों की व्यवस्था वह मन्त्रिमडल एवं शाला-समाज के अन्य सदस्यों के सहयोग से करता है। समाज की सामग्री की देख-रेख एवं अनुशासनहीन छात्रों पर भी नजर रख कर सुरक्षात्मक व्यवस्था करता है।

खाद्य मंत्री—शाला-समाज में सामूहिक भोजन व नाश्ते का आयोजन एवं व्यवस्था के प्रति यह मन्त्री उत्तरदायी होता है। हमारी संस्कृति के अनुकूल सादा, सरल, सतुलित एवं स्वास्थ्यप्रद भोजन का प्रबन्ध हो ऐसा प्रयत्न किया जाता है। उन शालाओं में जिनसे छात्रावास भी सम्बद्ध होते हैं वहाँ छात्रावास समिति के अन्तर्गत एक भोजन समिति होती है। उसके द्वारा सामूहिक भोजन व्यवस्था के प्रत्येक अंग जैसे अनाज की सफाई, पिसाई, भोजन बनाना, उसका वितरण, बर्तनों की सफाई आदि की व्यवस्था की जाती है और किस-किस कार्य में कितना खर्चा हुआ इसका हिसाब रखा जाता है।

खने के लिये आय के क्षेत्र को विकसित करना और व्यय के मार्ग को नियन्त्रित करना आदि इस विभाग के अधिकार क्षेत्र हैं। शाला की सहकारी दूकान की व्यवस्था भी अर्थ मंत्री ही करता है।

मंत्रीमंडल का विधान—इस मण्डल का एक विधान होना आवश्यक है। जिससे प्रशासन से सम्बन्धित प्रत्येक बिन्दु का स्पष्टीकरण एवं मार्ग-दर्शन हो सके। हमारे देश के विधान में मन्त्रिपरिषद्, राष्ट्रपति को उसके कर्त्तव्य-पालन में सहायता या मंत्रणा देने के लिये होती है। भारतीय संविधान के अनुसार राष्ट्रपति का स्थान वही है जो ब्रिटिश संविधान में राजा का है। वह राज्य का प्रमुख है, कार्य संचालक नहीं। वह राष्ट्र पर शासन नहीं करता फिर भी संकटकालीन अधिकारों के अन्तर्गत व्यापक शक्तियाँ प्रदान की गई हैं। साधारणतः शिक्षण केन्द्र का प्रधानाध्यापक इस शाला-समाज एवं राष्ट्र का राष्ट्रपति होता है जो भारतीय संविधान के अनुसार कार्याधिकार पाता है। व्यवस्थापक-मण्डल में राष्ट्रपति और मन्त्रिमण्डल के सदस्यों के अतिरिक्त एक सचिव भी होता है जो संसद की बैठक का ब्यौरा रखता है। व्यवस्थापक मण्डल का चुनाव प्रतिमास होना चाहिए जिससे एक सत्र में एक से अधिक छात्रों को अपनी योग्यता प्रदर्शित करने एवं अनुभव प्राप्त करने का अवसर प्राप्त हो सके। चुनाव के अवसरों पर जो आपसी कटुता छात्रों में बढ़ती है उसका अवसर ही उत्पन्न न हो इस दृष्टि से चुनाव पद्धति अधिकतम सरल रखने का प्रयत्न किया जाना चाहिए। इस पद्धति को सरलतम बनाने की दृष्टि से साधारणतया प्रत्येक मास के प्रथम दिवस को अन्तिम घटी में छात्रों को प्रार्थना-स्थल में इकट्ठा किया जाना चाहिए। वहीं पर प्रत्येक पद के लिए उम्मीदवार छात्रों को स्वयं ही समाज के सामने अपना परिचय एवं योजना प्रस्तुत करने का अवसर दिया जाना उपयुक्त रहता है। एक पद के उम्मीदवारों के नाम आ जाने पर, गुप्त मतदान प्रणाली में मत लिए जाने चाहिएँ। इसी पद्धति से सम्पूर्ण सदस्यों का चुनाव किया जाना चाहिए।

(ख) छात्र-अनुशासन समितियाँ—विद्यालयों में ऐसे छात्र जो अनुशासन-हीनता का परिचय देते हैं, उन्हें सही मार्ग पर लाने के लिए छात्रों की अनुशासन समितियाँ भी बनाई जाती है। ऐसी समिति का अध्यक्ष यथासंभव छात्र परिषद् में गृह मंत्री के पद को संभालने वाले छात्र को ही बनाया जाना चाहिए। इस समिति में अधिक सदस्य रखना उपयुक्त नहीं रहता क्योंकि ऐसी दशा में कुछेक सदस्य अनुशासन तोड़ने वाले छात्र का गैरवाजिब पक्ष भी कर सकते हैं। यह समिति ऐसे अवसरों पर, जब कोई छात्र गम्भीर अनियमितता करे विचार करती है और उस छात्र को क्या दण्ड दिया जाए इसका निर्णय करती है। इस समिति के सदस्यों के मार्ग-दर्शन के लिए एक अनुभव प्राप्त शिक्षक, परामर्शदाता के रूप में नियुक्त किया जाए। वही इन सदस्यों को दण्ड की विभिन्न प्रणालियों एवं नियमों से अवगत करे और सही निर्णय करने में आवश्यकतानुसार समिति की मदद करे।

(ग) सहकारी दूकान—बालकों के लिखने-पढ़ने की वस्तुएँ उन्हें विद्यालय में ही मिल सकें इस दृष्टि से सहकारी दूकान की व्यवस्था बड़ी उपयोगी रहती है।

इसमें किसी छात्र को सामान बेचने के लिए नहीं बिठाया जाए, वरन् वस्तुओं की कीमत की सूची लगाई जाए। एक बिल-बुक वहाँ रखी रहे। छात्र अपने नाम का बिल बनाए और रकम बन्द तिजोरी में डाले और वस्तु ... प्रत्येक संध्या को दूकान बन्द करते समय सामान के खाते से सामान को मिलाया जाए, जो बिल कटें उनके धन का योग मिलाया जाए, तिजोरी में धन को ... और फिर दूकान बन्द की जाए। छात्रों में सचाई, ईमानदारी और जिम्मेदारी की भावना पैदा करने के कार्य में इस प्रकार की सरकारी दूकान बड़ी भारी ... सकती है। इसी दूकान की सामग्री, विविधता की दृष्टि से, ज्यों-ज्यों यह ... सफलता प्राप्त करती जाए, बढ़ाई जा सकती है।

सारांश

प्रस्तावना—छात्रों में अनुशासन पैदा करने और उन्हें उत्तरदायित्व का ज्ञान देने के लिए छात्र-परिषद् जरूरी है।

(क) मन्त्रिमंडल के सदस्य और उनका उत्तरदायित्व—शाला ... का एक व्यवस्थापक मंडल होगा जिसके मन्त्रिमंडल में निम्न पदाधिकारी ... प्रधान मंत्री, गृह मन्त्री, खाद्य मन्त्री, स्वास्थ्य मन्त्री, सांस्कृतिक मन्त्री, उद्योग ... शिक्षा मन्त्री, अर्थ मन्त्री। कार्य संचालन निश्चित परिपाटी से हो ... व्यवस्थापक मंडल के अन्तर्गत मन्त्रिमण्डल के अतिरिक्त एक ... सचिव भी होता है जो संसद् की बैठक का ब्यौरा रखता है। व्यवस्थापक ... कार्यकाल एक मास होता है और चुनाव के लिये सरलतम पद्धति अपनाई ...

(ख) छात्र-अनुशासन समितियाँ—ऐसे छात्र जो अनुशासनहीनता, अनियमितताएँ करते हैं उन्हें दण्ड की व्यवस्था के लिये ये समिति जरूरी ... मन्त्री की अध्यक्षता में इसका निर्माण हो और एक शिक्षक इसमें परामर्शदाता ... कार्य करे।

(ग) सहकारी दूकान—विद्यालय की यह दूकान छात्रों में ईमानदारी और जिम्मेदारी की भावना पैदा करने के लिये जरूरी है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(१) बुनियादी-शाला में अनुशासन की व्यवस्था आप किस प्रकार करेंगे ... वर्णन कीजिए।

(२) शाला के छात्र-संगठन, छात्रों को अनुशासनबद्ध करने में ... सहायक हो सकता है? स्पष्ट कीजिये।

: १६ :

शैक्षणिक भ्रमण

शैक्षणिक भ्रमण की महत्ता—वैसे तो मानव-जीवन में यात्राएँ, ट्रिप, टूयूर्स और सैर आदि की महत्ता सर्वविदित ही है। कहते हैं जगह-जगह का पानी पिया हुआ मनुष्य कहीं नहीं ठगा जाता क्योंकि उसने जीवन में बहुत अनुभव प्राप्त किये हैं। ऐसे ये अनुभव एक स्थान पर रह कर नहीं प्राप्त हुए वरन् स्थान-स्थान पर घूमने-फिरने के कारण, लोगों से मिलने-जुलने के कारण, संकटग्रस्त अवसरों में समस्याओं का हल खोजने का प्रयत्न करने के कारण तथा विभिन्न स्थानों की प्रकृति और दृश्यों के देखने के कारण प्राप्त हुए हैं। ऐसा प्रत्येक मनुष्य यात्रा के लिये हमेशा तत्पर रहता है जो अनुभव प्राप्त करने और सीखने का इच्छुक है। बालक अधिक जिज्ञासु होते हैं अतः बालक प्रौढ़ पुरुषों से भी अधिक भ्रमण के लिये उत्साही होते हैं। वास्तव में बालक के शिक्षण के लिये बाहर जाना एक अच्छा साधन है। बालक के दृष्टिकोण के विस्तार तथा रुचियों के विकास के लिये भ्रमण एक बड़ा प्रभावशाली साधन होता है। आमोद-प्रमोद के साथ शिक्षा ग्रहण करना भ्रमण से जितना सुलभ है, उतना अन्य और किसी तरीके से नहीं। पर यह अवश्य है कि यह भ्रमण निरुद्देश्य नहीं होना चाहिये। निरुद्देश्य भ्रमण से बालक को अधिक लाभ नहीं पहुँचता। अतः शिक्षा की दृष्टि से जो सोद्देश्य भ्रमण किया जाता है उसी को शैक्षणिक भ्रमण कहा जाता है और बालक की शिक्षा में इस शैक्षणिक भ्रमण की बड़ी भारी महत्ता है।

बुनियादी शाला और शैक्षणिक भ्रमण—बुनियादी-शिक्षा में बालकों के प्रत्यक्ष अनुभव को ज्यादा महत्व दिया जाता है। बालक दिमाग के बजाय हाथ पाँव और आँख से अधिक सीखता है। साथ ही जो सत्य अनुभव से प्राप्त किया जाता है, वह जिन्दा रहता है और फलता-फूलता है। भ्रमण से प्रकृति का विशाल प्रांगण उसके सामने खुल जाता है। घर और शाला के बाहर वह प्रकृति के सम्पर्क में आता है। ऐसे समय में अध्यापक बालकों को अवसरानुकूल ऐसा ज्ञान करा सकता है, जो बालक के जीवन का चिरस्थाई अंग बन जाता है।

कई विषयों का ज्ञान तो जितने अच्छे ढंग से भ्रमण के समय कराया जा सकता है, उतना शाला की परिधि में नहीं। भूगोल की दृष्टि से दिन-रात का ज्ञान, हवाओं का रुख, रात्रि में आकाश के तारों को पहचानना, उनके आधार पर दिशाओं का ज्ञान, ऋतुओं का ज्ञान, ऋतुओं का प्रकृति पर प्रभाव, वनस्पति पर प्रभाव, भूतल पर प्रभाव, पानी पर प्रभाव आदि विषयों का ज्ञान बड़े ही सुन्दर ढंगों से बालकों को कराया जा सकता है। यह स्वयं अनुभवित प्रत्यक्ष ज्ञान उनके जीवन का अंग बन जाता है। प्रकृति के तत्वों को वे अपनी ज्ञानेन्द्रियों के घने सम्पर्क में लाते

हैं और अपने तन-मन को उसमें तल्लीन कर अनुभव और ज्ञान प्राप्त कर यही सच्चे शिक्षण का तरीका है। इसीलिये बालक बाहर घूमना अधिक पसन्द है। प्रकृति की सैर से बढ़कर सजीवता के साथ बालक का शिक्षण और कोई कर सकता।

शैक्षणिक भ्रमण के प्रकार—शैक्षणिक भ्रमण एक छोटे से अंश से लम्बी-लम्बी यात्राओं के रूप में किया जा सकता है। इस तरह भ्रमण को लिखित भागों में बाँटा जा सकता है :—

(१) यात्रा– यात्रा एक लम्बे समय के लिये, लम्बे अंश में भ्रमण करने कहते हैं। इसमें अधिक व्यय की आवश्यकता होती है। दूर-दूर के आवागमन को यात्रा कहा जाता है। बुनियादी-शालाओं में यात्राओं का होना संभव नहीं। यह है कि बालक बहुत छोटे होते हैं तथा उनके माता-पिता बालकों के लिए नहीं कर सकते।

(२) एक्सकर्शन—यह पास-पड़ोस के स्थानों में किसी भौगोलिक, ऐतिहासिक अथवा प्राकृतिक विशेषताओं से आकृष्ट होकर किया जाता है। इसमें भी अधिक ही व्यय होता है।

(३) पिकनिक, ट्रिप या वन-भ्रमण—कक्षा के साथियों, अध्यापकों या माता-पिताओं के साथ दो चार घन्टे या सम्पूर्ण दिन भर के लिए जो समय घर व शाला से दूर प्रकृति की गोद में बिताया जाता है, उसे पिकनिक या वन-भ्रमण कहते हैं। इसका उद्देश्य स्वच्छन्दता, विनोद और आनन्द प्राप्त करना ही होता है।

(४) स्थानीय पास-पड़ोस की सैर—शाला की ओर से कक्षावार इस की सैर के आयोजन का बड़ा महत्व है। यह शिक्षा की दृष्टि से आयोजित की जा है। बालकों को प्रत्यक्ष ज्ञान इन्हीं के आधार पर कराया जा सकता है। गांव भूगोल, गांव का इतिहास गांव की सामाजिक एवं सांस्कृतिक व्यवस्था, गांव वनस्पति और उपज, गांव के पशु आदि का अध्ययन इसके आधार पर बड़ी सरलता से किया जा सकता है। आसपास के प्राकृतिक वातावरण, मानव जीवन, पशु जीवन, पेड़ पौधों को देखकर बालक में विश्व के व्यापक जीवन के सम्बन्ध में कल्पना को विकसित करने का यह बड़ा सुन्दर माध्यम है।

(५) जिले की सैर—जिले का भूगोल, ऐतिहासिक स्थान, वनस्पति, पशु जीवन, मानव जीवन आदि का ज्ञान करने के लिये जिले की सैर करानी चाहिए। जिले की सैर कराने से बालकों में प्रदेश के प्रति जानकारी प्राप्त करने की इच्छा जाग्रत होती है। बुनियादी शालाओं की कक्षा चार और पांच को जिले की सैर कराई जानी चाहिए ताकि उनके ज्ञान, अनुभव और विकास का क्षेत्र विस्तृत हो।

(६) अपने प्रदेश की सैर—प्रदेश की सैर का उद्देश्य भी बालक के ज्ञान का विकास ही है। बालक अपने पैरों और आंखों द्वारा अधिक व्यापक ज्ञान प्राप्त करता है। सम्पूर्ण प्रदेश को एक इकाई के रूप में वह उससे अपना सम्बन्ध जोड़ता है। माध्यमिक शालाओं के छात्रों को प्रदेश की सैर कराई जानी चाहिये जिससे वे प्रदे

में प्रचलित विभिन्न उद्योगों, कार्यों, उपज, पशु-पालन, ऐतिहासिक स्थानों आदि का अध्ययन कर सकें।

प्रदेश की सैर ही बालकों मे स्वदेश की सैर और विदेश की सैर के प्रति लगन उत्पन्न कर सकती है। जिसे वे भावी जीवन में जाकर सम्पूर्ण करने का प्रयत्न कर सकते हैं।

बुनियादी-शाला में शैक्षणिक भ्रमण के आयोजन—बुनियादी-शाला मे भ्रमण के आयोजनों मे निम्नलिखित बातों का ध्यान रखा जाना चाहिये:—

(१) भ्रमण का दृष्टिकोण केवल मनोविनोद व आनन्द ही नही होना चाहिए [व]रन् शैक्षणिक दृष्टिकोण ही प्रमुख होना चाहिए। आनन्द और मनोविनोद इनमें [स्व]तः विद्यमान रहता है।

(२) छोटे बालकों द्वारा लम्बी सैर न कराई जानी चाहिए अन्यथा थकान [आ] जाने के कारण रुचि का अभाव हो जायेगा। शैक्षणिक भ्रमण तभी तक [ला]भकारी है जब तक उनमें रुचि बराबर बनी रहती है।

(३) सैर मे व्यय कम-से-कम होना चाहिये। अधिक व्यय के कारण छात्र [इस]में भाग नहीं ले सकते।

(४) अलग-अलग कक्षाओं को अलग-अलग समय पर भ्रमण के लिए ले [जा]ना चाहिए, जिससे शाला के कार्य को बन्द न कर देना पड़े।

(५) भ्रमण दो या तीन दिन का होना चाहिए। आवश्यकता और समय [के] अनुसार उसे घटाया बढ़ाया जा सकता है। साथ ही केवल दिन भर का भ्रमण [या] सैर तो कई बार आयोजित की जा सकती है।

(६) भ्रमण या सैर मे इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि अधिकतर काम बालक स्वयं करें।

(७) भ्रमण या सैर मास मे एक या दो बार अवश्य की जानी चाहिए। इसमें ऐतिहासिक ज्ञान व प्राकृतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक व आर्थिक अध्ययन पर जोर दिया जाना चाहिए।

(८) भ्रमण या सैर में व्यर्थ समय न बीते इस दृष्टि से योजना व कार्यक्रम पहले से ही सोच-समझकर बना लेना चाहिए। किस-किस बात का निरीक्षण किया जाएगा? किस-किस दृष्टि से अध्ययन किया जायगा? आदि।

सारांश

शैक्षणिक भ्रमण की महत्ता—बालक में दृष्टिकोण के विस्तार तथा रुचियों [के] विकास के लिये भ्रमण एक प्रभावशाली साधन है। पर भ्रमण निरुद्देश्य नहीं [हो]ना चाहिए। शिक्षा की दृष्टि से सोद्देश्य भ्रमण ही को शैक्षणिक भ्रमण कहते हैं।

बुनियादी-शाला और शैक्षणिक भ्रमण—दोनों के उद्देश्यों में पूर्ण [स]म्बन्ध है। बुनियादी-शाला प्रत्यक्ष ज्ञान के आधार पर बालक को शिक्षा देना [चाह]ती है। और शैक्षणिक भ्रमण से बालक प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करता है।

शैक्षणिक भ्रमण के प्रकार :—

(१) यात्रा—लम्बे समय के लिये लम्बे क्षेत्र में भ्रमण को यात्रा कहते हैं। इसमें व्यय अधिक होता है।

(२) एक्सकर्शन—पास पड़ोस के स्थानों की विशेषताओं को देखने की दृष्टि से व्ययसाध्य भ्रमण है।

(३) पिकनिक, ट्रिप या वन भ्रमण—दो चार घन्टे या केवल दिन भर का समय को प्रकृति की गोद में बिताया जाता है।

(४) स्थानीय पास-पड़ोस की सैर—गांव के वातावरण का अध्ययन करने के लिए आवश्यक है।

(५) जिले की सैर—जिले के उद्योग, भूगोल, ऐतिहासिक स्थान आदि के अध्ययन की दृष्टि से की जाती है।

(६) अपने प्रदेश की सैर—सम्पूर्ण देश की जानकारी के लिये आवश्यक है।

बुनियादी-शाला में शैक्षणिक भ्रमण के आयोजन :—

(१) भ्रमण का दृष्टिकोण शैक्षणिक होना चाहिये।

(२) छोटे बालकों को लम्बी सैर न कराई जाए।

(३) व्यय कम से कम हो।

(४) अलग-अलग कक्षाओं के भ्रमण का समय अलग-अलग होना चाहिये।

(५) भ्रमण एक दिन से लेकर दो चार दिन तक का हो सकता है।

(६) भ्रमण या सैर में सब काम बालकों से कराया जाना चाहिए।

विद्यालय का वनशाला कार्यक्रम

प्रस्तावना—प्रत्येक विद्यालय कुछेक चुनीदा कार्यक्रमों में विशेषता एवं दक्षता प्राप्त कर लेता है। इस दृष्टि से कहीं पर उद्योग-कार्य सराहनीय प्रकार का हो सकता है, तो कहीं पर छात्र खेलों में अग्रसर हो सकते हैं तो कहीं परीक्षा-फल श्रेष्ठ हो सकता है तो कहीं सांस्कृतिक कार्यक्रम सराहनीय प्रकार के होते हैं। इसी क्रम में विद्यालय के वनशाला-कार्यक्रम (ओपन एयर सेशन) की भी बात आती है। कुछेक विद्यालय इस कार्यक्रम में काफी ख्याति प्राप्त कर चुके हैं और एक प्रकार से उन्होंने ही इस प्रवृत्ति को अपनाने के लिए अन्य विद्यालयों को भी आकर्षित किया है।

वनशाला कार्यक्रम क्या है?—विद्यालय शहरी या ग्रामीण वातावरण को छोड़ कर कुछ समय के लिए किसी नवीन स्थान पर चला जाता है। छात्र, अध्यापक सभी कार्यकर्ता उस स्थान पर एक सप्ताह या पन्द्रह दिन या एक मास जो भी समय निश्चित किया जाए उतने समय के लिए चले जाते हैं। सभी जरूरी साज-सामान भी साथ ले जाया जाता है। उस स्थान के विशेष अध्ययन में अवसर का पूरा-पूरा लाभ लिया जाता है और शिक्षण कार्य भी यथावत् चालू रक्खा जाता है।

स्थान का चुनाव—ऐसे कार्यक्रम का प्रमुख उद्देश्य शिक्षण कार्य के अतिरिक्त उस स्थान के प्राकृतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक या आर्थिक वातावरण को भी अध्ययन करना होता है। इस कारण स्थान का चुनाव करते समय उपरोक्त सभी या कुछेक विशेषताओं का उस स्थान में होना जरूरी होता है। तभी वह स्थान बालकों को नवीन प्रकार के अनुभव प्रस्तुत कर सकेगा, उनके ज्ञान को बढ़ाने में सहायक होगा और विद्यालय का वहां पहुँचना सार्थक हो सकेगा।

चुने गए स्थान से किस प्रकार लाभ लिया जाए—विद्यालय जब किसी स्थान को, वनशाला कार्यक्रम के लिए चुन लेता है तब फिर वहां पहुँचने के पूर्व ही सारे कार्यक्रम की योजना तैयार कर ली जानी चाहिए। इस काम में विशेषतः वे अध्यापक या कार्यकर्ता सहायक हो सकते हैं जो उस स्थान को चुनने की दृष्टि से स्थिति का अध्ययन करने को वहां जा चुके हों। वैसे यह स्पष्ट किया जा चुका है कि वनशाला का प्रमुख उद्देश्य एक निश्चित स्थान, जो शैक्षणिक अनुभवों को प्रदान करने की दृष्टि से भरपूर हो, का गहन अध्ययन है, अतः विद्यालय-समाज को इस कार्य के लिए अपनी योजना तैयार करनी होगी। योजना की स्पष्टता, व्यावहारिकता और समुचित कार्यान्वीकरण पर ही सफलता निर्भर करती है। इस दृष्टि से मोटे रूप से विद्यालय को इस नवीन स्थान का लाभ उठाने की दृष्टि से निम्न बिन्दुओं पर विशेष अध्ययन करना होगा :—

स्थान का चुनाव—स्थान ऐसा चुना जाए कि विशेष अध्ययन की दृष्टि से प्राकृतिक, सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक वातावरण में प्राप्त सामग्री उपलब्ध हो सके।

चुने गये स्थान से किस प्रकार लाभ लिया जाए?—वातावरण अध्ययन निम्न भागों में बाँट कर किया जाना उपयुक्त रहता है—

(१) स्थान का भौगोलिक महत्त्व।
(२) स्थान का ऐतिहासिक महत्त्व।
(३) स्थान का साहित्यिक महत्त्व।
(४) स्थान की सामाजिक एवं आर्थिक विशेषतायें।
(५) सांस्कृतिक वातावरण।

स्थानीय वातावरण के विशेष अध्ययन की व्यवस्था—ऊपरी बिन्दुओं के अनुसार अलग-अलग टोलियां सम्बन्धित शिक्षकों के अन्तर्गत बन जाकर अध्ययन की व्यवस्था की जा सकती है।

छात्रों से किस-किस प्रकार का कार्य अपेक्षित है?—विभिन्न टोलि के कार्य के ब्यौरे, लेख, चुनीदा वस्तुओं के संग्रह, गीतों के संग्रह, कहानियों संग्रह, मुहावरों, एवं कहावतों के संग्रह, प्रचलित नाटक, वास्तुकला के चि प्राकृतिक सौन्दर्य के चित्र, ग्राफ, समय रेखायें और मानचित्र आदि।

कार्यक्रम समाप्ति उत्सव—इस अवसर पर प्रदर्शनी जमाई जाए औ सांस्कृतिक कार्यक्रमों में भी स्थानीय वातावरण से ही सामग्री का चयन कि जाए।

उपसंहार—यह कार्यक्रम नियमित प्रवृत्ति के रूप में राजस्थान विद्याभवन उदयपुर में शुरू हुआ और अब अन्य विद्यालय भी इसे अपनाते रहे हैं।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(१) वनशाला-कार्यक्रम क्या है? इसका शैक्षणिक महत्त्व विस्तार से लिखिए।
(२) आप अपने विद्यालय के लिए वनशाला-कार्यक्रम की योजना किस प्रकार तैयार करें

: २१ :

बुनियादी-शाला में सांस्कृतिक आयोजन

सांस्कृतिक आयोजन की महत्ता—प्रत्येक राष्ट्र की अपनी संस्कृति होती है। उस संस्कृति से परिचित कराना तथा उसमें विकास करने की क्षमता बालक में उत्पन्न करना शाला का कार्य है। धरोहर रूप में पूर्वजों से प्राप्त संस्कृति को अधिकाधिक विकास की अवस्था में पहुँचाने का कार्य शालाएँ करती हैं। इसी दृष्टि से शालाओं में सांस्कृतिक आयोजनों की आवश्यकता और महत्ता है।

बुनियादी शाला द्वारा सांस्कृतिक पुनर्निर्माण—बुनियादी-शाला को समाज के प्रत्येक अंग का निर्माण करना है। समाज के 'सुन्दरम्' के प्रति दृष्टिकोण को सुधारना है। समाज के जीवन में समाज की संस्कृति के प्रति प्रेम उत्पन्न करना है। अतः बुनियादी-शालाओं को इस दृष्टिकोण को अपनाना चाहिये। उन्हें शाला के छात्रों में ऐसे सांस्कृतिक आयोजन सम्पादित करने चाहिएँ जिनसे छात्रों के जीवन में समाज के सांस्कृतिक पुनर्निर्माण की लगन उत्पन्न हो सके। वे सांस्कृतिक उत्सवों, त्यौहारों, को अच्छे से अच्छे ढंग से मनाना सीख सकें। साथ ही माता-पिताओं, अभिभावकों को बालकों द्वारा आयोजित विभिन्न सांस्कृतिक आयोजनों में निमन्त्रित करना चाहिये ताकि उनके सांस्कृतिक दृष्टिकोण में सुधार हो सके और वे आयोजन की महत्ता तथा मनाने की विधि से परिचित हो सकें।

बुनियादी-शाला द्वारा विभिन्न सांस्कृतिक आयोजन—बुनियादी-शालाएँ कई प्रकार के सांस्कृतिक आयोजन कर सकती हैं। ये आयोजन स्थान, समय तथा अन्य परिस्थितियों के आधार पर भिन्न-भिन्न होंगे। बुनियादी-शालाओं में निम्न सांस्कृतिक आयोजन मनाए जा सकते हैं :—

(१) लोक-नृत्य—समय-समय पर स्थानीय लोक-नृत्यों का आयोजन किया जाना चाहिए जिससे मनोरंजन तो होगा ही साथ ही वे संस्कृति को जीवित रखने में बड़े सहयोगी सिद्ध होंगे। इनके द्वारा जीवन में नृत्य के प्रति एक विशेष दृष्टिकोण तथा उसमें रुचि उत्पन्न होगी जिसके कारण बालक 'सुन्दरम्' के उपासक बन सकेंगे।

(२) लोक गीत—गीत समाज और जाति की अपनी निधि होते हैं जिनमें यथार्थता के साथ-साथ आदर्श और उपदेश भी भरा हुआ होता है, जो सामाजिक स्थिति से परिचित कराते हुए उपदेश और आदर्श ग्रहण करने में सहायक होते हैं। अतः शालाओं में लोक-गीतों के कार्यक्रम अवश्य होने चाहिएँ। इन्हीं गीतों में [illegible]नोव वैज्ञानिक विशेषताएँ छिपी हुई होती हैं। बालकों को इस ओर से परिचित कराकर उनमें स्वाभिमान [illegible] भावना भरी जा सकती है।

(३) लोक-क्रीडायें—प्रत्येक स्थान, समाज और जाति के अपने-मनोरंजन के साधन होते हैं। शाला-समाज या जाति की प्रतिच्छाया होती है, उद्देश्य समाज के विभिन्न अंगों को धरोहर रूप में बनाए रखना और उनका वि करना होता है। अतः शाला को समय-समय पर स्थानीय लोक-क्रीड़ा के आयो करने चाहिएं जिससे संस्कृति को जीवित रखने में सम्बल प्राप्त होता रहे।

(४) प्राचीन व्यायाम, आसन आदि—यद्यपि व्यायाम की कई नवीन पद्धतियाँ प्रचलित हो चुकी हैं पर हमें प्राचीन व्यायाम पद्धतियों और आसन प्र लियों को नहीं भुला देना चाहिए। यह तो स्पष्ट ही है कि प्राचीन व्यायाम पद्धति तथा आसन प्रणालियों से जो शरीर शुद्धि, शरीर गठन और शरीर की शक्ति वृद्धि होती थी वह आज की व्यायाम प्रणालियों से उपलब्ध नहीं। अतः हम हजारों वर्षों से चली आने वाली पद्धतियों के प्रति उपेक्षा करना उचित नहीं। ह जिन आधुनिक व्यायाम पद्धतियों को अपनाया है, वे विदेशी हैं। अतः हमें इन साथ ही अपनी उन प्राचीन पद्धतियों को भी जीवित रखना चाहिए जो विदेशो लिये आश्चर्य का कारण बनी हुई है।

(५) उत्सव स्थान की सजावट—सजावट हमारे जीवन का अभिन्न अंग है प्रत्येक मानव न्यूनाधिक सौन्दर्योपासक होता ही है। हमारे राष्ट्र में स्थान सजाने की प्रणालियों में स्थानीय भिन्नताएँ मिलती हैं। कहीं रंगोली से सजाय जाता है, कहीं फूल-पत्तियों से सजाया जाता है, कहीं चित्रकारी द्वारा सजाया जाता है, कहीं विभिन्न प्रकार के अनाज, चावल, दालों आदि से सजाया जाता है। कहीं मांडने मांड कर सजाया जाता है। ये सब कार्यक्रम अपनी-अपनी संस्कृति के अनुसार होते हैं। अतः शालाओं में भी इस प्रकार की सजावट की महत्ता होनी चाहिए। जब कभी शाला में त्योहार, उत्सव, जयन्ती आदि मनाई जाए तो बालकों द्वारा सजावटें कराई जानी चाहिएं, जिससे उनकी कल्पना के विकास के साथ-साथ उनमें सौन्दर्य के प्रति प्रेम उत्पन्न हो सके। सजावट की भावना जन्म-जात होती है। ग्रामीण अशिक्षित स्त्रियाँ भी पीली मिट्टी से आंगन लीप कर उस पर खड़िया से विभिन्न मांडने मांडती हैं, चित्र बनाती हैं। अतः इनका विकास किया जाना अत्यन्त आवश्यक है।

(६) उपेक्ष जमाना एवं मंगल कलश सजाना—घरों में सामान को सजाकर रखना भी एक कला है। भारत में वैसे ही घरों का अभाव है। गाँवों में एक ही घर में कुटुम्ब के कई प्राणी गुजारा चलाते हैं। अतः सामान को यदि समेट कर तथा जमा कर या सजाकर न रखा जाए, तो स्थानाभाव अधिक महसूस होता है। अत बुनियादी-शाला में छात्रों में इस प्रकार की आदत डालनी चाहिए कि वे सामान को सजाकर रखें। इसी प्रकार विवाह, उत्सव, यज्ञोपवीत संस्कार के समय मंगल कलश के सजाने की आवश्यकता पड़ती है। अतः शाला में ही समय-समय पर छात्रों मंगल कलश सजाने की विधियों से परिचित कराना चाहिए।

; कविता, संगीत, नाटक आदि—

कविता तथा नाटक आदि आयोजन बालकों में मनोरंजन के साथ-साथ कल्पना का भी विकास करते हैं। उनमें साहस उत्पन्न करते हैं तथा नेतृत्व की भावना जगाते हैं। अतः इस प्रकार का आयोजन किए जाना नितान्त आवश्यक है।

आयोजन में ध्यान रखने योग्य बातें—सांस्कृतिक आयोजन करते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए :—

(१) सांस्कृतिक आयोजन की शैक्षणिक और सामाजिक उपयोगिता हो।

(२) सम्पूर्ण कार्यक्रम व्यवस्थित एवं सुयोजित होना चाहिए।

(३) आयोजन केवल रूढ़िगत ही नहीं वरन् उनका संशोधित स्वरूप उपस्थित किया जाना चाहिए।

(४) आयोजन सामयिक प्रदर्शन मात्र न हो वरन् गांव वालों में उसे आगे भी चलाने या कायम रखने की भावना का प्रेरक हो।

(५) सांस्कृतिक आयोजनों में समाज के व्यक्तियों तथा शाला के सदस्यों का सम्मिलित सहयोग हो।

(६) आयोजन के सभी कार्य बालकों द्वारा कराए जाने चाहिएं तथा उनका प्रबन्ध व संचालन भी बालकों के द्वारा ही कराया जाना चाहिए।

सारांश

सांस्कृतिक आयोजन की महत्ता—धरोहर में प्राप्त राष्ट्र की संस्कृति को विकास की क्षमता के साथ राष्ट्र के भावी नागरिकों को प्रदान करना शाला का कर्त्तव्य है। सांस्कृतिक स्तर द्वारा ही जाति, समाज और राष्ट्र के जीवन का मूल्य आंका जाता है।

बुनियादी-शाला द्वारा सांस्कृतिक पुनर्निर्माण—बुनियादी-शाला को चाहिए कि समाज का सांस्कृतिक पुनर्निर्माण करे।

बुनियादी-शाला द्वारा विभिन्न सांस्कृतिक आयोजन—

(१) लोकनृत्य—स्थानीय लोकनृत्यों का आयोजन किया जाना चाहिये।

(२) लोक-गीत—स्थानीय इतिहास, उपदेश, आदर्श और यथार्थता की जानकारी के लिये लोक गीतों के आयोजन आवश्यक है।

(३) लोक-क्रीड़ायें—लोक-क्रीड़ाओं के आयोजन संस्कृति को जीवित रखने में सहायक होवे।

(४) प्राचीन व्यायाम, आसन आदि—व्यायाम की नवीन विदेशी प्रणालियों को अपनाकर हमें प्राचीन व्यायाम, आसन आदि की प्रणालियों को न भुला देना चाहिये जो विदेशों के आश्चर्य का कारण बनी हुई है।

(५) उत्सव स्थान की सजावट—समय-समय पर सजावटें कराई जानी चाहियें।

(६) उबेड़ जमाना एवं मंगल कलश सजाना—बालकों को सामान जमाकर रखने व मंगल कलश सजाने की विधि भी बताई जानी चाहिये।

(७) कविता, संगीत नाटक आदि—समय-समय पर इस प्रकार के आयोजन होते रहने चाहियें।

आयोजन में ध्यान रखने योग्य बातें—(१) आयोजन की सांस्कृतिक, सामाजिक उपयोगिता हो, (२) आयोजन की सुयोजना, (३) उनका संशोधित स्वरूप, (४) केवल सामयिक प्रदर्शन नहीं वरन् पाये किये जाने की भावना प्रेरक हो, और (५) समाज शाला के सदस्यों का सम्मिलित सहयोग, (६) सभी कार्य बालकों द्वारा सम्पादित हों।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(१) सांस्कृतिक आयोजन की महत्ता प्रदर्शित करते हुए बुनियादी शाला की इस क्षेत्र में क्षमता का विवेचन कीजिये।

(२) बुनियादी शाला में कौन-कौन से सांस्कृतिक आयोजन मनाए जाने चाहिएँ ? आप उनको मनाने के लिए किस प्रकार कार्य करेंगे ?

: २२ :

विद्यालय में संग्रहालय, प्रदर्शिनी और स्टेज की व्यवस्था

प्रस्तावना—विद्यालय की विभिन्न प्रवृत्तियों के अन्तर्गत संग्रहालय और प्रदर्शिनी का विशेष महत्व है। विद्यालय समाज के निकट पहुँचाने के प्रयत्नों में सांस्कृतिक कार्यक्रम काफी मदद करते हैं। इन कार्यक्रमों के व्यवस्थित आयोजन के लिए स्टेज की आवश्यकता पड़ती है। विद्यालय का सभा भवन इस कार्य के लिए उपयोग में लिया जा सकता है। परन्तु जब ऐसे कार्यक्रम हों जिनमें समाज को आमंत्रित किया जाए, खुला-स्टेज (ओपन-एयर-स्टेज) लाभकारी रहता है। इन्हीं कतिपय कारणों से विद्यालय के संग्रहालय, प्रदर्शिनी और खुले स्टेज की व्यवस्था के बाबत् अध्ययन करना जरूरी है।

संग्रहालय

महाशय हेरीसन के शब्दों में—"यूरोप में जब प्रथम संग्रहालयों की शुरूआत हुई तो इस कार्य का श्रीगणेश धनवान् और यात्रा किए हुए व्यक्तियों द्वारा तीव्र संग्रह प्रवृत्ति के कारण हुआ और इस कारण वस्तु चुनाव का सिद्धान्त केवल संग्रहकर्ता की रुचि था और प्रदर्शन का प्रमुख उद्देश्य दर्शकों को प्रभावित करना मात्र था। ज्यों ज्यों ये वैयक्तिक संग्रह, सार्वजनिक-संग्रहालयों में मिलाए जाते गए त्यों त्यों उनका मूल उद्देश्य बदलता गया परन्तु फिर भी उन संग्रहों के आकर्षण और उनकी सुरक्षा को देख अनेक लोग हतप्रभ होते रहे।"[1] इस प्रकार व्यक्तिगत संग्रहालय ही क्रमशः सार्वजनिक संग्रहालय बने। यही बात हमारे देश के लिए भी लागू होती है। भूतपूर्व राजाओं और नवाबों के वैयक्तिक संग्रहालय जो उनकी रुचि के प्रतीक थे अब सार्वजनिक संग्रहालय के रूप में हमारे देश में भी विद्यमान हैं।

विद्यालय और उनके संग्रहालय—सार्वजनिक संग्रहालयों की उपयुक्तता ने ही प्रारम्भ में विद्यालयों के छात्रों को शिक्षकों के मार्ग-दर्शन में संग्रहालय दिखाने ले जाने की परम्परा की शुरूआत की। क्रमशः विद्यालय भी अपना संग्रहालय बनाने के लिए प्रवृत्त हुए। इसमें कोई संदेह नहीं कि शाला का अपना संग्रहालय एक ऐसी स्थाई प्रदर्शिनी है, जहाँ विद्यालय को एक बड़ी सीमा तक समझा जा सकता है।

विद्यालय संग्रहालय से लाभ—विद्यालय-संग्रहालय से निम्नलिखित लाभ हैं:—

(१) इससे विद्यालय की पृष्ठभूमि को समझने में मदद मिलती है।
(२) इससे विद्यालय की प्रवृत्तियों को समझा जा सकता है।
(३) इससे विद्यालय के कार्य के स्तर का पता लग सकता है।

---

१. हेरीसन, मोरे—"म्यूजियम इन एजूकेशन—" एन्साइक्लोपीडिया ऑफ एजूकेशन रिसर्च पृ०—२२।

(४) इससे विद्यालय की भावी योजनाओं को जानने में मदद मिल सकती है।
(५) इससे विद्यालय और समाज के पारस्परिक सहयोग का अन्दाजा लगाया जा सकता है।
(६) इससे छात्रों की रुचि विषयों (हॉबीज) का पता लग सकता है।
(७) इससे विद्यालय इकाई के छात्र व शिक्षक अपनी पूर्ति के समय का कैसा उपयोग करते हैं इसका मूल्यांकन हो सकता है।
(८) इससे शिक्षण प्रक्रिया को सरल बनाने में सहायता मिलती है।
(९) इससे विद्यालय के आस-पास के भौतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक वातावरण का ज्ञान प्राप्त हो सकता है।
(१०) इससे विद्यालय की योजनाओं को बनाना और प्रभावपूर्ण का पता लग सकता है।
(११) इससे कमी-कमी और साधनों भी उपलब्ध हो सकती है।

यालय के उद्देश्यों की प्राप्ति के कार्य में बड़े महत्त्वपूर्ण तरीके से सहायक होती है।

प्रदर्शिनी

प्रस्तावना—शिक्षा के प्रचार और विकास ने प्रत्येक शाला में प्रदर्शिनी को एक महत्त्वपूर्ण प्रवृत्ति का रूप दे दिया है। वैसे प्रदर्शिनी प्रत्येक विद्यालय साधारणतः साल में एक बार ही लगाया करता है। इसमें कोई संदेह नहीं कि एक प्रदर्शिनी विद्यालय के एक साल के महत्त्वपूर्ण कार्यों की अच्छी झाँकी पेश कर सकता है।

प्रदर्शिनी से लाभ और व्यवस्था—विद्यालय संग्रहालय से जिन लाभों की अपेक्षा की जाती है, करीब-करीब वैसी ही अपेक्षा प्रदर्शिनी से भी की जानी चाहिए। परन्तु यह बात केवल एक सत्र के लिए ही लागू होती है। वैसे यह भी नहीं मानना चाहिए कि विद्यालय-संग्रहालय और प्रदर्शिनी दोनों ही समानान्तर प्रवृत्तियाँ हैं। वरन् कहना यह पड़ेगा कि प्रदर्शिनी विद्यालय-संग्रहालय की सहायक प्रवृत्ति है। प्रदर्शिनी की सर्वश्रेष्ठ वस्तुएँ ही विद्यालय-संग्रहालय में इकट्ठी की जाकर प्रत्येक विद्यालय संग्रहालय ज्यादा और ज्यादा मूल्यवान होता जाता है। विद्यालय संग्रहालय की व्यवस्था के बाबत जो बातें लागू होती हैं वही विद्यालय की प्रदर्शिनी के बाबत भी लागू होती हैं। परन्तु विद्यालय प्रदर्शिनी की व्यवस्था साधारणतः वर्ष में एक या दो बार और निश्चित दिनों के लिए ही होता है अतः इसके लिए किसी खास कमरे की जरूरत नहीं होती वरन् इसके आयोजन में सुविधानुसार जितने भी स्थान की आवश्यकता हो उपयोग संभव है।

उपसंहार—विद्यालय की किसी एक वर्ष की प्रदर्शिनी एक ऐसी प्रवृत्ति है जिसके द्वारा विद्यालय में एक वर्ष में पूरे हुए सारे कार्य का एक व्यापक चित्र प्रस्तुत किया जा सकता है। इससे विद्यालय तो लाभान्वित होता ही है परन्तु समाज को भी विद्यालय के कार्यों और प्रयत्नों को समझने में मदद मिलती है।

विद्यालय का स्टेज

प्रत्येक विद्यालय में नाट्यकला, संगीतकला, नृत्यकला, लोक-गीत व अन्य कार्यक्रमों के लिए एक स्टेज होना आवश्यक है। इसकी आवश्यकता उस समय खासकर महसूस होती है जब समाज को विद्यालय में उपरोक्त कार्यक्रमों के अवसर पर आमंत्रित किया जाता है। इसकी व्यवस्था के लिए साधारणतः बेंचों एवं टेबिलों को एक साथ मिलाकर व्यवस्था की जाती है। इससे इनके टूटने और खराब होने का भी डर रहता है। अतः ज्यादा अच्छा यही है कि विद्यालय में सुविधानुसार एक पक्का स्टेज बना लिया जाए। इस स्टेज का कार्य श्रमदान द्वारा पूरा किया जा सकता है। स्टेज को सामने से कुछ नीचा और पीछे से कुछ ऊँचा रखना चाहिए। ... ... चौड़ाई थोड़ी ज्यादा हो तो भी चलता है। स्टेज के किनारों पर दीवारें बनाकर ... मिट्टी के साथ भी बनाई जा सकती है और बीच में मिट्टी डालकर उसे भराव ... किया जा सकता है। चारों तरफ लोहे या लकड़ी के खम्भ गाड़े जा सकते हैं ...

दीवार बना दी जाया करती है। इससे पीछे के हिस्से में कपड़े से उसे बन्द नहीं करना पड़ता। अतः दीवार बनवाना ही उपयुक्त रहता है। बुनियादी-शाला में सांस्कृतिक आयोजन नामक पाठ में—उत्सव स्थान की सजावट की चर्चा की जा चुकी है। वही तरीका यहां भी अपनाया जाए।

सारांश

प्रस्तावना—विद्यालय में संग्रहालयों का महत्व बढ़ता जा रहा है।

संग्रहालय—वैयक्तिक संग्रहालय ही धीरे-धीरे सार्वजनिक संग्रहालय के रूप में अवतरित हुए।

विद्यालय और उनके संग्रहालय—अब विद्यालयों में भी अपने संग्रहालय बनाने की परम्परा शुरू हुई है।

विद्यालय संग्रहालय से लाभ—विद्यालय संग्रहालय शिक्षा के आवश्यक अंग माने जाते हैं। इनके द्वारा विद्यालय का एक दृष्टि में ही सर्वांगीण अध्ययन किया जा सकता है।

विद्यालय संग्रहालय का कार्य—महाशय कोलमैन के अनुसार—"विद्यालय को सबसे महत्वपूर्ण रूप से, शिक्षण का साधन या शोध का साधन या दोनों बनाना चाहिए।

संग्रहालय की व्यवस्था—इसकी सामग्री व्यवस्थित रूप से जमाई जाए, सामग्री तैयार कराने के या इकट्ठी करने के साधनों का पूरा-पूरा उपयोग हो, इसके लिए धन की व्यवस्था हो और सूझ-बूझ वाले व्यक्ति इसकी व्यवस्था करें।

उपसंहार—इससे विद्यालय और समाज दोनों को लाभ होता है और शिक्षा के कार्य में मदद मिलती है।

प्रदर्शिनी

प्रस्तावना—प्रदर्शित संग्रहालय का अस्थाई रूप है।

प्रदर्शिनी में लाभ और व्यवस्था—इससे विद्यालय के कार्यक्रमों की प्रवृत्तियों को समझने में मदद मिलती है और छात्र रचनात्मक प्रवृत्तियों को अवसर होते हैं।

उपसंहार—विद्यालय की इस प्रवृत्ति को विद्यालय के एक साल के कार्य का स्तर समझा जा सकता है और सफलता को आंका जा सकता है।

विद्यालय का स्टेज

विद्यालय के सांस्कृतिक कार्यक्रमों के समुचित आयोजन की दृष्टि से स्टेज का भारी महत्व है। इसे विद्यालय खुद ही बना सकता है। विशेषतः जब समाज को विद्यालय के कार्यक्रम दिखाए जाने हों, यह बड़ा सहायक होता है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(१) विद्यालय में संग्रहालय का महत्व विस्तार के साथ वर्णन कीजिए।

(२) विद्यालय की प्रदर्शिनी को और समाज के कार्यों को किस प्रकार से संबंधित किया जा सकता है?

: २३ :

परीक्षाएं

प्रस्तावना—परीक्षा का मूल्य अब धीरे-धीरे छात्रों की दृष्टि से कम होता जा रहा है और शिक्षकों की दृष्टि से बढ़ता जा रहा है। शिक्षा में आधुनिकतम विचारधारा यह है कि शिक्षा के सभी उद्देश्यों की परीक्षा ली जाए। अगर वे प्राप्त नहीं हो पा रहे हैं तो शिक्षण पद्धति में सुधार किया जाए। शिक्षण पद्धति में अगर कोई कमी नहीं है तो फिर उद्देश्यों पर दृष्टि डाली जाए परन्तु इस सत्यता को कि सिद्धान्त का कोई भी पक्ष ऐसा न हो जो व्यवहार में न उतारा जा सके प्रमाणित किया जाए। निबन्ध प्रधान परीक्षाएँ तो केवल छात्रों के बौद्धिक ज्ञान की ही जाँच करती हैं। अतः वे दोषपूर्ण हैं।

निबन्ध प्रधान परीक्षा प्रणाली के दोष—प्रथम दोष तो यह है कि छात्र और शिक्षक दोनों ही शिक्षा के वास्तविक उद्देश्य को भूलकर परीक्षाओं में सफलता को ही उद्देश्य मान बैठे हैं।

दूसरा दोष यह है कि शिक्षक बालक को पढ़ाने की बजाय पाठ्य-विषयों को पढ़ाने की दौड़ में लग गए हैं।

तीसरा दोष इस परीक्षा-प्रणाली में यह है कि यह छात्र के रटने की तथा कंठाग्र कर लिखने की प्रेरणा व आदत डालती है। बुद्धि से समझ कर कार्य करने की प्रणाली पर कुठाराघात करती है। यही कारण है कि अच्छी शिक्षा प्राप्त करने के प्रमाण-पत्र मिल जाने पर भी उनमें वांछनीय गुणों का विकास नहीं होता।

चौथा दोष यह है कि विचारशक्ति का विकास नहीं करती। छात्र ने जो कुछ पढ़ा उसे मानकर उसे परीक्षा में उत्तर के रूप में लिख देना पड़ता है।

पाँचवाँ दोष यह है कि जीवन की आवश्यकताओं से सामञ्जस्य नहीं रखती। वर्तमान शिक्षा व परीक्षा जीवन की समस्याओं का हल नहीं बताती वरन् केवल एकांगी विकास करने का प्रयत्न करती है।

छठा दोष यह है कि यह परीक्षा-प्रणाली सामूहिक परीक्षा का रूप लिए है जिसमें व्यक्तिगत विकास को कोई स्थान नहीं।

सातवाँ दोष यह है कि इसके द्वारा यह पता नहीं लगता कि बालक की प्रगति की गति क्या है।

आठवाँ दोष यह है कि इसके द्वारा शिक्षक को यह पता नहीं लग पाता है कि उसके शिक्षण में कौन-कौन सी कमियाँ और अच्छाइयाँ हैं। इस कारण वह अपने पढ़ाने में सुधार करने से वंचित रह जाता है।

नवाँ दोष यह है कि [illegible]

एक बार छात्र की परीक्षा की कापी आठ परीक्षकों के पास भेजी गई, उन में दो व्यक्तियों ने प्रथम श्रेणी मे, तीन ने द्वितीय श्रेणी, में एक ने तृतीय श्रेणी मे और दो ने उसे अनुत्तीर्ण घोषित किया। इससे स्पष्ट है कि परीक्षकों के पास उत्तर-पुस्तिकाओं के जाँचने का कोई मापदण्ड नहीं है।

दसवाँ दोष यह है कि बालक को भाग्यवादी बनाती है। कई बार परिश्रम करने पर भी छात्र फेल हो जाते हैं, और कई बार पढ़ाई की ओर अधिक ध्यान न देने वाले छात्र पास हो जाते हैं। तब बालकों को 'अपना भाग्य' कहकर सन्तोष कर लेना पड़ता है।

ग्यारहवाँ दोष यह है कि कतिपय बालकों को अनुत्तीर्ण घोषित करके हतोत्साहित कर उसी कक्षा में नए आने वाले उत्तीर्ण छात्रों के साथ पढ़ाया जाता है, जिसके कारण उत्साह की दृष्टि से उनमें मेल नहीं खाता।

बारहवाँ दोष यह है कि हमारे यहाँ परीक्षाओं की भरमार है। इस प्रकार वर्तमान परीक्षा-प्रणाली दोषपूर्ण है।

परीक्षा की पद्धतियाँ—पद्धति के अनुसार निम्न प्रकार की परीक्षाओं का प्रयोग होता है :—

(१) निबन्धात्मक परीक्षा—इस पद्धति के अन्तर्गत पूछे गए प्रश्नों का उत्तर छात्र, निबन्ध लिखकर दिया करते है। निबन्धात्मक परीक्षा छात्र की योग्यता का सही मूल्यांकन नहीं करती। एक छात्र की उत्तर-पुस्तिका का एक ही परीक्षक द्वारा अलग-अलग परिस्थितियों मे बार-बार मूल्यांकन किया गया; फलस्वरूप भारी अन्तर सामने आया। इसी कारण इस पद्धति में सुधार होने की एवं इसके स्थान पर नवीन पद्धति की स्थापना की आवश्यकता है। परन्तु इस ओर कोई विशेष कदम अब तक नहीं उठाया गया और साधारणतः हमारे देश मे सर्वत्र स्थानों पर इसी पद्धति का प्रयोग हो रहा है।

(२) बुद्धि परीक्षा—किसी प्रश्न के सामने उपस्थित होने पर उचित समय में सब पक्षों को समझकर यथाशुद्ध एवं सही उत्तर जो व्यक्ति शीघ्रता से दे सकता है उसे हम साधारणतः विद्वान व्यक्ति कहते हैं। इस विषय में विस्तार से वर्णन हमारी पुस्तक 'बुनियादी शिक्षा—सिद्धान्त एवं मनोविज्ञान' के बौद्धिक विकास की सीमा एवं बुद्धि परीक्षा नामक पाठ के अन्तर्गत किया जा चुका है। यहाँ तो यही स्पष्ट करना उचित होगा कि इस प्रयोग का श्रीगणेश सन् १९०५ में बिने और साइमन ने किया। उन्होंने तीन से पन्द्रह वर्ष तक के बालकों के लिए प्रश्नावली तैयार की और बालकों पर उसका प्रयोग करके उसमें सुधार किया और उसको प्रमाणित कर दिया। प्रमाणित कर दिए जाने पर वे प्रश्नावलियाँ बालक की बुद्धि [illegible] की जाती है। जो बालक जिस उम्र के बालकों की प्रश्नावली का सही उत्तर दे सकता है वही उस बालक की मानसिक आयु मानी जाती है। [illegible] [illegible] आयु के सम्बन्ध के अनुसार प्रश्नावली का सही उत्तर [illegible] [illegible] सकता है और [illegible] [illegible] के [illegible] के [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

(३) वस्तुनिष्ठ परीक्षा (ग्राब्जेक्टिव टेस्ट्स)—आजकल पदार्थ परीक्षा जिसे वैयक्तिक परीक्षा भी कहते हैं नवीन परीक्षा के रूप में अधिक प्रचार में आती जा रही है। इसमें कुछ निश्चित प्रश्न होते हैं। उन प्रश्नों का स्पष्ट और निश्चित उत्तर कुछ अथवा एक ही शब्द में देना पड़ता है। ऐसी परीक्षा में शिक्षक का व्यक्तिगत दृष्टिकोण परीक्षाफल को किसी भी प्रकार प्रभावित नहीं कर पाता। अतः परीक्षाफल अधिक विश्वसनीय होता है। पदार्थ परीक्षा के निम्न दो प्रमुख प्रकार होते हैं :—

(क) स्मरण परीक्षा—जिसके अन्तर्गत यह जांच की जाती है कि बालक को हुए ज्ञान का कितना अंश स्मरण है। इसके भी दो भाग हैं :—

(अ) साधारण स्मरण परीक्षा—इसके अन्तर्गत सीधे प्रश्न द्वारा जांच की जाती है। जैसे दस फुट चौड़े और पन्द्रह फुट लम्बे कमरे का क्षेत्रफल क्या है? (सही उत्तर दीजिए)।

(आ) पूर्तिकारी परीक्षा—इसके अन्तर्गत रिक्त स्थान की पूर्ति की जाती है जैसे दस फुट चौड़े और पन्द्रह फुट लम्बे कमरे का क्षेत्रफल···होता है। (पूर्ति कीजिए)।

(ख) विकल्प परीक्षा—इसके अन्तर्गत दिए गए विकल्प को पहचानना पड़ता है। इसके निम्न भाग होते हैं :—

(अ) बहु-विकल्प परीक्षा—इसके अन्तर्गत दो से अधिक उत्तर अंकित कर दिये जाते हैं और सही उत्तर पर सही का निशान (√) लगाने को कहा जाता है। जैसे महाराणा प्रताप के पिता का नाम था? (१) संग्रामसिंह (२) अमरसिंह, (३) उदयसिंह, (४) रत्नसिंह।

(आ) द्विविकल्प परीक्षा—इसके अन्तर्गत पूछे गए प्रश्नों के केवल दो ही उत्तर हैं। इस क्रम में सत्य एवं असत्य को बालक स्पष्ट करता है जैसे—

(१) महाराणा प्रताप के पिता का नाम उदयसिंह था। सत्य/असत्य।

(२) क्या अकबर के पिता का नाम हुमायूं था? हां/नहीं।

(३) किसी प्रदेश का सबसे बड़ा मंत्री, प्रधान मंत्री/मुख्य मन्त्री कहलाता है।

ऐसे प्रश्नों के उत्तर में बालक गलत शब्दों को काट दिया करते हैं।

(इ) भिन्न सम्बन्ध परीक्षा—इस जांच के अन्तर्गत अधिकांशतः एक ही प्रकार के शब्दों में एक शब्द बेमेल भी रख दिया जाता है। ऐसे शब्द को ढूंढ निकालने को कहा जाता है। जैसे—आगामी चार शब्दों के समूह से वह शब्द काट दीजिए जो उस समूह का नहीं है :—पेन्सिल, कलम, निर्झर, लेखनी, लकड़ी।

(ई) मैचिंग टेस्ट—इस परीक्षा के अन्तर्गत दो समूह में बातों को लिख दिया जाता है। एक समूह में लिखी गई बातों से मिलती हुई बातें दूसरे समूह में लिखी जाती हैं। जितनी बातें एक समूह में होती हैं साधारणतः उतनी ही बातें दूसरे समूह में होती हैं। छात्रों से उपयुक्तता की दृष्टि से दोनों समूहों में लिखी गई बातों का मेल मिलाने को कहा जाता है। जैसे—

प्रथम समूह में लिखी गई जानकारी दूसरे समूह में लिखे गए स्थानों में किसी

एक स्थान पर मिलेगी। उसे प्रथम समूह में अंकित कोष्ठ में उपयुक्तता की दृष्टि से अंकित कीजिए।

( ) शिक्षा के अर्थ	(१) पश्चिमी शिक्षा का इतिहास
( ) भारतीय गणराज्य के प्रधान मन्त्री के अधिकार	(२) शिक्षा सिद्धान्त
( ) रूसो की शिक्षण पद्धति	(३) हमारा संविधान
( ) गंगा नदी का उद्गम व मार्ग	(४) स्वास्थ्य शिक्षा
( ) बच्चों का स्वास्थ्य	(५) नवीन एटलस—शास्त्र

उपरोक्त परीक्षा में पांच से पन्द्रह तक प्रश्न पूछे जा सकते हैं।

(ज) पुनर्व्यवस्थीकरण परीक्षा—इस परीक्षा के अन्तर्गत दी गई जानकारी अव्यवस्थित रूप में प्रस्तुत की जाती है। छात्रों से उस सम्पूर्ण जानकारी को व्यवस्थित रूप से जमाने को कहा जाता है। व्यवस्थित करने के अन्तर्गत क्रम जैसे छोटे से बड़े की ओर, आरम्भ से अन्त की ओर आदि को स्पष्ट कर दिया जाता है। जैसे :—

जिस समय क्रम के अनुसार सवारियों का उपयोग शुरू हुआ वह क्रम सामने लिखे गए कोष्ठ में लिख कर स्पष्ट कीजिए :—

(   ) रेल का उपयोग।
(   ) गाड़ी का उपयोग।
(   ) वायुयान का उपयोग।
(   ) घोड़े का उपयोग।
(   ) मनुष्य का उपयोग।

पदार्थ परीक्षा के अन्तर्गत कुछ अन्य परीक्षाएँ भी आती हैं, परन्तु वर्तमान पुस्तक के क्षेत्र को दृष्टि में रखते हुए उपरोक्त परीक्षाओं का ही वर्णन दिया जाना उपयुक्त समझा जा रहा है।

(४) सम्प्राप्ति परीक्षा (एचीवमेण्ट टैस्ट)—शिक्षक ने बालक को किस योग्यता से ज्ञान दिया है अथवा बालक ने किस हद तक अपनी योग्यता को बढ़ाया, इस विषय की जांच सम्प्राप्ति परीक्षा द्वारा की जाती है। इसी परीक्षा को अंग्रेजी भाषा में 'एचीवमेंट टैस्ट' कहते हैं। प्रत्येक आयु के छात्र के लिए प्रश्नावली तैयार की जाती है। प्रश्नावली में सभी विषय के प्रश्नों का समावेश किया जाता है। उसका छात्र पर प्रयोग किया जाता है। प्रयोग के आधार पर उनमें सुधार किया जाता है और अन्तिम रूप दिया जाता है। इस प्रकार आठ वर्ष की आयु के छात्र के लिए तैयार की गई प्रश्नावली का जो छात्र पूर्णतः सही उत्तर दे सकता है उसकी सम्प्राप्ति आयु एवं पठन-आयु आठ वर्ष मानी जाएगी। अगर इस छात्र की जन्म के अनुसार आयु भी आठ वर्ष है तब उसकी पठन-योग्यता साधारण मानी जाएगी। जन्म के अनुसार आठ वर्ष की आयु का कोई छात्र पांच वर्ष की आयु के छात्रों की प्रश्नावली का ही सही उत्तर दे सकता है और कोई छात्र बारह वर्ष की आयु के छात्रों की प्रश्नावली का सही उत्तर दे सकता है, तो प्रथम की पठन-योग्यता

कम एवं दूसरे की अधिक मानी जाएगी।

(५) विशेष योग्यता परीक्षा—अध्ययन काल में छात्र अपना विकास करते हुए कुछ विषय में विशेष योग्यता प्राप्त कर लेता है और कुछ विषय में उसका स्तर साधारण स्तर से भी नीचे रह जाता है। इस बात की जांच समय-समय पर होती रहना जरूरी है। यह परीक्षा बालक की विभिन्न विषय में योग्यता के विकास की सीमा को मापती है। यह परीक्षा शिक्षक को यह स्पष्ट करने में सहायक होती है कि बालक आज क्या कर सकता है और बालक के विकास के वे कौन से अंग हैं जिनमें वह पिछड़ता जा रहा है। इस परीक्षा को अंग्रेजी भाषा में 'स्पेशल एबीलिटीज़ टेस्ट' कहते हैं।

(६) अभिरुचि परीक्षा—विशेष योग्यता परीक्षा जहां यह स्पष्ट करती है कि बालक में आज किन विषयों में विशेष योग्यता प्राप्त हो गई है, वहां अभिरुचि परीक्षा यह स्पष्ट करती है कि बालक की रुचि किस ओर है और वह भविष्य में क्या करने की शक्ति रखता है। यह परीक्षा बालक की छिपी हुई उन योग्यताओं का पता लगाती है जिनको अब तक विकास का अवसर नहीं मिल पाया है।

(७) पूर्व निदानात्मक परीक्षा—आज बहुउद्देशीय विद्यालय लगातार खुलते चले जा रहे हैं। छात्रों के लिए अनेकों मार्ग खुल गए हैं। कौनसा मार्ग अपनाया जाए यह छात्रों व संरक्षकों के लिए महत्वपूर्ण प्रश्न बन गया है। इस प्रश्न का उत्तर पूर्व-निदानात्मक परीक्षा देती है। छात्र के नवीन शाखा में प्रवेश एवं नवीन विषयों के चुनाव के समय इसका प्रयोग विदेशों में होता है। हमारे देश में भी इसकी आवश्यकता बढ़ती जा रही है। अब वह समय आ गया है जब पूर्व-निदानात्मक परीक्षा के निर्णय को हमारे देश में भी अंतिम निर्णय माना जाए। ऐसा होने पर विषयों के गलत चुनाव में राष्ट्र का धन और शक्ति जो आज नष्ट हो रही है वह नहीं होगी।

(८) निदानात्मक परीक्षा—छात्रों की परीक्षा के फल को देखकर, उनकी कमजोरियों को दूर करना, परीक्षक का महत्वपूर्ण कर्तव्य है। इस कर्तव्य की पूर्ति में सहायता हेतु शिक्षक छात्र की जांच करता है। वही जांच निदानात्मक परीक्षा कहलाती है। इसके द्वारा यह पता लगता है कि छात्र की कौन-सी ऐसी परिस्थितियां और कठिनाइयां हैं जो विकास में बाधक हो रही हैं। उनको दूर करके बालक के विकास में योग दिया जाता है। इस दृष्टि से इस परीक्षा का शिक्षा में बहुत महत्वपूर्ण स्थान है।

(९) कुछ अन्य परीक्षाएँ—शिक्षा में आज और भी अनेकों परीक्षाएँ प्रयोग में आ रही हैं। इनमें से कुछ इस प्रकार है :—

(क) वाद-विवाद प्रतियोगिता, (ख) खेल प्रतियोगिता, (ग) रचनात्मक रचनाओं की प्रतियोगिता, (घ) लेख प्रतियोगिता, (ङ) मौखिक परीक्षा।

उपरोक्त परीक्षाओं में से प्रत्येक का अपना एक विशिष्ट महत्व है। इसी महत्व की दृष्टि से समय-समय पर शालाओं में उनका प्रयोग होता है।

परीक्षा ▮ नवीनतम दृष्टि—यद्यपि वर्तमान परीक्षाओं के उद्देश्य ने बहुत

सी सहूलियतें पैदा कर दी। उदाहरणतः उनसे परीक्षा थोड़े समय में होने लगी, उनमें छात्रों के ज्ञान के अधिक विस्तृत क्षेत्र की जाँच होने लगी। उत्तर-पुस्तिकाओं के अंकन में समानता आने लगी फिर भी यह सारा कार्य अपूर्ण ही रहा। इसलिए कि इससे भी बालक के संपूर्ण व्यक्तित्व की जाँच होना संभव नहीं हुआ। शिक्षा तो बालक को ज्ञान ही नहीं देती वरन् उसके व्यवहार में परिवर्तन लाने का प्रयत्न करती है। उसके बौद्धिक स्तर के अतिरिक्त व्यवहार स्तर की जाँच के काम में लोगों को अब भी काफी काम करना बाकी है।

पाठ की इकाइयाँ और उनके द्वारा बालक पर प्रभाव—पाठ की प्रत्येक इकाई (यूनिट) के अन्तर्गत जो ज्ञान-ग्रहण की स्थितियाँ (लर्निंग सिच्युएशन्स) छात्र के लिए पैदा होती हैं उनसे साधारणतः निम्नलिखित उद्देश्यों की पूर्ति होने की आशा की जानी चाहिए:—

(१) छात्र के ज्ञान की वृद्धि हो।

(२) छात्र में उस ज्ञान के आधार पर सामान्यकृत धारणाओं का निर्माण हो।

(३) उसमें इस ज्ञान में सूझबूझ पैदा हो।

(४) उसकी रुचि और मनोवृत्ति उस ओर लगने लगे।

(५) उसमें उस क्षेत्र में कार्य करने की दक्षता पैदा हो।

(६) उस क्षेत्र के प्रति उसमें क्लाधाएँ विकसित हों।

उपरोक्त उद्देश्यों की पूर्ति किस सीमा तक हो पा रही है इसकी जाँच होनी चाहिए। ऐसी जाँच कि जिससे बालक का सर्वांगीण विकास जाँचा जा सके। इस जाँच के लिए लम्बे समय तक अवसर आने का इन्तजार भी न किया जाए वरन् एक इकाई के पूरे होते ही उसके शिक्षण के उद्देश्य पूरे हुए या नहीं यह जाँचा जाए। इससे पाठ की प्रभावोत्पादकता बराबर बनी रहेगी और बालक में सर्वांगीण विकास का क्रम चालू रहेगा। अगर जाँच से वांछित उद्देश्यों की पूर्ति नहीं होती तो फिर पाठ्यक्रम और शिक्षा पद्धति पर विचार किया जाए कि उनमें क्या-क्या कमियाँ हैं या फिर यह देखा जाए कि जो उद्देश्य निश्चित किए गए हैं उनमें कहाँ सुधार होना चाहिए।

पाठ के उद्देश्य, ज्ञान ग्रहण की स्थितियाँ और परीक्षा का सम्बन्ध—वास्तव में उद्देश्यों को सामने रखकर ही पाठ योजना तैयार की जाती है। इसके द्वारा बालक के सामने ऐसी स्थितियाँ उपस्थित की जाती हैं जिनसे [illegible] और वह सुधरता जाए। इस परिवर्तन की ही हम परीक्षा भी करते [illegible] है। अतः बालक के लिए ज्ञान ग्रहण की परिस्थितियों का निर्माण [illegible] प्रकार उद्देश्य प्राप्ति में सहायक होता है, वैसे ही बालक का परीक्षण भी [illegible] प्राप्ति में सहायक होता है। अतः उद्देश्य, ज्ञान ग्रहण की परिस्थितियाँ और परीक्षा—तीनों ही एक दूसरे से सम्बद्ध हैं।

परीक्षा की वस्तुनिष्ठ पद्धति—[illegible] आधार पर ही [illegible] इतना विस्तृत और व्यापक बनता जा रहा है कि [illegible]

बहुमुखी परिवर्तन को समझा जा सके। इस दृष्टि से निम्नलिखित तरीकों को अपनाना जरूरी है :—

(१) लिखित परीक्षा:—इसमें लिखित उत्तर की अपेक्षा की जाती है। वह उत्तर लेख के रूप में या पदार्थ परीक्षा के संक्षिप्त उत्तरों की तरह हो सकता है। इससे छात्रों के बौद्धिक-ज्ञान, उनकी तार्किक शक्ति, उनकी वर्णन शक्ति, स्मरण शक्ति और जानकारी को व्यवस्थित रूप में प्रस्तुत करने की योग्यता की जाँच की जा सकती है।

(२) व्यवहार निरीक्षण—इसमें छात्र के व्यवहार पर नजर रखकर उसका समाज में व्यवस्थीकरण, एवं भावनात्मक विकास को जाँचने का यत्न किया जाता है। इसमें उन अवसरों का बड़ा महत्त्व है जहाँ छात्र का विशेष प्रकार का व्यवहार उन बातों को प्रमाणित करने में सहायक होता है।

(३) प्रश्नावलियों का प्रयोग—छात्रों के सामने प्रश्नावलियाँ प्रस्तुत करके, उनके प्रभावों का अध्ययन किया जाता है। इससे उनकी रुचियों और मनोवृत्तियों का अध्ययन करने में मदद मिलती है।

(४) साक्षात्कार पद्धति—छात्रों से साक्षात्कार किया जाकर उनकी रुचियों और मनोवृत्तियों का अध्ययन किया जाता है और होने वाले परिवर्तन की जाँच की जाती है।

(५) छात्रों के कार्य का निरीक्षण—छात्रों के कार्य से उनकी कार्य करने की दक्षता और रुचि को समझने में मदद मिलती है।

(६) छात्रों का लेखा-जोखा—छात्र का प्रगतिपत्र (क्यूमूलेटिव रेकार्ड), उसकी दैनिक डायरी, उसके समाज सेवा के कार्य का ब्योरा, उसका पुस्तकालय का खाता आदि सभी बालक के परीक्षण के अच्छे साधन हैं।

इस प्रकार आज बालक के सभी पक्षों की जाँच का क्रम शुरू हुआ है। बालक, शिक्षा और अभिभावक सभी के लिए लाभकारी है।

उपसंहार—इस प्रकार आज परीक्षा का उद्देश्य बड़ा व्यापक हो गया है। यह बालक की प्रगति की जाँच करती है, उसे प्रगति करने में मदद देती है और शिक्षक को अपने प्रयत्न की सफलताओं एवं असफलताओं के प्रति सजग करती है। बुनियादी शाला के छात्रों की ऐसी व्यापक जाँच बुनियादी शाला की प्रगति में निश्चित ही सहायक हो सकती है।

सारांश

प्रस्तावना—परीक्षा के बाबत आधुनिकतम विचारधारा यह है कि शिक्षा के सभी उद्देश्यों की पूर्ति किस सीमा तक हो रही है उसकी जाँच की जाए।

प्रचलित प्रणाली के दोष :—

(१) शिक्षा के वास्तविक उद्देश्य दूर हैं।
(२) बालकों [illegible] बजाय पाठ्य-विषयों को अधिक महत्त्व देती है।
(३) रटने की आदत का पड़ना।
(४) विचारशक्ति के विकास का न हो सकना।

(५) जीवन की आवश्यकताओं से सामंजस्य न रखना।

(६) व्यक्तिगत विकास की परीक्षा न होना।

(७) बालक को प्रगति का पता नहीं लगता।

(८) शिक्षक को अपने कार्य को सुधारने में मदद नहीं मिलती।

(९) जांचने की अनुपयुक्त प्रणाली।

(१०) बालक को भाग्यवादी बनाना।

(११) उत्साहित और हतोत्साहित बालकों को एक ही कक्षा में रखना।

(१२) परीक्षाओं की भरमार होना।

परीक्षा की पद्धतियां—बालकों की परीक्षा की निम्नलिखित पद्धतियां हैं:—

(१) निबन्धात्मक परीक्षा, (२) बुद्धि परीक्षा, (३) वस्तुनिष्ठ परीक्षा—(क) स्मरण परीक्षा (ख) पहिचान परीक्षा, (४) सम्प्राप्ति परीक्षा, (५) विशेष योग्यता परीक्षा (६) अभिरुचि परीक्षा, (७) पूर्व निदानात्मक परीक्षा, (८) निदानात्मक, परीक्षा (९) कुछ अन्य पद्धतियां।

परीक्षा में नवीनतम दृष्टि—शिक्षा बालक को ज्ञान देने के अतिरिक्त उसके व्यवहार में भी परिवर्तन लाती है। अतः उसके बौद्धिक-स्तर और अन्य स्तर सभी की जांच हो।

पाठ की इकाइयां और उनका बालकों पर प्रभाव—पाठ इकाइयां बालक के ज्ञान की वृद्धि करती है। उसमें सामान्यकृत धारणाओं का निर्माण करती है। सूझ-बूझ पैदा करती है। रुचि और मनोवृत्ति को प्रभावित करती हैं। दक्षता पैदा करती है। उसमें कलाधाराओं को विकसित करती हैं।

पाठ के उद्देश्य शैक्षणिक अनुभव और परीक्षण का आपस सम्बन्ध—ये सभी एक दूसरे से सम्बन्ध हैं।

परीक्षा की नवीनतम पद्धति—इसमें लिखित परीक्षा, व्यवहार परीक्षा प्रश्नावलियों का प्रयोग, साक्षात्कार, कार्य-निरीक्षण और लेखा-जोखा सभी का प्रयोग होता है।

उपसंहार—बुनियादी शाला के छात्रों को व्यापक जांच बुनियादी शाला को प्रभावपूर्ण और सफल बनाने में निश्चित ही सफल हो सकेगी।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(१) वर्तमान परीक्षा-प्रणाली के क्या दोष हैं? पदार्थ-परीक्षाएँ इन दोषों को किस सीमा तक दूर करने में सफल हो सकती हैं।

(२) परीक्षा के बारे में नवीनतम धारणा क्या है? यह धारणा हमारी परीक्षा पद्धति के दोषों को किस प्रकार दूर कर सकती है?

: २४ :

छात्रावास

छात्रावास की महत्ता—किसी पाठशाला, विद्यालय आदि के साथ उसमें पढ़ने वाले छात्रों के निवास हेतु जो स्थान, रहन-सहन की सुविधा हेतु होता है, उसी वास-स्थान को छात्रालय कहते हैं। हमारे देश में छात्रावासों का अभाव है परन्तु छात्रों में समान प्रकार की आदतों के निर्माण की दृष्टि से छात्रावासों का शिक्षा में बड़ा महत्त्व है। छात्रावास, शाला के द्वारा किये गए कार्य के पूरक हैं। छात्रावास छात्रों को समय और स्थान की दृष्टि से काम करने का बड़ा सुन्दर प्रशिक्षण देकर उनमें अधिक विस्तृत एवं व्यापक सामाजिक दृष्टिकोण का विकास करने के साधन हैं। हमारे देश की भावी शिक्षा में छात्रावास के प्रसार की पर्याप्त सम्भावना है।

छात्रावास की उपयोगिताएँ—छात्र के लिए छात्रावास की उपयोगिता सिद्ध करने के लिए निम्न अंगों पर प्रकाश डालना आवश्यक है :—

(१) चरित्र गठन—छात्रावास में रहने वाले छात्रों का चरित्र उज्ज्वल बन जाता है। क्योंकि छात्रावास के प्रबन्धकर्ता अध्यापक का चरित्र उन बालकों के लिए आदर्श बनता है। अतः व्यवस्थापक का चरित्र छात्रों के लिए अनुकरणीय आदर्शों से भरपूर होना चाहिए।

(२) पारस्परिक सहयोग—पारस्परिक सहयोग की भावना के भी छात्रावास में कई अवसर आते हैं। परोपकार, दूसरों की सेवा, परस्पर मिल-जुल कर काम करना। रोगी सेवा आदि कार्य बालक छात्रावास में बड़ी लगन के साथ सीख सकते हैं। मित्रता की भावना के प्रस्फुरण, विस्तरण एवं प्रगाढ़ता का सुअवसर छात्रावास में अधिक मिलता है। अतः इस दृष्टि से भी छात्रावास बड़े सफल सिद्ध हो सकते हैं।

(३) वातावरण—छात्रावास का वातावरण बड़ा सगठित होता है। छात्रावास के समान वातावरण बालक घर पर भी नहीं प्राप्त कर सकते। घर की अपेक्षा छात्रावास में छात्र स्वस्थ वातावरण में पलता है। केवल यह ध्यान रखने की आवश्यकता है कि व्यवस्थापक अध्यापक का व्यवहार ऐसा हो कि छात्र को माता पिता का अभाव व उनके स्नेह का अभाव न खटके। सभी छात्रों के साथ निष्पक्ष, समानता, स्नेह तथा सहानुभूति का व्यवहार होना चाहिए।

(४) स्वच्छता—स्वच्छता देवत्व के निकट है। इस स्वच्छता में मानसिक और शारीरिक दोनों प्रकार की स्वच्छताएँ सम्मिलित हैं। बालक छात्रावास में दोनों प्रकार की स्वच्छता सीखता है। मानसिक स्वच्छता से चरित्र का निर्माण होता है और शारीरिक स्वच्छता से शरीर और चरित्र दोनों ही का। छात्रावास में बालक दोनों प्रकार की स्वच्छता सीखता है। शारीरिक स्वच्छता में बालक सम्पूर्ण

भवन की सफाई करना भी सीखता है और स्वयं अपने रहने के स्थान को भी [illegible] रखना सीखता है। इस प्रकार स्वच्छ रहने की आदत पड़ जाती है।

(५) सन्तुलित आहार—छात्रावास में रहने के कारण छात्र को पौ[illegible] सन्तुलित आहार भी सुविधापूर्वक प्राप्त हो सकता है। छात्र को स्वास्थ्यवर्धक [illegible] ही मिलना चाहिए। घर पर इस ओर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता क्योंकि घर [illegible] भोजन सुस्वादु होता है, चाहे स्वास्थ्यवर्धक भले ही न हो। अतः [illegible] स्वास्थ्यवर्धक पौष्टिक भोजन केवल छात्रावास ही में उपलब्ध हो सकता [illegible] व्यवस्थापक को ध्यान रखना चाहिए कि बालकों को भोजन में हरी शाक-भा[illegible] आदि वस्तुएँ अधिक प्रदान करे। फल-फूल, मौसमी फल, दूध आदि की व्यव[illegible] अधिक की जाए। इस तरह सन्तुलित आहार से बालकों का स्वास्थ्य सुधार [illegible] सकता है।

(६) नियमितता—जीवन में नियमितता का बड़ा भारी महत्व है। घर [illegible] रहने वाले छात्र समय की नियमतता नहीं सीख पाते। कभी प्रातः ६ बजे उठे [illegible] कभी ५ बजे और कभी ७ बजे। छात्रावास में बालकों को समय की पाबन्दी सीखने का पूरा अवसर प्राप्त होता है जिससे बालक समय का मूल्य समझते हैं। छात्राव[illegible] में दैनिक समय नियमित कार्यों में विभाजित रहता है। ऐसे कार्यक्रम से [illegible] निर्माण में सहायता मिलती है।

छात्रावास के प्रबन्ध की ज्ञातव्य बातें—

(१) छात्रावास के व्यवस्थापक को भली-भाँति ध्यान रखना चाहि[illegible] छात्रावास का प्रत्येक छात्र छात्रावास के नियमों का अक्षरशः पालन करे।

(२) पहला सुख निरोगी काया के आधार पर व्यवस्थापक का यह कर्तव्य है कि छात्रावास के बालकों को निरोगी रखे। समय-समय पर या कम से एक मास में एक बार छात्रों की डाक्टरी जाँच करानी चाहिए। यदि कोई रोगी है तो उसका उपचार शीघ्र कराया जाना चाहिए। यदि रोग दृढ़ [illegible] रोगी छात्र को अस्पताल में भरती कराना चाहिए अथवा बीमार छात्रों के [illegible] छात्रावास में ही अलग प्रबन्ध होना चाहिए।

(३) साथ ही बालकों को स्वच्छता, शुद्धता और सफाई का मूल्य समझ[illegible] उनके कपड़ों की, बिस्तर की सफाई उन्हीं से नित्य-प्रति करानी चाहिए। [illegible] स्नान, दन्तधावन आदि अवश्य करें। सफाई का निरीक्षण स्वयं व्यवस्थापक [illegible] नित्य किया जाना नितान्त आवश्यक है।

(४) छात्रावास का प्रबन्ध छात्रों द्वारा ही कराया जाना चाहिए। यदि [illegible] बड़े हैं, समझदार हैं तो भोजन-व्यवस्था आदि भी उन्हीं से कराई जानी [illegible] अन्यथा उत्सवों, वयन्तियों, वाचनालय, पुस्तकालय, स्वच्छता निरीक्षण आदि [illegible] प्रबन्ध उन्हीं से कराना चाहिए जिससे उनमें नेतृत्व का विकास हो सके। [illegible] आत्मनिर्भरता एवं स्वावलम्बन की भावना दृढ़ होती है।

(५) छात्रों को अपने पैसे अपने पास न रखने देने चाहिएँ। व्यवस्थापक [illegible] पास जमा कर दिया करें जिससे बालकों में चोरी की आदत न पनप हो सकती [illegible]

(६) छोटे बालकों को कमरे में ३ छात्र प्रति कमरे के हिसाब से रखना चाहिए। न तो कमरे में अकेले छात्र को ही रहने दिया जाना चाहिए और न दो ही छात्रों को। बड़े छात्रों को अलग-अलग कमरों में रखा जा सकता है।

(७) छात्रावास में सांस्कृतिक उत्सव भी होते रहने चाहिएँ, जिससे छात्रों का सांस्कृतिक विकास होगा।

(८) छात्रों को देखने उनके माता-पिता यदि कभी आएँ तो उनको ठहराने के लिए अतिथि-गृह होना चाहिए, ताकि छात्र उनको वहाँ ठहरा सकें तथा उनसे मिल सकें। बिना जान-पहचान वाले व्यक्ति को छात्रावास में न ठहरने दिया जाना चाहिए।

(९) छुट्टियों के दिन प्रायः बालक इधर-उधर भटकते हैं। अतः उनके लिए खेल-खेल की सामग्री जुटाई जानी चाहिए अथवा उनको किसी क्रियात्मक कार्य में लगाया जाना चाहिए।

(१०) छुट्टियों का प्रयोग अधिक अध्ययन में किया जा सकता है। अतः छात्रालय में पुस्तकालय तथा वाचनालय की व्यवस्था भी होनी चाहिए जिसका प्रबन्ध छात्रों के हाथ में ही हो।

(११) जल, भोजन, रोशनी, हवा आदि का उचित प्रबन्ध किया जाना चाहिए ताकि बालकों को किसी प्रकार की हानि न हो।

बुनियादी शाला का छात्रावास—यद्यपि छात्रावास शालाओं और विद्यालयों से सम्बन्धित होते हैं तथापि प्रायः यह देखा जाता है कि दोनों स्वतन्त्र अस्तित्व के रूप में कार्य करते हैं। एक दूसरे से उनका समन्वय नहीं होता। बुनियादी-शाला के छात्रावास में यह बात न होनी चाहिए। छात्रावास और शाला का समन्वय श्री विनोबा ने अपने शब्दों में "कौटुम्बिक पाठशाला" कह कर किया है। उन्होंने कहा है कि "मदरसे में घर घुसना चाहिए। समाजशास्त्र को चाहिए कि शालीन कुटुम्ब निर्माण करे और शिक्षण शास्त्र को चाहिए कि कौटुम्बिक पाठशाला स्थापित करे। ......छात्रालय अथवा शिक्षकों के घर को शिक्षा की बुनियादी मान कर उस पर शिक्षण की इमारत रचने वाली शाला ही कौटुम्बिक शाला है।" इस प्रकार श्री विनोबा जी ने यह स्पष्ट कर दिया है कि छात्रालय और शाला दोनों का भिन्न अस्तित्व नहीं होना चाहिए वरन् इसका रूप वही होना चाहिए जैसा कि प्राचीन काल में गुरुओं के घर का होता था। शिष्य वहाँ रह कर न केवल किताबों की शिक्षा ही प्राप्त करते थे वरन् जीवन की शिक्षा प्राप्त करते थे। यही रूप बुनियादी-शाला के छात्रावास का भी होना चाहिए। श्री विनोबा जी ने ऐसे छात्रावास के लिए कतिपय नियम दिये हैं वे इस प्रकार हैं :—

(१) ईश्वर निष्ठा संसार में सार वस्तु है इसलिए नित्य के कार्यक्रम में दोनों समय सामुदायिक उपासना या प्रार्थना होनी चाहिये। प्रार्थना का स्वरूप सन्त वचनों की सहायता से ईश्वर स्मरण होना चाहिए। उपासना में एक भाग नित्य के किसी निश्चित पाठ को देना चाहिए। "सर्वेषामविरोधेन्" यह नीति हो। एक प्रार्थना रात को सोने के पहले होनी चाहिए और दूसरी सुबह सोकर उठने पर।

(२) आहार-शुद्धि का चित्त-शुद्धि से निकट सम्बन्ध है, इसलिए आ[illegible] सात्विक होना चाहिए। गरम मसाला, मिर्च, तले पदार्थ, चीनी और दूसरे नि[illegible] पदार्थों का त्याग करना चाहिए। दूध और दूध से बने पदार्थों का मर्यादित उप[illegible] करना चाहिए।

(३) ब्राह्मण से या दूसरे किसी रसोइये से रसोई नहीं बनवानी चाहिए। रसोई की शिक्षा भी शिक्षा का एक अंग है। सार्वजनिक काम करने वालों के लि[illegible] रसोई का ज्ञान जरूरी है। सिपाही, प्रवासी, ब्रह्मचारी सबको यह आना चाहिए। स्वावलम्बन का यह एक अंग है।

(४) पाखाने का काम भी अपने हाथ में लेना चाहिए। अस्पृश्यता-निवार[illegible] का अर्थ किसी भी मनुष्य से छुआछूत न मानना ही नहीं है, किसी भी समाजोप[illegible] काम से नफरत न करना भी है। पाखाना साफ करना अंत्यज का काम है, [illegible] भावना चली जानी चाहिए। इसके अलावा स्वच्छता की सच्ची तालीम भी इसी में है। इसमें सार्वजनिक स्वच्छता रखने के ढंग का अभ्यास है।

(५) भोजन के समय पंक्तिभेद रखना भी संभव नहीं। आहार शुद्धि [illegible] नियम रखना काफी है।

(६) स्नानादि प्रातः कर्म सवेरे ही कर डालने का नियम होना चाहिए। स्वास्थ्य भेद से अपवाद रखा जा सकता है। स्नान ठण्डे पानी से करना चाहिए।

(७) प्रातः कर्म की तरह सोने से पहले के 'सायं-कर्म' भी जरूर [illegible] चाहिए। सोने से पहले देह-शुद्धि आवश्यक है। इस सायं-कर्म का गाढ़ [illegible] ब्रह्मचर्य से सम्बन्ध है। खुली हवा में अलग-अलग सोने का नियम होना चाहिए।

(८) उद्योग-कार्य पर किताबी शिक्षा की अपेक्षा अधिक जोर देना चाहि[illegible] इसके बिना अध्ययन तेजस्वी नहीं हो सकता। "कर्मातिशेषेण" अर्थात् काम [illegible] बचे हुए समय में वेदाध्ययन करना श्रुति का विधान है।

(९) उद्योग-कार्य नियमित रूप से करने तथा गृह-कृत्य और सफाई [illegible] करने का नियम रखने के बाद दोनों समय व्यायाम करने की जरूरत नहीं है। [illegible] भी एक समय अपनी-अपनी जरूरत के मुताबिक खुली हवा में खेलना, घूमना [illegible] कोई विशेष व्यायाम करना उचित है।

(१०) कातने को राष्ट्रीय धर्म तथा प्रार्थना की भांति नित्य कर्म में [illegible] चाहिए। उसके लिए उद्योग के समय के अलावा कम से कम आधा घन्टा समय दे[illegible] चाहिए। इस आधे घन्टे में तकली का उपयोग करने से भी काम चल जाएगा।

(११) कपड़े में खादी ही बरतनी चाहिए। दूसरी चीजें भी जहां तक [illegible] हो स्वदेशी ही लेनी चाहिएं।

(१२) सेवा के सिवा दूसरे किसी भी काम के लिए रात को जागना नहीं चाहिए। बीमार आदमी की सेवा इसमें अपवाद है। पर मौज के लिए या ज्ञान प्राप्ति के लिए भी रात्रि-जागरण निषिद्ध है। नींद के लिए ढाई पहर रखने चाहिएं।

(१३) रात को भोजन नहीं करना चाहिए। आरोग्य, व्यवस्था और अहिंसा तीनों दृष्टियों से इस नियम की आवश्यकता है।

(१४) प्रचलित विषयों में सम्पूर्ण जागृति रखकर वातावरण को निश्चल रखना चाहिए।

बुनियादी शाला के छात्रावास का दैनिक कार्यक्रम—इस प्रकार श्री विनोबा भावे ने बुनियादी-शाला के छात्रावास के पालनार्थ कुछ नियम बताए हैं। इन नियमों के आधार पर बुनियादी-शाला के छात्रावास का दैनिक कार्यक्रम इस प्रकार होगा—

प्रातः ५ बजे उठना।

प्रातः ५ बजे से ५½ बजे तक शौच, दंतधावन आदि।

प्रातः ५½ बजे से ६ बजे तक सफाई जिसमें कमरे की सफाई, भवन की सफाई, पाखाने की सफाई सम्मिलित है।

प्रातः ६ बजे से ६½ बजे तक स्नान।

प्रातः ६½ बजे से ७ बजे तक प्रार्थना, जिसके साथ सतवाणी, प्रवचन आदि।

प्रातः ७ बजे से ७½ बजे तक कताई।

प्रातः ७½ बजे से ८½ तक छात्रावास में उद्योग-कार्य जिसमें शाला के उद्योग गृह-कार्य भी किया जा सकता है।

प्रातः ८½ बजे से १०½ बजे तक भोजन बनाना तथा खाना आदि। भोजन के लिए चार-चार लड़कों की टोली बनाई जा सकती है। टोली ४ लड़कों से बड़ी न होनी चाहिए।

प्रातः १०½ बजे से १०½ बजे तक शाला की तैयारी और शाला में पहुँचना।

प्रातः १०½ बजे से सायं ४½ बजे तक शाला का दैनिक समय (उद्योग कार्य एवं अध्ययन)।

सायं ४½ बजे से ५ बजे तक अल्प जलपान।

सायं ५ बजे से ५½ बजे तक खेल, व्यायाम आदि।

सायं ५½ बजे से ६ बजे तक शौच आदि।

सायं ६ बजे से ७½ बजे तक भोजन बनाना व खाना।

सायं ७½ बजे से ८ बजे तक टहलना (केवल ग्रीष्म ऋतु में)।

रात्रि ८ बजे से ९½ बजे तक स्वाध्याय अथवा शाला का लिखित गृह-कार्य आदि।

रात्रि ९½ बजे से १० बजे तक प्रार्थना (सोने के पूर्व की)।

रात्रि १० बजे सो जाना।

इसके साथ ही छुट्टी के दिनों में सांस्कृतिक कार्य, श्रमदान, समाज सेवा आदि कार्यक्रम अथवा गृह खेल, विनोद कार्य, अन्य मनोरंजन के कार्य आदि रखे जा सकते हैं। इस तरह अवकाश का पूरा लाभ उठाया जा सकता है।

बुनियादी शाला के छात्रावास का व्यवस्थापक—बुनियादी-शाला के छात्रावास का व्यवस्थापक स्वयं एक ऐसा जीवन व्यतीत करेगा जिससे छात्रों को उसके जीवन का अनुसरण कर अपने जीवन को सुधारने का अवसर मिलेगा। उसका जीवन बुनियादी शिक्षा के सिद्धान्तों पर पूर्णतः ढला हुआ होगा। जीवन की सात्विकता का जीता-जागता स्वरूप व्यवस्थापक के जीवन में देखने को मिलना चाहिए।

स्वावलम्बन के सिद्धान्तों पर आधारित उसके जीवन में उद्योग की महत्ता, नैतिकता, नियमितता, समय की पाबन्दी, चारित्रिक उच्चता आदि गुणों का समावेश होना अत्यन्त आवश्यक है। तात्पर्य यह है कि उसके जीवन के आधार पर छात्र जीवन बिताने की कला सीख सकें। अपनी आवश्यकता पूर्ति का स्वतः साधन ढूंढ़ सकें अपनी हर एक प्रकार की स्वच्छता की आदत बना सकें। परमात्मा के प्रति ... एवं उसकी वन्दना करना सीख सकें। एक सभ्य नागरिक की भाँति जीवन ... की कला व्यवस्थापक को अपने जीवनक्रम के आधार पर सिखाना है। बुनियादी शिक्षा एक जीवन-क्रम है इसकी सार्थकता उसे अपने जीवन द्वारा प्रमाणित ... होगी। प्रत्येक कार्य छात्रों को अपने हाथों से करने की शिक्षा दे सके। ऐसी ... में छात्रावास को न्यूनातिन्यून नौकरों की आवश्यकता पड़ेगी।

सारांश

छात्रावास की महत्ता—छात्रावास में छात्र की शिक्षा उसकी जीवन ... उसके चरित्र की नैतिकता अर्थात् उसमें वांछनीय सम्पूर्ण योग्यताओं की विशेष ध्यान दिया जा सकता है। इतना ध्यान घर पर रहने वाले छात्रों की नहीं दिया जा सकता।

छात्रावास की उपयोगिताएँ—छात्रावास छात्रों के लिए निम्नलिखित दृष्टियों से उपयोगी हो सकता है :—(१) चरित्रगठन—छात्रावास में रहने ... छात्रों के चरित्र का निर्माण बड़े सुन्दर तरीके से किया जा सकता है। (२) पारस्परिक सहयोग—पारस्परिक—सहयोग के कई अवसर छात्रावास-जीवन में उपस्थित होते हैं। (३) वातावरण—छात्रावास का वातावरण छात्र के लिए ... लाभकारी होता है ऐसा वातावरण घर पर प्राप्त नहीं हो सकता। (४) स्वच्छता—मानसिक और शारीरिक दोनों प्रकार की स्वच्छताएँ बालक सीखता है। (५) संतुलित आहार—घर के भोजन में स्वाद का दृष्टिकोण होता है और छात्रावास के भोजन में सन्तुलित पौष्टिक पदार्थों का जो, छात्र के शरीर के लिए ... आवश्यक है। (६) नियमितता—घर पर छात्र जीवन में नियमितता नहीं ... पाते पर छात्रावास में नियमितता बिना काम नहीं चलता।

छात्रावास के प्रबन्ध की ज्ञातव्य बातें—(१) छात्रों द्वारा नियमों का ... पालन करना, (२) रोगी छात्र की उपचार व्यवस्था, (३) ... की व्यवस्था, (४) छात्रावास का प्रबन्ध छात्रों द्वारा ही कराना, (५) ... खेल-कूद की व्यवस्था, (६) कमरों में छात्र के निवास की व्यवस्था, (७) सांस्कृतिक उत्सवों का आयोजन, (८) अतिथि-गृह, (९) अपराधों का ... (१०) पुस्तकालय तथा वाचनालय की व्यवस्था, (११) वस्त्र, भोजन, ... प्रबन्ध।

बुनियादी-शाला का छात्रावास—बुनियादी शाला एवं छात्रावास ... अलग-अलग नहीं होना चाहिए वरन् दोनों का समन्वय आवश्यक है। ... गुरु के सान्निध्य का जो ... छात्रावास का होना चाहिए। ... निम्नलिखित नियमों का पालन आवश्यक बताया है—(१) ...

स वन्दना, (२) सात्विक आहार का प्रयोग, (३) स्वय भोजन बनाना, क्योंकि ह स्वावलम्बन का और शिक्षा का अंग है, (४) पाखाने की सफाई, (५) भोजन के पंक्ति-भेद का न होना, (६) प्रातः नित्यकर्म से निपटना, (७) सायं-कर्म रना, (८) उद्योग-कार्य करना, (९) संध्या समय आवश्यक— खेलना, घूमना यायाम आदि, (१०) नित्य कातना, (११) खादी पहनना, (१२) रात को न गना, (१३) रात्रि-भोजन निषिद्ध, (१४) वातावरण की निश्चलता।

बुनियादी-शाला के छात्रावास का दैनिक कार्यक्रम—इस प्रकार यादी-शाला के छात्रावास का दैनिक कार्यक्रम रुढ़िवादी शाला के छात्रावास से न होगा। साथ ही छुट्टी के दिनों में सांस्कृतिक कार्य, श्रमदान, समाज सेवा, खेल, विनोद कार्य आदि रखे जा सकते हैं।

बुनियादी-शाला के छात्रावास का व्यवस्थापक—बुनियादी-शाला के स्थापक का जीवन स्वावलम्बी, नैतिक, सदाचारी, नियमित और आदर्श होना हए। उससे छात्र जीवन निभाने की कला सीख सकें।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(१) बुनियादी शाला के छात्रावास के व्यवस्थापक की तरह से आप छात्रावास का प्रबन्ध से करेंगे, स्पष्ट कीजिए।

(२) बुनियादी-शाला के छात्रावास के लिए श्री विनोबा जी के क्या विचार हैं? उन्होंने किन-किन नियमों का पालन आवश्यक बताया है।

: २५ :

बुनियादी शाला का निरीक्षण एवं मार्गदर्शन

प्रस्तावना—"निरीक्षक का पद आज अप्रिय माना जाने लगा है क्योंकि इसका सम्बन्ध कठोर और नौकरशाही नियन्त्रण और देखभाल से जुड़ता है। पहले शिक्षा में निरीक्षक-कार्यालय का जिम्मा असंदिग्ध शक्ति और उच्चता का पर्यायवाची रहा है, जो शिक्षण व्यवसाय में नि:सीम आज्ञाकारिता और आदर चाहता था। फिर भी एक नई दृष्टि इन्हीं दिनों शिक्षा में प्रचलित है, जिसके आधार पर निरीक्षण कार्य—मार्ग-दर्शन द्वारा नेतृत्व माना जाता है।...वह (निरीक्षक) शिक्षकों, अभिभावकों और छात्रों के साथ शिक्षा की समस्त प्रक्रिया में भागीदार माना जाता है।"[1]

निरीक्षण में नवीन दृष्टि—निरीक्षण में नवीन दृष्टि की चर्चा करते हुए श्री के० जी० सैयदेन ने कहा है—"तीव्र गति से मेरी यह मान्यता हो गई है कि अगर हम फाइलो, प्रतिवेदनो, परिपत्रों को कम देखें और शिक्षकों, बच्चों और वास्तविक कार्य-क्षेत्र को अधिक देखें तो काम रुकने वाला नहीं है। शिक्षा विभाग में इतना ज्यादा पत्र-व्यवहार, फाइलों पर टिप्पणी लिखने व निर्णय करने का काम है कि एक बालक, जिसे नई शिक्षा, केन्द्र का स्थान देना चाहती है उसका ओझल हो जाना स्वाभाविक हो गया है।...बालक ही नहीं वरन् मानवीय और सांस्कृतिक समस्याएँ जिन पर शिक्षा-शास्त्री से सोचने की आशा की जाती है व शिक्षण पद्धति, पाठ्यक्रम, रचनात्मक विचार और प्रयोग जिनसे वह मुख्यतः सम्बन्धित है उन सबका फाइलों के नीचे गड़ जाना निश्चित है। अतः मेरा मत है कि नई शिक्षा के नाम पर शासन में नई भावना का विकास हो जो बच्चों और अध्यापकों, अध्यापकों और शासकों के सम्बन्धों का मानवीकरण करे...सब स्थितियों में भावना निश्चित ही मानवीय हो—मनुष्य से मनुष्य, व्यक्ति से व्यक्ति न कि फाइल से फाइल, रिपोर्ट से रिपोर्ट, उच्च अधिकारी से निम्न अधिकारी।...ऐसी नौकरशाही और लालफीताशाही की मनोवृत्ति भारत के मुकाबले इंगलैण्ड में भी बहुत कम है।"[2]

आज भी हमारे शासन में लालफीताशाही और फाइलों का महत्व बना हुआ है। शासन की शृंखला में विभिन्न स्तर हैं और प्रत्येक स्तर के कार्यालय में भी वहां के विभिन्न स्तरों को इतना ज्यादा महत्त्व दिया जाता है कि आज की नौकरशाही के अधिकारी का अवसर न चाहते हुए भी उसमें ही घिरा रहना स्वाभाविक हो गया

---

[1]एडमिनिस्ट्रेशन ऑफ बेसिक एजूकेशन, नेशनल इन्स्टीट्यूट ऑफ बेसिक एजूकेशन—पृष्ठ 48.

[2]श्री के. जी. सैयदेन, प्राब्लेम्स ऑफ एजूकेशनल रिकन्सट्रक्शन—पृष्ठ 265, 266.

है। एक विचारक ने कहा है—"सब नियम सेवकों की तरह तो अच्छे हैं परन्तु वे ही स्वामी का स्थान ले लें तो बुरे बन जाते हैं। (All formulas are good as servants but bad masters.)।" हमारी शासन शृंखला का निर्माण मानवों के हित, सुविधा और सेवा के लिए एक सेवक के रूप में हुआ था। परन्तु वह स्वामी बन गई। आज देश ने नई शिक्षा अपनाई है। शासन में भी नई दृष्टि का विकास करना है जिसका आधार है मानवता अथवा आपसी सम्बन्धों का मानवीकरण। कार्यालय में पत्रों और फाइलों को पत्र और फाइल समझकर नहीं वरन् उनको इस दृष्टि से देखा जाए कि इनसे राष्ट्र के मानव प्रभावित होते हैं। इन पर समझदारी से विचार करना मानवों के साथ समझदारी करना है और इनके साथ लापरवाही इन्सानों के जीवन से खेलना है। यही मानवीय दृष्टि विद्यालय के निरीक्षण के अवसर पर अपनाए जाने की अपेक्षा की जाती है।

निरीक्षकों की योग्यता—इसमें कोई सन्देह नहीं कि शिक्षा विभागीय निरीक्षकों पर जो जिम्मा है उस अनुसार वे योग्य हों। उन्हें शिक्षा के सिद्धान्त, शासन प्रणाली, शाला व्यवस्था, मनोविज्ञान आदि से पूर्णत परिचित होना चाहिए। उन्हें स्कूल में पढ़ाने का अनुभव हो। उनमें शिक्षा के नवीन प्रयोग में, जो हमारे सामने हैं, अगुआ बनकर रास्ता दिखाने की योग्यता होनी चाहिए। वे सहृदय हों और सहानुभूतिपूर्ण हों। वे निरीक्षण के कार्य का प्रशिक्षण पाए हुए हों तभी वे विद्यालय की सभी कठिनाइयों का व्यवहारिक हल सुझा सकेंगे।

निरीक्षक का नवीन जिम्मा—नई शिक्षा ने निरीक्षक पर नए जिम्मे डाले हैं। निरीक्षण और मार्गदर्शन, ये दो प्रमुख जिम्मे अब निरीक्षक को उठाने जरूरी हैं। अगर वह शाला में कुछेक कमियाँ पाता है, तो उसका एक मार्गदर्शक के रूप में यह फर्ज है कि वह यह जानकारी भी हासिल करे कि वे कमियाँ क्यों रहीं। शाला के कार्यकर्ताओं से उसे इतना अपनत्व भी पैदा करना है कि जिसमें वे अपनी कमियाँ और कठिनाइयाँ कहने में हिचकें नहीं और डरें नहीं। अगर वह ऐसा कर पाए तो निश्चित ही हर एक समस्या उसके सामने इतनी स्पष्ट रूप में प्रस्तुत होगी कि वह निश्चित ही एक सच्चे मार्गदर्शक का जिम्मा निभा सकेगा और विद्यालय की कठिनाइयों के प्रति सहानुभूति रख सकेगा। निरीक्षक के जिम्मे को थोड़े विस्तार के साथ निम्न बिन्दुओं में समझा जा सकता है :—

(१) निरीक्षक विद्यालय के विकास कार्यक्रम में अपने को अभिन्न अंग स्वीकार करे।

(२) वह विद्यालय और स्थानीय समाज में सही प्रकार के सम्बन्ध कायम कराने के जिम्मे को निभाए।

(३) उसमें विद्यालय में सामाजिक एवं सांस्कृतिक क्रियाओं की आवश्यकता और समझने व समझाने की क्षमता हो।

(४) उसमें उद्योग के विभिन्न अंगों एवं स्तरों के बारे पूरी सूझ-बूझ हो उसके मार्गदर्शन की प्रतिभा हो।

(५) उसमें इतनी दिव्य दृष्टि हो कि विद्यालय, शिक्षा का किस प्रकार का स्तर निभा पा रहा है इसकी जांच कर ले।

(६) वह विद्यालय को नवीन प्रयोगात्मक प्रवृत्तियों को अपनाने और उन पर तत्परता से काम करने की प्रेरणा दे सके।

इन सभी जिम्मेदारियों को निभाने के लिए जो सबसे महत्व की बात है वह यही कि उनका व्यवहार मानवीय हो, उनका सम्बन्ध सबसे मानवीय स्तर का हो और वह ऊँच-नीच की भावना से परे हो। तभी कार्यकर्ता लोगों को अपने निकट आने को आकर्षित कर सकेगा और उनके हृदय में अपना स्थान बना सकेगा।

निरीक्षण एवं मार्गदर्शन के प्रमुख अंग—वैसे तो निरीक्षण के समय विद्यालय के सभी अंगों को देखने का प्रयत्न किया जाता है। परन्तु प्रमुख जिन पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए वे निम्नलिखित हैं :—

(१) कक्षा शिक्षण—निरीक्षण के क्रम में अब सबसे ज्यादा महत्व शिक्षण को दिया जाने लगा है। निरीक्षण काल में ज्यादा से ज्यादा अध्यापक कक्षाओं को किस योग्यता से पढ़ाते हैं, इस बात को देखने में लगा जाता है। प्रत्येक अध्यापक की पढ़ाने की योग्यता के विषय में इसी आधार निरीक्षण प्रतिवेदन में भी जानकारी अंकित की जाती है और आवश्यकतानुसार सुझाव दिये जाते हैं। इनसे कक्षा शिक्षण में सुधार हो पाने में मदद मिलती है।

(२) शिक्षक द्वारा पाठ की योजना की तैयारी—आज के शिक्षक पर प्रमुख आरोप यह है कि वह कक्षा पढ़ाने को तैयार होकर नहीं जाता। वह तैयार होकर आया है या नहीं इसका प्रमाण उसकी पाठ-योजना है। यह योजना शिक्षक को प्रतिदिन के शिक्षण कार्य की बनानी जरूरी है। यह योजना प्रशिक्षण विद्यालय की पाठ योजना जितनी विस्तृत न हो कर केवल रूपरेखा मात्र ही होगी, इस कारण उसे एज्यूकेशन कोड मे 'क्लास नोट्स' कहा गया है। निरीक्षण के समय निरीक्षक को इन नोट्स' को देखना जरूरी होता है। इनके द्वारा ही उसे यह समझने में मदद मिलती है कि शिक्षक अपने कार्य मे कितनी मेहनत करता है। 'क्लास नोट्स' शिक्षक की अपने काम में रुचि, नियमितता और दक्षता को निरीक्षक की दृष्टि में लाने में सहायक होते हैं।

(३) छात्रों का लेखा—निरीक्षण के इस क्रम में छात्रों द्वारा किये गये सभी लिखित कार्य आ जाते है। छात्रों की उद्योग की डायरी, अन्य प्रवृत्तियों के ब्योरे और विषयवार लिखित कार्य इस क्षेत्र में आते हैं। आज के विद्यालयों में लिखित कार्य पर्याप्त और संतोषजनक परिमाण में नहीं हो पाता है। जो कुछ काम छात्र करते हैं उसकी भी शिक्षक द्वारा जांच नहीं हो पाती है। अतः निरीक्षण के अवसर पर इस कार्य को देखने की परम्परा भी शुरू की गई है। इनसे शिक्षक लिखित कार्य की ओर अधिक जागरूक होते जा रहे हैं।

(४) शाला की सामूहिक प्रवृत्तियाँ—इस क्षेत्र मे बुनियादी शाला की वे सब प्रवृत्तियाँ आती हैं जिनमें छात्र, या छात्र और शिक्षक, या विद्यालय और समाज सामूहिक रूप मे कार्य करते हैं। ये प्रवृत्तियाँ छात्रों में सामूहिक जीवन के प्रति कुशल पैदा

करती हैं और उनमें सामाजिकता का विकास करती हैं। इस क्रम में सामूहिक प्रार्थना शाला की सामूहिक सफाई, सांस्कृतिक कार्यक्रम, बाल सभा, पर्वों और उत्सवों का आयोजन, शैक्षणिक भ्रमण, छात्र संघ का समुचित संचालन, ग्राम-सेवा कार्यक्रम आदि का समावेश होता है। निरीक्षण के समय इन प्रवृत्तियों के बाबत भी जानकारी हासिल की जाए, इन कार्यक्रमों का ब्योरा पढ़ा जाए और आवश्यकतानुसार मार्गदर्शन दिया जाए।

प्रधानाध्यापक और मार्गदर्शन एवं निरीक्षण—जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है निरीक्षकों के लिए मानवीय दृष्टिकोण अपनाना आज के जमाने की प्रमुख आवश्यकता हो गयी है। यही बात प्रधानाध्यापक के लिए भी लागू होती है। प्रधानाध्यापक शाला में निरीक्षण कार्य को किस प्रकार से सम्पादित करे इस विषय में विस्तृत ब्योरा 'प्रधानाध्यापक' नामक पाठ में दिया गया है।

शिक्षक और मार्गदर्शन—शिक्षक का भी शाला कार्यक्रम में भारी महत्व है। एक तरह से उसी की योग्यता मेहनत, जिम्मेदारी, समझदारी और अनुशासन-प्रियता से शाला अपने उद्देश्य में सफल हो सकती है। उसके अपने कार्य के अतिरिक्त उसका यह जिम्मा भी है कि शाला के निरीक्षण और मार्गदर्शन में वह प्रधानाध्यापक की प्रमुखतः मदद करे। विभिन्न शिक्षक विभिन्न कार्यों में दक्ष होते हैं। इसी दक्षता से वे अपने-अपने क्षेत्र में, निरीक्षण एवं मार्गदर्शन में प्रधानाध्यापक की मदद कर सकते हैं। शिक्षकों का कार्य विशेषतः छात्रों को मार्गदर्शन करना तो है ही। उनके मार्गदर्शन से ही छात्र अपनी वैयक्तिक समस्याओं का समाधान ढूंढ निकाल सकते हैं। इस दृष्टि से शिक्षक का मार्गदर्शन का जिम्मा भी अपने क्षेत्र में काफी महत्व का है जिसे निभाता हुआ वह विद्यालय समाज और बाहरी समाज में आदरित हो सकता है।

उपसंहार—इस प्रकार हम देखते हैं कि विद्यालय के निरीक्षण एवं मार्गदर्शन में शिक्षा विभागीय अधिकारी, प्रधानाध्यापक और शिक्षक तीन प्रमुख अंग हैं। विद्यालय में तीनों का अपना अपना क्षेत्र है और महत्व भी है। अगर ये तीनों अपने-अपने जिम्मे को पूरी तरह निभावें तो विद्यालय स्फूर्ति से काम करता रहे, उसमें नवीनता और ताजगी बनी रहे, नवीन दिशाओं में मार्गदर्शन प्राप्त होता रहे और शाला के कार्य का स्तर भी उन्नत होता जाए। ये ही निरीक्षण एवं मार्गदर्शन के लाभ हैं।

सारांश

प्रस्तावना—अब तक निरीक्षक का काम अप्रिय माना जाता था क्योंकि वह उच्च सत्ता और कठोरता का पर्यायवाची रहा है। परन्तु अब निरीक्षक के काम को मार्गदर्शन द्वारा नेतृत्व मानने की परम्परा शुरू हुई है।

निरीक्षण में एक नवीन दृष्टि—सामन्तशाही और साम्राज्यवादशाही की प्रवृत्ति भारत के मुकाबले इंगलैण्ड में भी बहुत कम है। शासन एवं निरीक्षण जो कामों के हिसाब शुरू हुआ वह अपने उद्देश्य से विमुख हो गया। इसी कारण आज उसमें मानवीय दृष्टि की पुनर्स्थापना पर बल दिया जा रहा है।

निरीक्षकों की योग्यता—निरीक्षक जिस किसी भी कार्य का निरीक्षण करे उसमें वह दक्ष भी हो—यही उसकी योग्यता का सूचक है।

निरीक्षक का जिम्मा—आज के निरीक्षक पर, स्कूल से अलग रहकर नहीं वरन् उसी का स्वयं को भी अंग मानकर, निरीक्षण करने का जिम्मा है। इस दृष्टि से विद्यालय का कोई भी अंग उसके निरीक्षण एवं मार्गदर्शन से बचना नहीं चाहिए।

निरीक्षण एवं मार्गदर्शन के प्रमुख अंग—निरीक्षकों को विद्यालय के निम्न अंगों पर विशेष ध्यान देना चाहिए :—

१. कक्षा शिक्षण।
२. शिक्षक द्वारा पाठ की योजना की तैयारी।
३. छात्रों का कार्य।
४. शाला की सामूहिक प्रवृत्तियाँ।

प्रधानाध्यापक और मार्गदर्शन एवं निरीक्षण—प्रधानाध्यापक को भी अपने विद्यालय के कार्य का निरीक्षण करते समय वही दृष्टिकोण अपनाना चाहिए जिसके बाबत निरीक्षकों के क्रम में चर्चा की गई है।

शिक्षक और मार्गदर्शन—शिक्षक का अपने प्रधानाध्यापक व निरीक्षक को उनके काम में सहायक होने का जिम्मा है। उसका यह भी जिम्मा है कि वह छात्रों की समस्याओं को सुलझाने में सहायक हो। इस क्षेत्र में मार्गदर्शन देने से उसे समाज में आदरित होने में मदद मिलनी निश्चित है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(१) "आज हमारी शासन शृंखला में मानवीय दृष्टि का विकास करना सर्व प्रथम आवश्यकता बन रहा है" इस कथन पर टिप्पणी कीजिए।

(२) बुनियादी शाला के निरीक्षक की तरह आप शाला का किस प्रकार निरीक्षण करेंगे?

—: o :—

: २६ :

अबुनियादी शालाओं में बुनियादी शालाओं के क्रिया-कलाप

प्रस्तावना—अबुनियादी शालाओं को बुनियादी शालाओं में परिवर्तित करने की दृष्टि से इस बात पर बल दिया जाता है, कि परिवर्तन का क्रम प्रारंभ करते हुए, शाला में सर्वप्रथम बेसिक शिक्षा की प्रारंभिक प्रवृत्तियां प्रारंभ की जानी चाहिएँ। इन प्रारंभिक प्रवृत्तियों को धीरे-धीरे अधिक महत्त्व दिया जाने लगा। अब तो यह विचार भी बल पकड़ता जा रहा है कि बालक की शिक्षा के कार्य में हिस्सा बँटाने वाली प्रत्येक संस्था इन प्रवृत्तियों को अपनाए, जिससे बालकों में आत्मविश्वास, उत्तरदायित्व, स्वतन्त्रता और स्वाधीनता, की भावनाओं का विकास हो। वे सामुदायिक जीवन-यापन की कला में प्रवीण हों और अन्ततोगत्वा हमारे जनतन्त्र के विकास की दृष्टि से ऊँचे दर्जे के नागरिक बन सकें। इसी विचारधारा के कारण यह जरूरी हो गया है कि हम इस विषय में विस्तार से विवेचन करें।

एक नवीन विचारधारा का श्रीगणेश—इसमें कोई सन्देह नहीं कि बुनियादी शालाओं की अबुनियादी शालाओं से भिन्नता बताने का प्रयत्न करते हुए विचारकों ने काफी गहन और विस्तृत विचार व्यक्त किये हैं। इस दृष्टि से अधिक विस्तृत जानकारी प्रस्तुत करने की बजाय हम श्री जी० रामचन्द्रन के शब्दों को यहां व्यक्त करना उपयुक्त समझते हैं—"अनेक महत्त्वपूर्ण क्रियाकलाप (एक्टीविटीज) समवायी शिक्षण की विधि और ऐसा उद्योग, जो ज्ञान प्राप्ति का माध्यम बनता है, बुनियादी शिक्षा को परम्परित शिक्षा से भिन्न करते हैं।" इस दृष्टि से यह सर्वसम्मत है कि जब तक पाठशालाओं को बुनियादी शिक्षा की दृष्टि से प्रशिक्षित शिक्षक, और उद्योग की पर्याप्त सामग्री उपलब्ध नहीं हो जाती, उद्योग के आधार पर समवायी शिक्षण का कार्य प्रारंभ हो पाना संभव नहीं है। इसी बिन्दु को दृष्टि में रखते हुए भारत सरकार और प्रान्तीय सरकारों ने यह स्वीकार किया कि अबुनियादी शालाओं में भी बुनियादी शिक्षा के कार्य-कलाप प्रारंभ कर दिये जाएँ। इन क्रिया-कलापों को साधारण प्रकार के शिक्षकों द्वारा, उद्योग की सामग्री के अभाव में भी प्रारंभ किया जा सकता है। इस प्रकार अबुनियादी शालाओं का बुनियादी शिक्षा में अनुस्थापन (ओरिएटेशन) हो सकेगा।

अनुस्थापन के कार्य का प्रारंभ—अबुनियादी शालाओं का बुनियादी शिक्षा में अनुस्थापन के लिए शिक्षा मन्त्रालय 'भारत सरकार' ने सन् १९५७ में एक पुस्तिका—"ओरिएंटिंग बेसिक स्कूल्स टुवर्ड्स दी बेसिक पेटर्न"—प्रकाशित की। इसी विचारधारा को विस्तृत रूप से प्रचारित करने के उद्देश्य से प्रान्तीय सरकारों ने निर्देशिकाएँ प्रकाशित कीं। इन पुस्तिकाओं में केवल उन क्रिया-कलापों की

सूचीपत्र ही होने के कारण, उन्हें केन्द्रीय सरकार द्वारा ▮ पर्यन्त, यहाँ लो
किया गया। शिक्षाविदों की सूचीपत्र जारी नहीं है, जब तक कि उनके
के लिए पर्याप्त, व्यवस्थित, बहुत और क्रियात्मक जानकारी प्रस्तुत नहीं की
इस कार्य को 'नेशनल इन्स्टीट्यूट ऑफ बेसिक एजूकेशन' के सुपुर्द किया गया।
कोई सन्देह नहीं ▮ उपरोक्त संस्था ने इन कार्य को इतनी से पूरा किया
राष्ट्र को शिक्षा की प्रगति में सहायता प्राप्त हुई। इस दृष्टि से नेशनल इन्स्टी
ऑफ बेसिक एजूकेशन, भारत सरकार द्वारा प्रकाशित पुस्तिका—'
एक्टीविटीज और नान-बेसिक स्कूल्स' बड़ी महत्वपूर्ण है।

क्रिया-कलाप और उनका वर्गीकरण—इन क्रिया-कलापों का वर्गीकरण नि
प्रकार से किया जा सकता है :—

१. स्वास्थ्य सम्बन्धी क्रिया-कलाप।
२. उद्योग सम्बन्धी क्रिया-कलाप।
३. नागरिकता सम्बन्धी क्रिया-कलाप।
४. सांस्कृतिक एवं मनोरंजन सम्बन्धी क्रिया-कलाप।
५. समाज सेवा सम्बन्धी क्रिया-कलाप।
६. विविध क्रिया-कलाप।

१. स्वास्थ्य सम्बन्धी क्रिया-कलाप

इन क्रिया-कलापों का प्रमुख उद्देश्य है, बालकों को स्वास्थ्यपूर्ण
सामाजिक जीवन-यापन की दृष्टि से प्रशिक्षण देना। ऐसी प्रवृत्तियाँ
नियमित रूप से चलायी जानी चाहिएँ। इस दृष्टि से निम्न सुझाव महत्वपूर्ण हैं

१ क्रिया-कलापों के कतिपय सुझाव—

(क) बालकों की कक्षा गोष्ठियाँ—इस क्रम में शाला की विभिन्न कक्षाओं
बालक शाला के बाहर भ्रमणार्थ जाएँ। अपना-अपना भोजन साथ लेकर जाएँ
उनका सामूहिक भोजन हो। तभी अवसर पाकर, उन्हें शिक्षक यह ज्ञान दें कि स्वा
स्थ्य की दृष्टि से किस प्रकार का भोजन लाभकारी एवं उपयुक्त रहता है। बाजा
मिठाइयाँ और पकौड़ी, चाट आदि किस प्रकार हमारी पाचन प्रणाली पर
भाव डालते हैं। एक साधारण व्यक्ति को एक बार के भोजन में, हमारी
स्थितियों के आधार पर, किन-किन वस्तुओं का उपयोग करना चाहिए। इस दृष्टि
बालक चार्ट बना सकते हैं, चित्र बना सकते हैं, और अनेक प्रकार की
जानकारी इकट्ठी कर सकते हैं।

(ख) समाज-सेवा की प्रवृत्तियाँ—इन कार्यक्रमों में बालकों को विभिन्न प्रकार
...ों के विषय में जानकारी दी जा सकती है। प्रमुखतः महामारियों के
...ज सेवा करते हुए बालक उनके विषय में पूरा ज्ञान प्राप्त कर सकते
... के उपाय समझ सकते हैं।

...की सफाई कार्यक्रम—शाला की सफाई का कार्यक्रम बालकों द्वारा
जाए। वे शाला की सफाई का महत्व समझें। पीने के पानी को
करें।

(घ) स्थानीय कुओं की सफाई—उन्हें सर्वप्रथम उस कुएँ की सफाई के लिए प्रेरित किया जाए, जहाँ से उसके पीने का पानी प्राप्त किया जाता है। वे उस कुएँ के पानी की सफाई का कार्यक्रम स्थानीय अध्यापक की मदद से पूरा करें। वे अन्य कुओं की सफाई भी करें।

(ङ) स्वास्थ्य सुधार अभियान—शालाओं में छात्र, शाला के संघ के स्वास्थ्य मंत्री के तत्वाधान में एक स्वास्थ्य समिति का निर्माण किया जाए, जो शाला और समाज के स्वास्थ्य की दृष्टि से विभिन्न प्रकार के आयोजन करे।

(च) व्यायाम और खेलों की व्यवस्था—शाला में व्यायाम और खेल की पूर्ण रूप से सुविधा रहे, जिससे बालकों के शारीरिक विकास में मदद मिले।

२. वे क्रिया-कलाप जो स्वच्छता की आदतों का निर्माण करते हैं:—

(क) शरीर के विभिन्न अंगों की सफाई—शाला में नियमित रूप से बालकों के आँख, कान, दाँत, नाक, बाल आदि की सफाई की ओर ध्यान दिया जाए। बालकों को शारीरिक सफाई का महत्व समझाते हुए साफ सुथरा रहना सिखाया जाए।

(ख) शरीर और वस्त्र की सफाई के साधन जैसे साबुन, पाउडर या कीटाणुनाशक दवाइयाँ बनाना सिखाया जाए।

(ग) बालकों से ऐसे चार्ट बनवाए जाएँ, और ऐसी जानकारी इकट्ठी कराई जाए, जो यह स्पष्ट करें कि स्वास्थ्य की दृष्टि से निद्रा, उपयुक्त आसन से बैठना, खड़ा होना आदि का क्या महत्व है ?

३. सफाई और स्वास्थ्य के लिए हानिकारक आदतों को मिटाना:—

(क) बालक बिना जरूरत ही आँख, कान, नाक व मुँह में उँगली या तिनका डालते रहते हैं। वे हर जगह थूक देते हैं। वे कागज के पुर्जे हर जगह फेंकते फिरते हैं। उद्योग के सामान के टुकड़े इधर-उधर फेंकते फिरते हैं। ये सब ऐसी आदतें हैं, जिनको रोका जाना चाहिए।

(ख) इसी क्रम में शाला के बाहर समाज में भी ऐसे अभियान चलाए जा सकते हैं, जो इस दृष्टि से समाज को सजग करें।

स्वास्थ्य सम्बन्धी क्रिया-कलापों का आयोजन—स्वास्थ्य सम्बन्धी क्रिया-कलापों के आयोजन की दृष्टि से शाला में फर्स्ट-एड-बॉक्स का होना पहली आवश्यकता है। बालक अपने स्वास्थ्य का ब्यौरा स्वयं तैयार करता रहे। जब-जब भी स्वास्थ्य अभियान प्रारम्भ हो अभिभावकों और स्थानीय अधिकारियों का सहयोग प्राप्त किया जाए। वैयक्तिक स्वास्थ्य की दृष्टि से शाला कार्य प्रारम्भ होने के पूर्व प्रार्थना के पूर्व ही, या ठीक बाद ही बालकों की सफाई देखी जाए। जहाँ जरूरत हो स्थानीय चिकित्सा एवं स्वास्थ्य विभाग की सहायता ली जाए।

ये समस्त क्रिया-कलाप, बालकों को मानव-शरीर-रचना, नियन्त्रित एवं नियमित भोजन, स्वास्थ्य और सफाई, बीमारों की प्रथम सहायता, और स्वास्थ्य सम्बन्धी ऐसे ही अन्य अनेकों प्रश्नों का समाधान प्रस्तुत करने में सहायक होने चाहिएँ।

उद्योग सम्बन्धी क्रिया-कलापों का आयोजन—उद्योग सम्बन्धी क्रिया-कलापों के आयोजन के अवसर पर यह ध्यान रखने की बात है कि बालक इन्हे भारस्वरूप न समझने लगें। उनमे प्रतिद्वन्द्व की भावना पैदा न हो। उद्योग स्थानीय वातावरण के अनुकूल हो। काम इस प्रकार लिया जाए कि जिसमे बालको के अनुभव के साथ-साथ ज्ञान की वृद्धि भी हो। अगर ये कार्य इस प्रकार से आयोजित हों कि इनसे बालको के अनुभव की वृद्धि के साथ-साथ, उनमे प्रयोग करने की वैज्ञानिक भावना का विकास हो, उनमे सेवा की भावना प्रस्फुटित हो, उनमे साथ-साथ काम करने या सहयोग से रहने का दृष्टिकोण विकसित हो, तो इस आयोजन का सफल होना निश्चित है।

३. नागरिकता सम्बन्धी क्रिया-कलाप

नागरिकता सम्बन्धी क्रिया-कलाप मे उन सब कार्यों का समावेश होता है, जो बालक को नागरिकता के गुणों से सम्पन्न बनाने में सहायक होते है। जनतन्त्र ऐसे नागरिक को चाहता है जो समाज के प्रति अपने कर्तव्यों को पूरा करने मे भी उतने ही सजग हों जितना कि लोग साधारणतः अपने अधिकारों को सरकार से पूरा कराने के लिए सजग होते है। इस दृष्टि से निम्नलिखित क्रिया-कलाप महत्वपूर्ण हैं।

(क) शाला की सामूहिक प्रार्थना—शाला की सामूहिक प्रार्थना छात्रों की उपस्थिति दर्ज करने व शाला की सफाई के कार्यक्रम के पश्चात् आयोजित की जाती है। यह भी शाला का एक महत्वपूर्ण कार्यक्रम होता है. अगर सब बालक सभास्थल पर कतारों में आएँ। अगर वे नियमित रूप से इस तरह खड़े हों कि सबसे छोटा बालक सबसे आगे हो और सबसे बड़ा सबसे पीछे। सब शान्ति मे खड़े रहें। सब शिक्षक भी उसमें उपस्थित रहें। धर्म निरपेक्ष राज्य मे गाई जाने वाली विभिन्न प्रार्थनाएं ऐसी हों जो धर्म निरपेक्ष हों, और प्रेरणादायक हो। प्रार्थना के पश्चात् करीब दो मिनट का पूर्ण मौन का समय निश्चित रहे। तत्पश्चात् शाला में परम्परानुसार प्रवचन, दैनिक समाचार, या विभिन्न सूचनाएं बालकों को दी जाएं अथवा प्रधानाध्यापक बालको से शाला के किसी महत्वपूर्ण बिन्दु पर चर्चा करें। इस रूपरेखा के आधार पर आयोजित सामूहिक प्रार्थना का कार्यक्रम बालको में नागरिकता के गुणो के विकास मे सहायक होगा।

(ख) शाला मे स्वशासन—इस विषय मे विस्तार से विवरण इसी पुस्तक के पाठ—'बुनियादी-शाला का सचालन' के अन्तर्गत किया जा चुका है।

(ग) कक्षा में स्वशासन—सारी कक्षा को टोलियो में बांटा जाएं। प्रत्येक टोली मे एक टोली नायक हो। प्रत्येक टोली अपने टोली नायक के नेतृत्व मे कार्य करे।

(घ) कोआपरेटिव बैंक या स्टोर—सहयोग की भावना के विकास के हेतु बालको का अपना स्टोर या बैंक शाला के तत्वावधान मे चले और बालक उसका लाभ उठाएं।

नागरिकता सम्बन्धी क्रिया-कलापों का आयोजन—उपरोक्त आयोजन और उनके समकक्ष ऐसे अनेक आयोजन किए जाएं जिसमे बालक वैयक्तिक स्तर पर कार्य

करके अपनी योग्यता का प्रदर्शन करने की बजाय समूह में कार्य करे और समूह के एक सदस्य की तरह, समूह के हिस्से का काम करते हुए भी उतना ही आत्मतोष का अनुभव करना सीखे जितना कि आत्मतोष वैयक्तिक कार्य को पूरा करने पर उसे महसूस होता है। नागरिकता के इस प्रशिक्षण में अध्यापक केवल एक ऐसे सहायक की भूमिका अदा करे जो काम के रुकने की दशा में ही मदद पर आता है, अन्यथा प्रारम्भिक योजना से लेकर कार्य के पूर्ण होने तक बालकों को ही काम करने का अवसर देता रहता है।

४. सांस्कृतिक एवं मनोरंजन सम्बन्धी क्रिया-कलाप

ये क्रिया-कलाप बालकों के स्वास्थ्य के विकास में, उनमें समूह में जीवन-यापन की प्रणाली सिखाने में, उन्हें फुर्सत के समय के सदुपयोग का तरीका सिखाने में, और उनमें सौंदर्यानुभूति का विकास करने में सहायक होते हैं। इस क्रम में निम्नलिखित क्रिया-कलाप महत्त्वपूर्ण हैं :—

(क) रुचि कार्य, खेल, व व्यायाम।

(ख) नाटक, संगीत, लोक नृत्य, कवि सम्मेलन आदि।

(ग) चित्रकला, ड्राइंग एवं इसी क्रम में आने वाले वे कार्य जो हमारे जीवन को कलामय बनाने में सहायक होते हैं।

(घ) उत्सव त्योहार, जयन्तियाँ एवं राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय पर्व।

सांस्कृतिक एवं मनोरंजन क्रिया-कलापों का आयोजन—ये सभी क्रिया-कलाप इस दृष्टि से भारी महत्त्व रखते हैं कि इनके द्वारा बालक समूह में रहते हुए सुयोजित रूप से, सहयोग के साथ समाज हित के कार्य करने का प्रशिक्षण पाते हैं।

५. समाज सेवा सम्बन्धी क्रिया-कलाप

ये क्रिया-कलाप बालकों को भावी जीवन में समाज सेवा के कार्य सफलतापूर्वक क्रियान्वित करने की दृष्टि से शिक्षण देने के अच्छे साधन हैं। इनके द्वारा स्कूल के समाज के अधिक निकट पहुँचने में मदद मिलती है। बच्चों में इनके द्वारा समाज हित में, वैयक्तिक हित का बलिदान करते हुए काम करने की भावना का विकास होता है। वे साथ-साथ मिल-जुल कर काम करना सीखते हैं। इस क्रम में निम्नलिखित क्रिया-कलाप महत्त्वपूर्ण हैं :—

(क) साक्षरता, गाँव की सफाई, गाँव के स्वास्थ्य एवं नागरिकता के नियमों की जानकारी देने के विभिन्न कार्यक्रम।

(ख) उत्सवों, व्यापारिक और धार्मिक मेलों, त्योहारों, बाढ़ या महामारी के अवसरों पर समाज की तात्कालिक मदद के कार्यक्रम।

(ग) ऐसे कार्यक्रम जो समाज को फुर्सत के समय को राष्ट्रहित में लगाने की दृष्टि से शिक्षित करते हैं।

समाज सेवा के क्रिया-कलापों का आयोजन—उपरोक्त आयोजनों में कुछ तो ऐसे हैं, जिन्हें हम अपने दैनिक जीवन में नियमित रूप से करते हुए भी समाज सेवा कार्य को करना चालू रख सकते हैं। परन्तु कुछेक ऐसे हैं, जिनके लिए अन्य

समय की जरूरत पड़ती है। ऐसे कार्यों के लिए अवकाश के अवसरों का उपयोग किया जाना चाहिए।

६. विविध क्रिया-कलाप

इस क्रम में उन क्रिया-कलापों का समावेश होता है, जिनका उपरोक्त पांच शीर्षकों में समावेश हो पाना सम्भव नहीं हो सका। इस दृष्टि से निम्नलिखित क्रिया-कलाप महत्वपूर्ण हैं :—

१. शाला-पत्र प्रकाशन।
२. शाला-संग्रहालय।
३. शाला-प्रदर्शिनी।
४. शिक्षक-परिषद्।
५. गाँव की आर्थिक पैमाइश।
६. मेहमानों का स्वागत और उनके उपदेश की व्यवस्था।
७. अन्तर-शाला समितियाँ।
८. पितृ अभिभावक सम्मेलन।
९. सामूहिक भोजन।

उपरोक्त आयोजनों के अतिरिक्त प्रत्येक शाला कुछ और भी समाज हितकारी क्रिया-कलापों का आयोजन करने को स्वतन्त्र है।

उपसंहार—बुनियादी शालाओं के उपरोक्त करीब-करीब सभी क्रिया-कलापों का अबुनियादी शालाओं में श्रीगणेश किया जा कर उन्हें बुनियादी शालाओं के निकट लाया जा सकता है। जब इन क्रिया-कलापों का किसी शाला में प्रारम्भ हो, उस शाला के अध्यापक समुदाय का यह कर्त्तव्य हो जाता है कि वह बुनियादी तालीम पर स्वाध्याय की शुरुआत करदे जिससे उद्योग के आधार पर समवायी शिक्षण क्रिया के प्रारम्भ होने पर उसे विशेष कठिनाई का अनुभव न हो।

सारांश

प्रस्तावना—अब यह माना जाने लगा है कि प्रत्येक शाला को बुनियादी शाला में परिवर्तित करने के पूर्व वहां पर प्रारम्भिक प्रवृत्तियां प्रारम्भ की जाएं।

एक नवीन विचारधारा का श्रीगणेश—जब तक बुनियादी शिक्षा की दृष्टि से शिक्षक प्रशिक्षित और उद्योग की पर्याप्त सामग्री शालाओं में उपलब्ध नहीं हो जाए, तब तक अबुनियादी शालाओं में बुनियादी शालाओं के क्रिया-कलाप प्रारम्भ करके, उन्हें बुनियादी शिक्षा के निकट लाने का प्रयत्न किया जाए।

अनुस्थापन के कार्य का प्रारम्भ—यह कार्य आज के करीब चार वर्ष पूर्व सुआयोजित रूप में प्रारम्भ हुआ।

क्रिया-कलाप और उनका वर्गीकरण—इस दृष्टि से निम्नलिखित शीर्षक महत्वपूर्ण हैं:—

(१) स्वास्थ्य सम्बन्धी क्रिया-कलाप।
(२) उद्योग सम्बन्धी क्रिया-कलाप।
(३) नागरिकता सम्बन्धी क्रिया-कलाप।

(४) सांस्कृतिक एवं मनोरंजन सम्बन्धी क्रिया-कलाप।

(५) समाज सेवा सम्बन्धी क्रिया-कलाप।

(६) विविध क्रिया कलाप।

उपरोक्त प्रत्येक शीर्षक के अन्तर्गत पर्याप्त संख्या में विभिन्न प्रकार के क्रिया-कलापों का समावेश होता है।

उपसंहार—अबुनियादी शालाओं का बुनियादी शिक्षा में अनुस्थापन करने के लिए उनमें उपरोक्त क्रिया-कलापों का प्रारम्भ किया जाना जरूरी है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

१. अबुनियादी शालाओं का बुनियादी शिक्षा में अनुस्थापन करने से क्या अर्थ है? विस्तार से लिखिए।

२. अनुस्थापन के क्रम में अबुनियादी शालाओं में प्रारम्भ किए जाने वाले क्रिया-कलापों पर विस्तार से प्रकाश डालिए।

—:०:—

: २७ :

अबुनियादी शालाओं का बुनियादी शालाओं में परिवर्तन

प्रस्तावना—अब तक हमारे देश के बालकों की शिक्षा अबुनियादी शालाओं में होती रही है। बुनियादी शिक्षा अब राष्ट्रीय शिक्षा पद्धति बन जाने से बुनियादी शालाओं की देश मे जरूरत है। शिक्षा के विस्तार के क्रम से हमारे देश में हर साल एक बड़ी संख्या में अबुनियादी शालाओं को बुनियादी शालाओं मे बदला जाता है। इसी के साथ हर वर्ष उपयुक्त वातावरण और प्रशिक्षित शिक्षकों के अभाव मे अबुनियादी शालाएँ भी खोली जाती हैं। उन्ही शालाओं को बाद मे बुनियादी शालाओं मे बदला जाता है। इस स्थिति के कारण साधारणत. प्रत्येक शाला को पहले अबुनियादी शिक्षा (परंपरित शिक्षा) की परम्पराएँ अपनाकर बाद में बुनियादी शिक्षा की परम्पराएँ अपनानी पड़ती हैं। शिक्षा मनोविज्ञान की दृष्टि से यह क्रम पूर्णत. अनुपयुक्त है। ऐसा होने से अनेकों दूसरी समस्याएँ पैदा हो जाती हैं जिनका निवारण सरलता से सम्भव नहीं है। इस दशा में ज्यादा अच्छा यही है कि पुरानी अबुनियादी शालाओं को बुनियादी में बदलने के साथ नई शालाएँ बुनियादी शालाएँ की ही खोली जाएँ। अबुनियादी-शालाओ को बुनियादी-शालाओ मे बदलने का काम भी उपयुक्त तरीके से हो।

शालाओं को परिवर्तित करने का उपयुक्त तरीका—शालाओ को परिवर्तित करने के विषय में प्रमुख विचारणीय बिन्दु यह है कि उन्हे धीरे-धीरे बुनियादी शाला का रूप देना चाहिए। इस क्रम में एक शाला को दो या तीन वर्ष में ही बुनियादी शाला का रूप देना सम्भव हो सकता है। हमें शाला को बुनियादी शाला का केवल नाम नहीं देना है, हमे बुनियादी शाला का रूप देना है, यह सूत्र हर समय दृष्टि मे रहना चाहिए। इस दृष्टि से सम्पूर्ण कार्य को निम्न बिन्दुओ में बाँटना होगा .—

(क) **प्रारम्भिक प्रवृत्तियों का प्रारम्भ**—शाला मे सर्वप्रथम बेसिक शिक्षा के क्रिया-कलाप शुरू करने चाहिएँ। इनके विषय मे विस्तार से पूर्व पाठ मे वर्णन किया जा चुका है।

(ख) **वातावरण का अध्ययन**—शाला मे उपरोक्त प्रवृत्तियां प्रारम्भ करने के साथ ही साथ शाला के वातावरण का बारीकी से अध्ययन किया जाना चाहिए और इस क्रम मे निम्न बिन्दुओं पर विशेष प्रकार से ध्यान दिया जाए —

उद्योग

(अ) वातावरण के प्रमुख उद्योग क्या-क्या है ?
(आ) प्रत्येक उद्योग को करने वाले लोगो की कितनी-कितनी संख्या है ?
(इ) उस उद्योग का कच्चा माल कहाँ से आता है ?
(ई) उस उद्योग मे सहायक औजार कैसे उत्पन्न होते हैं।
(उ) वहाँ पर तैयार किए हुए माल की खपत कहाँ-कहाँ होती है ?

जनसंख्या

(अ) वहां की जनसंख्या कितनी है ?

(आ) पढ़े लिखे व्यक्ति कितने हैं ?

(इ) पाठशाला में आने योग्य बालकों की संख्या कितनी है ?

(ई) वहां के पढ़े लिखे लोगों में क्या कुछ व्यक्ति ऐसे हैं जिन्हें शिक्षा में रुचि है ?

शाला की जरूरतें

(अ) अगर वहां स्कूल है तो क्या पुरानी इमारत बुनियादी शाला के लिए काफी होगी ? अगर वहां स्कूल नहीं है तो क्या शाला के लिए वहां इमारत उपलब्ध है ?

(आ) कृषि के लिए भूमि वहां मिल सकती है या नहीं ? उस भूमि में सिंचाई की क्या-क्या सुविधाएं हैं ?

(इ) उद्योग में कुशल शिक्षक मिलने तक वहां के कुशल कारीगर शाला में प्रारम्भ किए गए उद्योग में कहां तक सहयोग दे सकेंगे ?

(ई) शाला में प्रारम्भ होने वाले उद्योग का कच्चा-माल किन साधनों से प्राप्त होगा ?

(उ) उद्योग के औजारों की संख्या व उन्हें किन साधनों से जुटाना सम्भव होगा ?

(ऊ) अन्य ऐसी जानकारी जो शाला-विशेष की दृष्टि से जरूरी हो।

(ग) उपरोक्त अध्ययन के द्वारा निम्न महत्वपूर्ण बिन्दु स्पष्ट होंगे :—

(अ) शाला में मूल उद्योग कौन-सा शुरू किया जाए ?

(आ) मूल उद्योग में वहां के कारीगरों का कितना सहयोग मिलेगा ?

(इ) उद्योग को जरूरत का कितना सामान चाहिए और उसे जुटाने में कितना समय लगेगा ?

(ई) जमीन की व्यवस्था में कितना समय लगेगा ?

(उ) शाला की इमारत की जरूरत पूरी होने में कितना समय लगेगा ?

(ऊ) शिक्षण में रुचि रखने वाले कितने लोग ऐसे हैं जिन्हें स्थानीय शाला में काम करने को आकृष्ट किया जा सकता है ?

(ए) शाला में अधिकांश शिक्षक प्रशिक्षित हों ऐसी स्थिति लाने में कितना समय चाहिए ?

इन बिन्दुओं के आधार पर अधिकारियों को शाला की जरूरतों को पूरी करने की योजना तैयार करनी चाहिए। शाला की जरूरतें पूरी होने में जो समय लगे उस पर विशेष ध्यान नहीं देना चाहिए। ध्यान देने की बात तो यह है कि जिस शाला विशेष को बुनियादी शाला घोषित किया जाए तब से वह शाला बुनियादी तालीम की पद्धति पर ही चले और शाला के कार्यकर्ताओं को, समाज को [illegible] को एक दूसरे को सोचने समझने का अवसर बाकी न रहे। आज शालाओं में [illegible] हो रहा है उसका एक प्रमुख कारण यह है कि उनका कार्य क्षेत्र [illegible] बंधा हुआ है और कार्य की दुविधा महसूस करता है।

[illegible] अन्य विचारणीय बिन्दु—बुनियादी-शिक्षा योजना का प्रारम्भ होने से आज तक जो समय गुजरा है उसने देश में अनेक नई-नई स्थितियाँ पैदा कर दी हैं। इस दृष्टि से सम्बन्धित कार्यकर्ताओं को निम्न बिन्दुओं पर विशेष प्रकार से ध्यान देकर उनमें परिवर्तन करने की जरूरत पैदा हो गई है :—

(अ) बुनियादी शालाओं के पाठ्यक्रम में अंग्रेजी को भी उपयुक्त विषय का स्थान प्राप्त हो।

(आ) बुनियादी शालाओं के पाठ्यक्रम का बहुउद्देशीय विद्यालयों के पाठ्यक्रम से साम्य स्थापित किया जाए।

(इ) बुनियादी शालाओं में शिक्षा-प्राप्त छात्रों का अन्य शालाओं में प्रवेश [illegible] हो।

(ई) ऐसे पाठ जो समन्वय की योजना में नहीं जमते हों, उन्हें प्रधान की जानकारी के अन्तर्गत पुरानी पद्धति से पढ़ाने की छूट हो।

(उ) विज्ञान के शिक्षण को आज की जरूरत के अनुसार महत्व दिया जाए।

(ऊ) नगरों और गाँवों में समान प्रकार की शिक्षा प्रारम्भ की जाए, जिससे समाज में गलतफहमी पैदा न हो।

(ए) जानकारी के अभाव में बुनियादी शिक्षा को घटिया किस्म की शिक्षा जो लोग मानते हैं उन तक सही जानकारी पहुँचाना आवश्यक है।

(ऐ) शिक्षा के अब तक के विकास क्रम में जो पद्धतियाँ पनपी हैं उनका भी, जहाँ अवसर व आवश्यकता हो, बुनियादी शाला में प्रयोग करने की छूट हो।

(ओ) नई शाला जो अब खुले वह बुनियादी शाला ही हो।

उपरोक्त परिवर्तन निश्चित ही बुनियादी शिक्षा को अधिक लोकप्रिय बनाने में सहायक होंगे।

उपसंहार—अबुनियादी शालाओं को बुनियादी शालाओं में परिवर्तित करने के लिए यह जरूरी है कि वे धीरे-धीरे यह रूप धारण करें। प्रारम्भ में प्रवृत्तियाँ शुरू हों, वातावरण का अध्ययन हो, तत्पश्चात् सब साधन जुटाए जाएँ और फिर समवाय शिक्षण प्रारम्भ हो। क्रमिक परिवर्तन बिना समस्या अधिकाधिक जटिल बनती है और लोगों में गलतफहमी पैदा होती है जो आगे जाकर अनेक बाधाओं का कारण बनती है।

सारांश

प्रस्तावना—अबुनियादी शालाएँ और बुनियादी शालाएँ दोनों प्रति वर्ष खुलती हैं। फिर अबुनियादी शालाओं को बुनियादी शालाओं में बदला जाता है। यह तरीका उपयुक्त नहीं है। नई शालाएँ बुनियादी शालाएँ ही खोली जाएँ तो अच्छा है।

शालाओं को परिवर्तित करने का उपयुक्त तरीका

(क) सर्वप्रथम बेसिक शिक्षा की प्रारम्भिक प्रवृत्तियाँ शुरू की जाएँ।

(ख) वातावरण का अध्ययन उद्योग, जनतत्त्वा व शाला की जरूरतों को आधार मानकर किया जाए।

उपरोक्त अध्ययन यह स्पष्ट करेगा कि कितने समय में सब सुविधाएं जुटाना संम्भव होगा। सुविधाएं जुट जाएंगी और समवायी शिक्षण प्रारम्भ करने में कोई भी कठिनाई बाकी नहीं रहेगी, तभी शाला को बुनियादी शाला का नाम दिया जाएगा।

कुछ अन्य विचारणीय विन्दु—इस दृष्टि से पाठ्यक्रम में अंग्रेजी का समावेश, विज्ञान को महत्त्व देना, कुछ पाठकों को परम्परित पद्धति से पढ़ाने की अनुमति, छात्रों का अन्य शालाओं में सुलभ प्रवेश, व कुछ प्रगतिशील शिक्षा पद्धतियों का इस शाला में प्रयोग की सुविधा आदि बिन्दु विचारणीय हैं।

उपसंहार—शालाओं का परिवर्तन वास्तविक हो यही आज जरूरत है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(१) अबुनियादी शालाओं को बुनियादी शालाओं में परिवर्तित करने में जो कठिनाइयां पैदा होती हैं, उनका विस्तार से वर्णन कीजिए।

(२) अबुनियादी शालाओं को बुनियादी शालाओं में परिवर्तित करने का अच्छा तरीका क्या है? विस्तार से वर्णन लिखिए।

—:०:—

: २८ :

जनतान्त्रिक-विकेन्द्रीकरण और बुनियादी शिक्षा

प्रस्तावना—आज हम जनतन्त्र के युग में जी रहे हैं। जनतान्त्रिक शासन के साधारणतः यह परिभाषा व्यक्त की जाती है—"लोगों की सरकार लोगों के ... लोगों के लिए।" जनतन्त्र भी आज के युग में शक्ति के केन्द्रीकरण के आधार पर कई प्रकार का माना जाता है। कहीं पर सम्पूर्ण राष्ट्र के सब मतदाता एक व्यक्ति को राष्ट्रपति चुन लेते हैं, जो समस्त राष्ट्र की व्यवस्था चलाता है। कहीं पर मतदाता प्रान्तीय विधान सभा और केन्द्र के लिए प्रतिनिधियों को चुनते हैं जिनमे से क्रमशः प्रान्त और केन्द्र के मंत्रीमंडल बनते हैं, जो शासन चलाते हैं। और ऐसे ही अनेक प्रकार के तरीके अलग-अलग देशों में चलाए जाते हैं।

शक्ति का विकेन्द्रीकरण—किसी भी प्रकार का शासन क्यों न हो शासन, शक्ति का विकेन्द्रीकरण करना जरूरी होता है। अगर किसी मुल्क का शासन शान्ति और सुविधा से चल सकता है तो वह केवल शक्ति के विकेन्द्रीकरण द्वारा ही सम्भव है। अब तक भी शासन का विकेन्द्रीकरण किसी न किसी रूप में चलता चला आ रहा था। जनतन्त्र में वैसे भी अन्तिम शक्ति जनता के हाथों में ही निहित रहती है। इस प्रकार शक्ति का विकेन्द्रीकरण तो हर प्रकार के जनतन्त्र में किसी न किसी रूप में रहता ही है। फिर यह सवाल क्यों पैदा हुआ कि विकेन्द्रीकरण किया जाए।

विकेन्द्रीकरण के रूप—इस दृष्टि से यह स्पष्ट है कि २ अक्टूबर १९५९ के पूर्व (भारत में जनतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण के प्रारम्भ की तारीख) हमारे देश में शासन शक्ति का जो विकेन्द्रीकरण था उसका आधार केवल यही था कि कार्यों के संचालन में विभिन्न स्तर के अधिकारी उनके हिस्से की जिम्मेदारी को पूरी करने या कराने की दृष्टि से अगुआ बनें। काम अधिक योग्यता से पूरा हो। काम तेजी से पूरा हो। परन्तु इस दशा में जो भी काम करना होता था, उसके बाबत, योजना सुझाव या निर्देशन ऊपरी स्तर से ही प्राप्त होते थे। परन्तु आज जब हम जनतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण की बात करते हैं तो हमें यह पूरी तरह समझ लेना चाहिए कि यह शासन शक्ति के विकेन्द्रीकरण से पूर्णतः भिन्न प्रकार की प्रणाली है।

इस प्रणाली की विशेषता यह है कि इसमें योजना बनाने का जिम्मा, जो पहले उच्चस्तर का था, वह अब शासन की शृंखला की निम्नतम कड़ी गांव और उसकी पंचायत पर आया है। पंचायत को अब अधिकार मिला है कि वह अपनी जरूरत को पूरा करने वाली योजना बनाने और उसके अन्तिम रूप के स्वीकार हो

जाने पर उसे वही स्वयं कार्यान्वित भी करे। इस प्रकार से एक राजनैतिक शा
के विद्वान की दृष्टि में—"जनतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण लोगों द्वारा उनकी अ
सरकार के काम में अधिक विस्तृत, अधिक गहन और अधिक निकट मेल (समाय
का विचार लिए हुए है।...जनतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण की जड़ इस हा अभिप्राय
है कि लोगों को राज्य के कार्य के मध्यवर्ती स्तरों पर साधारण रूप में और स्थान
स्तर (Local level) पर प्रमुख रूप में अधिकाधिक संख्या में, शामिल किया जाए
इस प्रकार 'जनतान्त्रिक-विकेन्द्रीकरण'—जनता द्वारा उसकी अपनी सरकार के का
को चलाने में अधिक निकट सहयोग का द्योतक है।

सामुदायिक विकास की बुनियाद—हमारे देश में सामुदायिक विकास
दृष्टि से हमने अपनी दो पंचवर्षीय योजनाएँ पूरी कर ली हैं। तीसरी योजना का पू
तरह लाभ लेने का प्रश्न हमारे सामने प्रस्तुत है। सामुदायिक विकास में निहित मू
विचार यह है कि प्रारम्भ में राज्य द्वारा तैयार की हुई योजनाएँ जनता के सहयोग
से पूरी हों और इस तरीके से जनता इस प्रकार प्रशिक्षित हो कि आगे जाकर जनता
स्वयं अपनी योजना तैयार करे जो सरकार के सहयोग से पूरी हों। इस तरह राज्य
द्वारा निश्चित योजना का स्थान जनता द्वारा निश्चित योजना ले, और राज्य द्वारा
निश्चित योजना का जनता द्वारा सहयोग की भावना, जनता द्वारा निश्चित योजना
का सरकार द्वारा सहयोग की भावना ले। इस प्रकार हमारा वर्तमान स्वरूप,
उसकी विकसित स्थिति में जनता को किस सीमा तक सजग हुई देखना चाहता है
उसका स्पष्टीकरण उपरोक्त पंक्तियों में हो जाता है।

[रा]जस्थान प्रान्त ने पहल की और २ अक्टूबर सन् १९५९ को जोधपुर के निकट [ना]गौर नगर में इस कार्यक्रम का उद्‌घाटन स्व० प्रधान मंत्री पं० नेहरू द्वारा सम्पादित [हुआ]। सारे प्रान्त में उस दिन २३२ पंचायत समितियाँ और २६ जिला परिषदें [अस्ति]त्व में आईं।

इस क्रम में हमारे देश के आन्ध्र प्रान्त में भी यही प्रयोग प्रारम्भ हुआ। इस [राज्य] ने इस प्रयोग को सारे राज्य में अपनाने की बजाय केवल एक चुने हुए स्थान [पर अ]पनाया है। शादनगर ब्लाक को इस दृष्टि से चुना गया। इसकी कुल आबादी [...]०० है, जो ६६ गाँवों में विभाजित है। हमारे स्व० प्रधान मन्त्री पं० नेहरू ने [इस प्र]योग का उद्‌घाटन दिनांक ११ अक्टूबर १९५९ को किया था।

जनतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण का ढाँचा—इस ढाँचे के अन्तर्गत तीन स्तर स्वी[...]कार किए गए हैं। इन तीनों स्तरों पर सरकारी कार्यकर्ताओं का योजनाओं के [निर्]णय की स्थिति में मतदान से पूर्णतः वर्जन किया गया है। वे केवल तकनीकी [विशे]षज्ञ के रूप में ही वहाँ स्थान रखते हैं उनका हर एक कार्यवाही में शामिल [हो]ना भी जरूरी माना गया है। इस योजना के अन्तर्गत शासन एवं व्यवस्था के [निम्]नलिखित तीन स्तर हैं :—

(1) प्रथम स्तर—इस स्तर पर गाँव की पंचायत विकास और उत्पादन की [इका]ई है आधारभूत स्थिति ग्रहण किये हुए है।

(२) द्वितीय स्तर—इस स्तर पर 'पंचायत-समिति', जिसमें एक तहसील के [सब] गाँवों के सरपंच, विधान सभा के स्थानीय सदस्य और करीब छः संयोजित [(Co]-opted) सदस्य शामिल होते हैं। इसमें विकास खंड के समस्त प्रसार अधिकारी [भी] शामिल होते हैं, जो योजनाओं के निर्माण में तकनीकी सहायता देते हैं, परन्तु [मतदा]न का उन्हें अधिकार नहीं होता। पंचायत समिति योजनाओं को निर्माण और [उनक]ो कार्यान्वित करने की दृष्टि से इस योजना की एक बड़ी महत्वपूर्ण कड़ी है। [सरपंचो]ं का सभापतित्व चुना हुआ प्रधान करता है और उस विकास खंड का विकास [अधिक]ारी उसके सेक्रेट्री की स्थिति ग्रहण करता है। योजनाओं को अंतिम रूप से [निश्च]त करने का काम प्रधान और पंचायत समिति के सदस्यों का है, और उनको [कार्या]न्वित करने में अधिक जिम्मा विकास अधिकारी पर आता है।

(३) तृतीय स्तर—इस योजना की उच्चतम कड़ी जिला परिषद है। जिसमें [जिले] की सब पंचायत समितियों के प्रधान, विधान सभा के सदस्य और संसद सदस्य [होते] हैं, जिन्हें मतदान का अधिकार होता है। इस परिषद् में विभिन्न विभागों के [जिला] स्तरीय अधिकारी केवल तकनीकी राय की दृष्टि से सदस्य होते हैं, मतदान [का उन्]हें अधिकार नहीं होता। जिले के कलेक्टर इस परिषद् के पदेन (Ex-officio) [सदस्य] होते हैं। जिला परिषद् की बैठकों का संचालन जिला प्रमुख के द्वारा होता [है। यो]जना विकास-अधिकारी, इस परिषद् के सेक्रेट्री की तरह काम करता है। इस [परिष]द् का प्रमुख कार्य है, विभिन्न पंचायत समितियों से प्राप्त योजनाओं में तालमेल [बिठाना] और उन सबका कारोबार ठीक चल रहा है या नहीं इस दृष्टि से उन पर [निगरानी] रखना।

इस प्रकार स्वनिर्मित योजनाओं को कार्यान्वित करने की दृष्टि से एवं जिम्मा उठाने का काम, ग्राम स्तर पर ग्राम पंचायत का, तहसील पंचायत समिति का और जिला स्तर पर जिला परिषद् का, निश्चित हुआ। पंचायत समितियों का यह भी अधिकार है कि वे राज्य सरकार की स्वीकृति से अपने क्षेत्र में, आवश्यकतानुसार कर लगा सकें राज्य सरकार, पंचायत समितियों को करों की आमद के अतिरिक्त कर्ज अथवा अनुदान देकर, सहायता करती है, ताकि उनका विकास-कार्य सुविधापूर्ण तरीके से प्रगति करता जाए।

जनतांत्रिक विकेन्द्रीकरण और शिक्षा में तकनीकी मार्गदर्शन—प्रत्येक पंचायत समिति को अपने शिक्षा सम्बन्धी कारोबार में मार्गदर्शन की दृष्टि से एक 'शिक्षा-प्रसार अधिकारी' की सेवाएँ उपलब्ध होती हैं, जो स्थाई रूप से पंचायत-समिति के कार्यालय में कार्य करता है। पंचायत-समिति भी इसी कार्यकर्ता से मार्गदर्शन पाती है। जिला-परिषद् को शिक्षा-कार्य में तकनीकी सहायता नियमित रूप में उपनिरीक्षक द्वारा प्राप्त होती है। और जब कभी भी जिला परिषद् की बैठक होती है निरीक्षक शिक्षणालय को उपस्थित रहना जरूरी होता है। वही इस प्रकार तकनीकी मार्गदर्शन देता है।

बुनियादी शालाएँ और जनतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण—वर्तमान दशा में प्राथमिक शालाएँ पंचायत समितियों के शासन के अन्तर्गत आई हैं। देश में इस समय प्राथमिक शिक्षा, बुनियादी-तालीम है। अतः सभी बुनियादी शालाएँ, पंचायती एवं पंचायत समितियों के अधीन हो गई हैं। इन शालाओं पर पहले जो राज्य-शिक्षा विभाग का अधिकार था, वह अधिकार अब सभी पहलुओं से पंचायत समितियों को प्राप्त हो गया है। शाला की इमारत, उद्योग की दृष्टि से जमीन एवं उपकरण, खेल की सुविधाएँ शालाओं की अन्य सामग्री, अध्यापकों की नियुक्ति, उनका स्थानान्तरण एवं वेतन की व्यवस्था एवं उनका निरीक्षण और मार्गदर्शन सभी की व्यवस्था की जिम्मेदारी पंचायत समितियों की है।

शिक्षक और जनतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण—इस दृष्टि से जनतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण के पश्चात् आज के शिक्षक को जो सबसे बड़ी सुविधा हो गई है, वह यह है कि उसकी और शाला की सम्पूर्ण कठिनाइयों का निवारण करने वाली शक्ति का केन्द्र जो पहले उससे बहुत दूर था, अब उसके इतना निकट आ गया है कि उसकी सहायता और मार्गदर्शन उसे पहले की तुलना में बड़ी सरलता से उपलब्ध हो सकेगा। इस प्रकार शाला का कार्य अधिक सुचारु रूप से चलने लगेगा।

ग्रामीण नागरिक और जनतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण—अब तक गाँवों के नागरिकों को यह असुविधा थी कि उनकी शालाओं की इमारत, शाला की अन्य सुविधाएँ, शाला की सामग्री, शाला के लिए अध्यापक आदि की प्राप्ति में काफी देरी होती थी और कई बार उस देरी में उचित कारण होने की दशा में भी वे इस दृष्टि से सदा बने रहते थे कि राज्य कर्मचारियों अथवा निरीक्षकों की ओर से लापरवाही रही है।

जनतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण एक दिग्दर्शीय हितार्थायोजन—जनतान्त्रिक विके

रण, शिक्षा के क्षेत्र में, शिक्षक और ग्राम के नागरिक दोनों को संतुष्ट करने की ष्टि से एक ऐसी कुंजी है, जिसके द्वारा एक ही साथ दो समस्याओं का समाधान रहा है। एक ओर शिक्षक के इससे संतुष्ट होने की अपेक्षा निहित है, जैसा कि र विस्तार से व्यक्त कर दिया गया है। और दूसरी ओर इससे ग्रामीण नागरिक भी पूरा-पूरा सतोष प्राप्त हो सकेगा, क्योंकि उसके गांव के स्कूल को चलाने की ी शक्ति अब इस जनतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण ने उसे प्रदान कर दी है। अतः यह भीय हितार्थायोजन है।

जनतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण एक द्विपक्षीय चुनौती—एक शिक्षा विशेषज्ञ के हैं "आज विकेन्द्रित समाज की ओर अग्रसर हो रहे हैं। हमने शासन का ान्त्रिक विकेन्द्रीकरण कर लिया है। आज गांव का नागरिक इस विकेन्द्रीकरण ो एक चुनौती मानता है। उसने इस चुनौती को दृढ़ता से स्वीकार किया है। क्या सी प्रकार हमारे शिक्षक ने इस नई तालीम को चुनौती के रूप में स्वीकार किया ?...." इस दृष्टि से यह स्पष्ट है कि राष्ट्र ने बुनियादी शिक्षा को राष्ट्रीय-शिक्षा-द्धति के रूप में स्वीकार कर लिया है, फिर भी आज का अध्यापक इस दृष्टि से दासीन है। वह उदासीनता अब तक निभती रही क्योंकि शिक्षक के कार्य की देख-ल का अब तक का तरीका एक दूसरी तरह का तरीका था। अब तक गांव की नियादी-शाला का रिश्ता केवल उपनिरीक्षक से था। यही रिश्ता अब बड़ा व्यापक न गया है। अब सह-उपनिरीक्षक के अतिरिक्त गांव के पंच, गांव की पंचायत के रपंच, पंचायत समिति के प्रधान, उप-प्रधान, विकास अधिकारी भी जनतान्त्रिक केन्द्रीकरण अधिनियम के अन्तर्गत शाला के सुचारु रूप से सचालित होने की दृष्टि जिम्मेदार हो गए हैं। शिक्षा-विभागीय पूर्व परिपाटी के आधार पर सह-उपनिरीक्षक अब शिक्षा प्रसार अधिकारी कहलाता है, के उच्च स्तरीय अधिकारी जो क्रमशः निरीक्षक, निरीक्षक, आदि हैं, शाला के निरीक्षण के अधिकार अब भी रखते हैं।

(क) शिक्षक को चुनौती—इस स्थिति को ध्यान मे रखकर रचनात्मक दृष्टि देखा जाए तो यह स्पष्ट है कि अब बुनियादी-शाला के साधारण स्तर के एक ऐसे क्षक के लिए, जो शाला के कार्य मे रुचि लेता है बड़ी सुविधा हो गई है। अब के व्यक्तित्व, मेहनत और गुणों की निश्चित ही अधिक कद्र हो सकेगी और उसे सतोष होकर उसके इस व्यवसाय के प्रति असन्तोष के कम होने में मदद मिलेगी।

परन्तु वे शिक्षक जो शिक्षा के कार्य में रुचि नहीं लेते हैं, टिक कर स्कूल का नहीं करते। अपना दोष दूसरों पर लादने की दृष्टि से अन्यों पर हमेशा दोषा- करते रहे हैं। अगर वे राष्ट्रीय शिक्षा पद्धति-बुनियादी तालीम को एक चुनौती कर शिक्षा, एवं राष्ट्र-निर्माण के कार्य में जुट नहीं जाते तो यह निश्चित है कि अब कोई ठिकाना नहीं है। इस प्रकार इस जनतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण के युग ने के शिक्षक को बुनियादी तालीम को चुनौती के रूप में स्वीकार करने को र कर दिया है।

(ख) ग्रामीण नागरिकों को चुनौती—आज के नागरिक अब तक पाठशालाओं, पकों एवं शाला सामग्री आदि अनेकों मामलों में शिक्षा विभाग के अधिकारियों

से अधिक स्फूर्ति की अपेक्षा करते थे। अब यह सारा जिम्मा उन पर स्वयं
गया है। यह जिम्मेदारी उनके लिए एक चुनौती है। इस जिम्मेदारी ने उनके
निम्न प्रश्न उपस्थित कर दिये हैं:—

(१) बुनियादी शिक्षा शालाओं को उपयुक्त इमारतें मिल पाती हैं या न

(२) बुनियादी शिक्षा के कृषि उद्योग के लिए जमीन की व्यवस्था हो
है या नहीं ?

(३) जमीन की व्यवस्था की दृष्टि से, शाला और बालकों के हि
सर्वोपरि मान कर जमीन उपलब्ध की जाती है या नहीं ?

(४) अन्य उद्योगों के लिए पर्याप्त साधन उपलब्ध किये जाते हैं या नहीं

(५) शिक्षण सहायक सामग्री अनुकूल और पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध
जा पाती है या नहीं ?

(६) प्रशिक्षित और योग्य अध्यापकों को गांवों की शालाओं में
किया जाता है या नहीं ?

(७) अध्यापकों के जीवन में स्थायित्व लाने, और उनके द्वारा शाला
वातावरण के गहन अध्ययन से शाला का स्तर उन्नत करने की दृष्टि से, उन्हें
ही स्थान पर पर्याप्त समय तक रखने के विभागीय नियमों का पालन हो पा
या नहीं ?

(८) पहले अध्यापकों की कठिनाई सुनने में उच्च अधिकारियों की
देरी होती थी, अब वह समस्या दूर होती है या नहीं ?

(९) गांवों के स्कूलों में अध्यापकों की नियुक्ति में पहले जो देरी होती
और ग्रामीण शालाएँ, जो अध्यापकों के अभाव में खाली पड़ी रहती थीं, उस सम
का कोई हल निकल पा रहा है या नहीं ?

(१०) अध्यापकों का सामाजिक-स्तर (Social Status), जो अब
गिरता चला जा रहा था, उसके उत्थान की आशा बँध पा रही है या नहीं ?

(११) अध्यापकों को पहले वेतन समय पर नहीं मिलता था, वह अब
पर मिल पाता है या नहीं ?

(१२) अध्यापकों को प्रोत्साहन, संतोष, हमदर्दी, आत्मीयता, और सुर
(Security) का पहले से अधिक अनुभव होने लगे, ऐसा व्यवहार करने की
हैं, या ऐसा दृष्टिकोण बनाने की दृष्टि से गांव के लोगों को प्रशिक्षित किया
का क्रम शुरू है या नहीं ?

इसी प्रकार के अनेकों प्रश्न हैं, जो आज हमारे इस जनतान्त्रिक विके
करण के पश्चात् पंचायत समितियों से सम्बद्ध कार्यकर्ताओं और
नागरिकों के सामने चुनौती के रूप में उपस्थित हैं। इस चुनौती को स्वीकार करने
पर ही शिक्षा, और प्रमुखतः बुनियादी शिक्षा का भविष्य अधिकाधिक उज्वल
सकेगा।

उपसंहार—संक्षेप में हमें यों कहना चाहिए कि जनतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण
की योजना, बुनियादी-शिक्षा की योजना में निहित विकेन्द्रित समाज की मूल

िल है। अतः बुनियादी शिक्षा के लिए यह अवसर आ गया है कि वह इस ा को सफल बनाने में सहायक हो और दूसरी ओर जनतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण का यह कर्तव्य हो जाता है, कि वह हमारी बुनियादी शिक्षा एवं बुनियादी-ों को पहले से अधिक अच्छे तरीके से काम करने का अवसर और सुविधाएँ करें। अगर ये दोनों मिल-जुल कर आगे बढ़ें तो दोनों की सफलता ी है।

सारांश

प्रस्तावना—शासन के अलग-अलग तरीके अलग-अलग देशों में चलाये

शक्ति का विकेन्द्रीकरण—शासन शक्ति का विकेन्द्रीकरण किये बिना ासन का सुचारु रूप से चलना सम्भव नहीं होता। हमारे जनतन्त्र में अब तक शासन शक्ति का विकेन्द्रीकरण था, फिर प्रश्न पैदा होता है कि तब फिर इस नवीन विकेन्द्रीकरण की जरूरत क्यों कर पैदा हुई।

विकेन्द्रीकरण के रूप—अब तक शासन शक्ति का विकेन्द्रीकरण था, ो अलग-अलग अधिकारियों के ऊपर के अधिकारियों द्वारा प्राप्त योजनाओं को रा करने की शक्ति की सीमा के आधार पर था।

परन्तु जनतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण की विशेषता यह है कि ग्राम अपने विकास ी योजना स्वयं, ग्राम पंचायत के संरक्षण में बनाए और उसका अंतिम रूप स्वीकार ो पर वह स्वयं ही उसे पूरी करें।

सामुदायिक विकास की बुनियाद—प्रारम्भ में राज्य की योजनाएं नता के सहयोग से पूरी हों और बाद में एक ऐसी स्थिति आए जब जनता की जनाएं राज्य की मदद से पूरी होने लगें।

जनतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण की आवश्यकता—उच्चस्तरीय योजनाओं पूरी करने की दृष्टि से शासन शक्ति का विकेन्द्रीकरण पर्याप्त नहीं था। जनतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण आवश्यकता बन गया है। इसके तीन पहलू हैं:—

(क) प्रशासनिक।
(ख) आर्थिक।
(ग) सामाजिक।

जनतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण का श्रीगणेश—इसका श्रीगणेश सम्पूर्ण स्थान प्रान्त में २ अक्टूबर सन् १९५९ को और आन्ध्र प्रान्त के केवल एक शादनगर विकास खंड में ११ अक्टूबर सन् १९५९ को प्रायोगिक रूप में ।

जनतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण का ढांचा—
१—प्रथम स्तर :—गाँव की पंचायत।
२—द्वितीय स्तर :—पंचायत समिति।
३—तृतीय स्तर :—जिला परिषद्।

सभी स्तरों पर राज्य के पदाधिकारियों की स्थिति केवल तकनीकी दर्शकों के रूप में ही है। उन्हें मतदान का अधिकार नहीं है।

जनतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण और शिक्षा में तकनीकी मार्गदर्शन पंचायत और पंचायत समिति स्तर पर सह-उपनिरीक्षक व जिला स्तर पर निरीक्षक यह कार्य करता है।

बुनियादी शालाएँ और जनतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण—इस क्षेत्र बुनियादी शालाओं के शासन एवं व्यवस्था सम्बन्धी सब अधिकार अब जनतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण के अन्तर्गत पंचायतों व पंचायत समितियों को प्राप्त हो गये हैं।

शिक्षक और जनतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण—इस योजना द्वारा शिक्षक मार्गदर्शन देने वाली शक्ति उसके अधिक निकट आ गई है।

ग्रामीण नागरिक और जनतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण—गांव की शाला व्यवस्था से गांव के नागरिकों को पहले जो शिकायत थी, उसके निवारण करने शक्ति अब गांव या गांव के प्रतिनिधियों को प्राप्त हो गई है। अतः उन्हें एक वस्तुस्थितियों का भान होगा, और दूसरी ओर वे अपनी गांव की शाला की को पूरी करने की पूरी-पूरी कोशिश भी करेंगे।

जनतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण एक द्विपक्षीय हितार्थयोजन—इससे और उसके अध्यापक का भी हित होगा और ग्राम और उसके नागरिक को भी प्राप्त होगा।

जनतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण एक द्विपक्षीय चुनौती—अब शिक्षक के लिए यह चुनौती है कि वह शाला में पूरा-पूरा काम करे और ग्राम और उसके नागरिकों के लिए यह चुनौती है कि वह शाला की जरूरतों को पूरा करे और अध्यापक को सन्तुष्ट रक्खे। जो समस्याएँ लेकर वह शिक्षा विभाग के उच्च अधिकारियों के पास जाता था, उनका अब स्वयं समाधान निकाले।

उपसंहार—बुनियादी शिक्षा की योजना और जनतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण योजना दोनों की बुनियाद विकेन्द्रित समाज व्यवस्था है। अतः दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। अगर दोनों मिल-जुल कर आगे बढ़ें तो दोनों की सफलता निश्चित है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(१) जनतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण हमारी बुनियादी शालाओं को किस प्रकार प्रभावित करेगा? विस्तार से लिखिये।

(२) "जनतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण एक द्विपक्षीय चुनौती है" इस कथन की बुनियादी शिक्षा की दृष्टि में रखते हुए व्याख्या कीजिए।

—:०:—

शाला प्रबन्ध में कतिपय नवीन दिशायें

प्रस्तावना—शिक्षा के क्षेत्र मे नवीन अनुभवों, क्षेत्रीय आवश्यकताओं और ...गों ने शाला प्रबन्ध के क्षेत्र मे कतिपय नवीन दिशाओं का समावेश किया। इस ...म में विद्यालयों में प्रसार सेवाओं और सहायक सेवाओं का विशेष महत्व है। ...के ही विषय में इस अध्याय में चर्चा की जावेगी।

विद्यालयों में प्रसार सेवायें—कुछ समय पूर्व तक शिक्षक-प्रशिक्षणालयों मे प्राप्त किये गये प्रशिक्षण को ही पर्याप्त माना जाता था। यह प्रशिक्षण चाहे काफी वर्ष पूर्व हुआ हो और उसके बाद शिक्षा के क्षेत्र में अनेक प्रयोगो के कारण नवीन-...तायें आ गई हों, किन्तु अब यह धारणा बिल्कुल स्पष्ट हो गई है और लगभग समस्त देशों में इसे प्रायोगिक रूप दिया जा रहा है कि शिक्षक ने जो कुछ प्रशिक्षणालय में प्राप्त किया है वह तो केवल बुनियाद मात्र ही है। अध्यापन के समय प्राप्त अनुभवों के आधार पर वह इस बुनियाद पर अपना भवन बनाता है। इस भवन में सजावट आदि को अंतिम रूप देने के लिये उसे समय-समय पर नवीनताओं की जानकारी, प्रशिक्षणालयों के द्वारा दी जानी चाहिए। ऐसे प्रयत्न ही प्रसार सेवा कहलाते हैं।

'प्रसार सेवा' जैसा कि नाम से ही विदित है किसी एक केन्द्र से दूर के स्थानों तक अनुभव या नवीन ज्ञान का विस्तार करना है। इस क्रम में प्रशिक्षणालय का प्रसार सेवा केन्द्र अपने आस-पास की शालाओं तक नये अनुभवों को पहुँचाता है। प्रशिक्षणालयों का कार्य आज केवल प्रशिक्षण देना ही नहीं है, अपितु क्षेत्र में कार्य करने वाले अध्यापकों की अनुभूत कठिनाइयों के सम्बन्ध में नये हल ढूंढना भी है। इन कठिनाइयों पर सोच-विचार और प्रयोग करके ये स्वयं की कमियों को दूर करते हैं। इस प्रकार की क्रिया मे हमारे प्रशिक्षणालय स्वय एक जीवित केन्द्र का रूप लेते हैं और क्षेत्र के अधिकाधिक समीप आने का यत्न करते हैं।

इस प्रकार प्रसार सेवा का ध्येय प्रशिक्षणालयों को प्रयोगशाला का रूप देना और अध्यापकों को वहाँ के प्रयोगो के नतीजों से लाभ पहुँचाना है।

विद्यालय और प्रसार सेवा केन्द्रः—उपरोक्त चर्चा से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रसार सेवा केन्द्र की स्थापना विद्यालयों के सुधार के लिए की गई है। ऐसी दशा मे विद्यालयों का यह जिम्मा होता है कि वे उस केन्द्र का पूरा-पूरा लाभ उठावें। वास्तविक लाभ तब हो सकता है जब विद्यालय को अपने विषय मे यह जानकारी हो कि किन-किन कार्यों मे वह संतोषजनक प्रकार से कार्य कर रहा है और किन-किन ...त्रों पर पिछड़ा हुआ है। ये दूसरी प्रकार के स्तर ही वे हैं जहाँ विद्यालय का ...प्रसार सेवा केन्द्र से मदद के लिए आग्रह करने का जिम्मा आता है। प्रसार सेवा

के बालकों की शिक्षा में पूर्णता लाने के लिए अध्यापन, अध्यापक व शाला उपकरण तक ही सीमित न रहकर हमें दूसरी कमियों की पूर्ति के लिये भी यत्न करना होगा। इस प्रकार की विशेष सेवाओं को सहायक सेवायें (एसीलेरी सर्विसेज) कहते हैं। ये निम्नलिखित हैं:—

(१) शाला स्वास्थ्य सेवा।
(२) शाला में भोजन की व्यवस्था।
(३) पाठ्य पुस्तकों एवं लेखन सामग्री का मुफ्त वितरण।
(४) शाला पोशाक की व्यवस्था आदि।

शाला स्वास्थ्य सेवा—शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य एक दूसरे पर आधारित होते हैं अतः उचित शारीरिक विकास के लिए यह प्रबन्ध जरूरी है। इससे बालकों में आगे चलकर कष्ट देने वाली कमियों को जल्दी ही पहचाना जा सकता है। इसके लिए डाक्टर की नियुक्ति की जाती है जो अपने क्षेत्र की शालाओं की देख-भाल करता है। तथा संक्रामक रोगों से बचाव के लिए उचित प्रबन्ध करता है। ग्रामीण क्षेत्रों में स्थापित प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र (प्राईमारी हेल्थ सेंटर) के डाक्टर इस कार्य को देखते हैं फिर भी यह कार्य अभी अपने देश में संतोषप्रद तरीके से शुरू नहीं हुआ है। अब इस ओर विशेष ध्यान दिया जा रहा है।

शाला प्रबन्ध की दृष्टि से इस प्रकार की सेवाओं को शाला में प्रारम्भ करने व प्रारम्भ हो जाने पर उनकी उचित व्यवस्था करना जरूरी है।

शाला भोजन—इस कार्यक्रम का उद्देश्य स्थानीय वातावरण में सुलभ खाद्य पदार्थों द्वारा भोजन की कमियों को दूर करता है। खुराक शक्तिदायक हो और सस्ती हो जिससे यह सब वर्ग के बच्चों के लिये सुलभ हो। यूनीसेफ (युनाइटेड नेशन्स चिल्ड्रेन्स एमरजेन्सी फण्ड) की सहायता से दूध, फल, मछली व सब्जियों को छोटे बच्चों और गर्भवती माताओं को उपलब्ध किया जाता है।

पाठ्य पुस्तकों और लेखन सामग्री का वितरण—बच्चों की संख्या बढ़ाने के लिए इन वस्तुओं को मुफ्त दिया जाता है। यह लाभ १० से ५०% तक बालकों को दिया जाता है। दी हुई पाठ्य पुस्तकों का जीवन बढ़ाने का यत्न किया जाता है। इस दृष्टि से बच्चे उन पुस्तकों को सम्भालकर रक्खें यह सिखाया जाता है। साथ ही उन पर जिल्द बंधवाने का प्रबन्ध भी किया जाता है।

शाला पोशाक—शाला को एक समाज का रूप देने में बालकों की पोशाक का बड़ा असर पड़ता है। इसके लिए बालकों को यह समझाया जाता है कि जब वे नये वस्त्र अपने बच्चे के लिए बनवावें तो वे वस्त्र शाला की पोशाक के रूप में हों। इस प्रकार धीरे-धीरे इस काम में सफलता मिल जाती है। ऐसे पालक जो ऐसी पोशाक नहीं बनवा सकते हैं उनके बच्चों के लिए भी पोशाक की व्यवस्था करने का यत्न किया जाता है। मद्रास राज्य ने, अपने स्कूलों के १७ लाख बालकों की पोशाक रा[illegible] के बिना तैयार कराके वितरण का कार्य किया है।

[illegible] संक्षेप में आज की नई आवश्यकता के ओर विचारधारा के [illegible] कि [illegible]

नये प्रयोग चलावें और उनसे प्राप्त अनुभव को अपने प्रशिक्षण कार्य में सम्मिलित करें। इस प्रकार की प्रसार सेवा का कार्य प्रशिक्षणशालयों का एक आवश्यक अंग बनता जा रहा है और सम्बन्धित शालाओं को इन प्रयोगों के चलाने में सहयोग देना तथा अपने अध्यापक मंडल द्वारा सम्पन्न कराने का प्रबन्ध करना होता है। प्रसार सेवा के अतिरिक्त आजकल सहायक सेवायें भी शालाओं में चलाई जा रही है, जिनका ध्येय बालकों की इस तरह मदद करना है जिससे शिक्षा सस्ती और सुगम बन सके।

सारांश

प्रस्तावना—शिक्षा के क्षेत्र में नये-नये प्रयोगों से कई नवीनतायें आ रही है। शिक्षा क्षेत्र में प्रसार सेवाएँ एवं सहायक सेवायें ऐसी ही नई क्रियायें हैं।

विद्यालयों में प्रसार सेवायें—आज यह माना जाने लगा है कि अध्यापक को नई-नई बातों व प्रयोगों से परिचित कराना चाहिए। शिक्षक की बुनियाद प्रशिक्षणालय में बनती है, अनुभव से वह आगे बढ़ता है और प्रसार सेवाएँ उसमें पूर्णता लाती है।

विद्यालय और प्रसार सेवा केन्द्र—प्रत्येक परियोजना (प्रोजेक्ट) किसी न-किसी अध्यापक के सुपुर्द हो जो उसमें पूरी रुचि रखता हो व सारे अध्यापक मिलकर उसकी पूरी-पूरी योजना बनावें। तब प्रसार केन्द्र से उसे स्वीकृत करावें। परियोजना प्रारम्भ करने के पूर्व स्थिति का ज्ञान तथा बाद में समय-समय पर मूल्यांकन किया जाना चाहिए।

अन्त में निश्चित अवधि के पश्चात् पूर्णमूल्यांकन करके आगे के लिए आवश्यक सुधार किये जाने पर विचार किया जावे तथा प्रत्येक परियोजना का पूरा-पूरा विवरण रखा जावे। इस योजना बद्ध विवरण से सही मार्गदर्शन होता है।

सहायक सेवायें—(ऐन्सीलेरी सर्विसेज) आज की विचारधारा, अध्यापन के अलावा छात्रों की अन्य कठिनाइयों की ओर भी ध्यान दिया जाता जिन्हें सहायक सेवायें (ऐन्सीलेरी सर्विसेज) कहते हैं।

: ३० :

शाला प्रबन्ध के क्षेत्र में कतिपय सावधानियाँ

प्रस्तावना—इस पुस्तक में विद्यालय की व्यवस्था और प्रबन्ध के सम्बन्ध में [illegible] महत्त्वपूर्ण अंगों को शामिल करने का यत्न किया गया है। इस क्रम में प्रत्येक [illegible] पर रचनात्मक दृष्टि से विचार व्यक्त किये गये और यदा-कदा सावधानियाँ भी [illegible] गई। परन्तु आज के दिन ऐसी कई स्थितियाँ हमारे विद्यालयों में नजर आती [illegible] जो कार्यकर्ताओं में योजना बद्ध क्रम से काम करने की दृष्टि के अभाव, अत्याधिक [illegible] प्रदर्शन एवं शिक्षण कार्य को पर्याप्त महत्त्व न दे पाने आदि कारणों से [illegible] होती हैं। इन पर भी विचार कर लेना जरूरी है। क्योंकि इनके बिना पूर्व [illegible] में व्यक्त विचारों का एक सीमा तक अपूर्ण रह जाना संभव है। ऐसे ही [illegible] बिन्दुओं पर चर्चा करना इस अध्याय का उद्देश्य है।

(क) योजना बद्ध क्रम से काम करना जरूरी है—आज अनेक विद्यालय [illegible] सत्र भर के कार्यक्रम को पूरी तरह समझकर उसकी योजना तैयार नहीं करते [illegible] एक समय-विभाग-चक्र बनाकर सत्रारम्भ में कार्य को शुरू कर देते हैं। जरूरी [illegible] है कि विद्यालय सत्र के प्रारंभ में अपनी कार्य योजना, साल भर के अध्यापन के दिनों को और समय को दृष्टि में रखकर बनावें और शिक्षण कार्य के अलावा जिन [illegible] का चयन किया जावे उनमें लगने वाले समय और शक्ति को पूरी तरह [illegible] लिया जावे तथा ऐसी योजना के अनुसार सालभर कार्य हो। सत्रांत में यह भी देखा जावे कि सत्रारंभ में बनी योजना किस सीमा तक पूरी हो पाई। इस अनुभव को अगले सत्र की योजना की रचना में लगाया जावे। खामियों को दूर किया जावे और सफलताओं के कारणों को बढ़ावा दिया जावे। ऐसा होने से हमारे विद्यालयों में सुधार संभव होगा।

(ख) अत्यधिक उत्साह हमारे कार्यक्रमों में बिगाड़ ला सकता है—राज्य शिक्षा संस्थान उदयपुर ने जो क्षेत्रीय समस्याओं का संकलन किया है उसमें एक बात यह भी स्पष्ट हुई है कि हमारे कई विद्यालय अपने यहाँ इतनी प्रवृत्तियाँ शुरू कर देते हैं कि जो शिक्षकगण उन विद्यालयों में उपलब्ध होते हैं वे प्रवृत्तियाँ उनके बूते से बाहर हो जाती हैं। अनेक जिम्मेदारियाँ लेकर उन्हें निभा नहीं पाते [illegible] ज्यादा अच्छा यह है कि प्राथमिकताओं के आधार पर प्रवृत्तियों का चयन किया जावे और उनकी व्यवस्था और उपलब्धियों को चरम सीमा तक ले जाने का यत्न किया जावे।

(ग) शिक्षण-कार्य को सदा ही प्रथम स्थान देना पड़ेगा—विद्यालय का [illegible] और सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य जिसके लिये विद्यालय की स्थापना हुई है—बालकों [illegible] है। [illegible] त्तयाँ, शिक्षण में सहायक अवश्य होती हैं फिर भी इनको

सदा ही इस प्रकार नियन्त्रित रखना पड़ेगा कि वे प्रथम स्थान न ले लें। कई विद्
प्रगतिशील विद्यालय के रूप में प्रसिद्धि प्राप्त करने की भावना से अपने यहां म
प्रवृत्तियों की शुरूआत कर देते हैं परन्तु उनमें कार्यकर्ताओं की जो शक्ति खर्च
है वह इतनी ज्यादा हो जाती है कि वे शिक्षण कार्य के साथ न्याय नहीं कर
और यह कार्य व्यवहार एवं क्रियान्विति में दूसरे स्तर पर आ जाता है। यह
स्थिति है जिससे सदा ही बचाना जरूरी है।

(घ) एक अच्छा कार्य भी उपयुक्त अवसर के बिना कार्यकर्ताओं में अरुचि
करने लगता है—विद्यालय स्तर पर ऐसे अनेक कार्य हैं जिनकी उपादेयता के वि
में मतभेद होने का प्रश्न ही पैदा नहीं होता। उदाहरणतः विद्यालय के सम्बन्ध
महत्त्वपूर्ण निर्णय लेने में साथी शिक्षकों की राय लेना एक अच्छा सिद्धान्त है।
क्रियान्वित करने के लिए शिक्षकों की बैठक बुलाया जाना विद्यालय कार्यक्रम
एक अंग है परन्तु एक नवीन अध्ययन के आधार पर यह विचार भी आया है
शिक्षकों की बैठक बार-बार बुलाई जावे, ऐसे मामलों में विचार करने को बुल
जावे जिसमें सामान्य शिक्षक को रुचि नहीं है, ऐसी बैठकें बहुत देरी तक चल
रहें, इनको विद्यालयों समय में आयोजित किया जावे तो शिक्षकों के लिए ये अर
का कारण ही नहीं वरन् कष्ट का भी कारण बनती हैं। ऐसे ही कई उदाह
विद्यालय की स्थितियों से ढूंढ निकाले जा सकते हैं। अतः यह जरूरी है कि ऐ
स्थिति से बचने का पूरा-पूरा प्रयत्न किया जावे।

(ङ) केवल दिखावे के लिए कार्य करना खतरनाक है—किसी भी नवीन प्रवृ
या प्रयोग को शुरू करने के बावत योजना तैयार करते समय यह जरूरी है कि उस
उपादेयता विद्यालय के समस्त कार्यकर्ताओं की दृष्टि में स्पष्ट कर दी जावे जिससे
यह समझें कि यह कार्य वास्तव में आवश्यक है और इससे विद्यालय की एक निश्चि
समस्या का समाधान होगा या आवश्यकता की पूर्ति होगी। ऐसा होने पर ही सम
शिक्षकों का दृष्टिकोण उन कार्यक्रमों के प्रति रचनात्मक बन सकेगा। आज अने
शिक्षक ऐसे हैं जो विद्यालय की प्रगतिशील प्रवृत्तियों को दिखावे की प्रवृत्ति मान
हैं और यह मानकर चलते हैं कि इन्हें इस दृष्टि से शुरू किया गया है कि जिस
विद्यालय के निरीक्षण के समय निरीक्षक जी को विद्यालय में नवीन और प्रगतिशील
प्रवृत्तियों के चल रहे होने की जानकारी और प्रदर्शन दिया जाकर तारीफ लूटी
जावे। यह स्थिति खतरनाक है और इससे भी बचना जरूरी है।

उपसंहार—यह स्पष्ट है कि प्रत्येक विद्यालय योजना बद्ध तरीके से काम
करे अत्याधिक उत्साह *के कारण ज्यादा प्रवृत्तियां शुरू न की जावें* कि जिससे
कार्यक्रमों में गिरावट आने लगे, विद्यालय कार्यक्रमों में सदा ही शिक्षण कार्य को
प्राथमिकता दी जावे, कार्य इस प्रकार से हो कि कार्यकर्ताओं में अरुचि न पैदा हो
और वे यह न समझें कि अमुक कार्य केवल प्रदर्शन मात्र के लिए है। इन सावधानियों
को दृष्टि में रखने से विद्यालय का प्रबन्ध सुधारने में मदद मिलेगी।

सारांश

विद्यालय के प्रबन्ध की दृष्टि से ऐसे पहलू भी हैं जिन पर सावधान रहने की

जरूरत है। उनमें से कतिपय बिन्दु निम्नलिखित हैं :—

(क) योजनाबद्ध क्रम से काम करना जरूरी है।

(ख) अत्यधिक उत्साह हमारे कार्य क्रमों में गिरावट ला सकता है।

(ग) शिक्षण कार्य को सदा ही प्रथम स्थान देना पड़ेगा।

(घ) एक अच्छा कार्य भी उपयुक्त अवसर के बिना कार्यकर्ताओं में अरुचि पैदा करने लगता है।

(ङ) केवल दिखावे के लिए कार्य करना खतरनाक है। इन कतिपय बिन्दुओं पर सतर्क रहने से विद्यालय कार्य को अच्छे प्रकार से चलाने में मदद मिलेगी।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(१) विद्यालय कार्य में सत्रारंभ में सारे सत्र की योजना तैयार करने से जो लाभ हैं, उन्हें लिखिये।

(२) "विद्यालय की अच्छी प्रवृत्तियाँ भी अच्छे प्रकार से आयोजित न होने की दशा में शिक्षकों में असंतोष का कारण बन जाती है"—इस कथन पर चर्चा कीजिये।

—:०:—

मं नं० क—४)

छात्र का नाम............
कक्षा...... खंड......

कताई के श्रम का मूल्यांकन
मास...... सत्र १९६...—६...
साधन :—तकली/चर्खा

क्रमांक	मास	समय		पूनी का मूल्य			सूत का मूल्य				सूत मूल्य—पूनी मूल्य =श्रम का मूल्य		विशेष विवरण
		घं०	मि०	वजन	दर	मूल्य	सूत नम्बर	वजन	दर	मूल्य	रु०	पैसा	

ह० छात्र.........

ह० शिक्षक.............

(फार्म न० क—१) छात्र का नाम.........

कक्षा...... सं०......

बुनी हुई वस्तु का मूल्यांकन

मास......सन् १९६—६...

क्रम संख्या	नाम वस्तु	समय		सूत जो खर्च हुआ उसका वजन		सूत जो खराब गया उसका वजन		योग		सूत का मूल्य		अन्य सामान का मूल्य		उपकरणों की घिसाई		पारिश्रमिक मूल्य		वस्तु मूल्य		विशेष विवरण
		घं०	मि०	किलो	ग्राम	किलो	ग्राम	किलो	ग्राम	रु०	पै०	रु०	पै०	रु०	पै०	रु०	पै०	रु०	पै०	
योग																				

ह० छात्र......

ह० शिक्षक......

परिशिष्ट 'ख'

(फार्म नं॰ स—१)

कृषि

बुवाई, देखभाल, फसल व पैदावार का विवरण

नाम छात्राध्यापक.......... माह....... नाम वस्तु.. ....

बुवाई											
दिनांक	भूमि का क्षेत्रफल	भूमि की प्रकार	पिछली फसल	खाद की प्रकार और मात्रा	जुताई और सफाई	बीज का नाम व प्रकार	तादाद या मात्रा	बोने का ढंग	बुवाई में दूरी	गहराई	मिश्रित वस्तु

देखभाल				
फसल के अंकुरण की तारीख	सिंचाई या बरसात का विवरण	निराई गुड़ाई का विवरण	कोई रोग, कीड़ा इलाज और नतीजा	सुरक्षा में कोई विशेष बाधा और उपाय

फसल व पैदावार का विवरण								
फूलने की तारीख	फलने की तारीख	पकने की तारीख	उजड़ने की तारीख	पूरी फसल की अवधि	औसत पौधे का कद	एक औसत पौधे की पैदावार	नमूने के एक फल का नाप तौल	कुल पैदावार का तौल

विषय (अध्ययन, प्रयोग या अनुभव)

(फार्म नं० ख—२) कृषि पर किये गए श्रम का विवरण

छात्र का नाम······ कक्षा······ खंड··· माह··· सन्...

दिनांक	काम का नाम	समय		विशेष विवरण
		घं०	मि०	
योग				कमाई की दर

हस्ताक्षर शिक्षक······ हस्ताक्षर प्रधानाध्यापक······

(फार्म नं० ख—३)

कृषि का आर्थिक पहलू—आमद-खर्च का विवरण

छात्र का नाम······ कक्षा··· खंड··· माह··· सन्. .

क्रमांक	रकम		आमद का विवरण	रकम		खर्च का विवरण	विशेष विवरण
	रु०	पै०		रु०	पै०		
जोड़							कमाई

हस्ताक्षर शिक्षक······ हस्ताक्षर प्रधानाध्यापक······

परिशिष्ट 'ग'

सामाजिक, आर्थिक, अंक संकलन

क—कौटुम्बिक संकलन

नाम मुखिया (कुटुम्ब)...... पिता का नाम......
आयु......वर्ष...माह... । आश्रित की संख्या...स्त्री...पुरुष......बच्चे...
कमाने वाले सदस्यों की संख्या... । पेशा...... । पेशे से आय......रु०...पैसा
पूरक पेशा...... । पूरक पेशे से आय......रु०......पैसा......
कुटुम्ब की वार्षिक आय......रु०...पैसा... । साक्षर प्रौढ़ों की संख्या...

वार्षिक आय के साधन	वार्षिक खर्च की मदें
आय का साधन...वार्षिक आय...	खर्च की मद......वार्षिक खर्चा...
१. कृषि—...रु०...पैसा ।	क. —भोजन खर्च :— योग—...रु०...पैसा ।
२. मजदूरी—...रु०...पैसा ।	१. अनाज—...रु०...पैसा ।
३. व्यापार—...रु०...पैसा ।	२. घृत—...रु०...पैसा ।
४. नौकरी—...रु०...पैसा ।	३. दूध—...रु०...पैसा ।
५. गोपालन—...रु०...पैसा ।	४. सब्जी व दालें—...रु०...पैसा ।
६. मकान किराया—...रु०...पैसा ।	५. मिठाई—...रु०...पैसा ।
७. अन्य—...रु०...पैसा ।	६. ईंधन—...रु०...पैसा ।
	७. अन्य—...रु०...पैसा ।
वार्षिक आय का योग—रु०...पैसा ।	ख.—कपड़ा खर्च:—(योग—...रु०...पैसा)
१. लड़के-लड़कियों के विवाह में औसतन कितना खर्चा होता है । ...रु०...पैसा	१. सूती कपड़ा—...रु०...पैसा ।
	२. रेशमी कपड़ा—...रु०...पैसा ।
	३. ऊनी कपड़ा—...रु०...पैसा ।
	४. बिस्तर रजाई आदि—...रु०...पैसा ।
२. मर्णो में औसतन कितना खर्चा होता है ? रु०...पैसा	५. खुद के तैयार शुदा कपड़े की कीमत ...रु०...पैसा ।
३. परिवार में कौनसा रोग अधिक होता है ?	६. अन्य—...रु०...पैसा ।
४. उपरोक्त रोग अक्सर किन महीनों में होता है ?	ग :—मकान पर खर्चा :— (योग—...रु०...पैसा)
५. अगर मकान घरू है तो उसकी क्या कीमत है ?...रु०...पैसा	१. घरू मकान की मरम्मत का औसत ...रु०...पैसा ।
६. रहने के मकान में कितने कमरे हैं ?	२. किराये के मकान का किराया ...रु०...पैसा ।

७. मकान को प्रति माह कितनी बार लीपते हो…………
८. खेती की जमीन कितनी है ?
   क :—(घरू)
   ख :—(अन्य)…………
९. कुटुम्ब के पशुओं की संख्या दर्ज कीजिये :—
   गाय……भैंस……
   बैल……घोड़ा……
   गधा……बकरी……
   ऊँट……भेड़……
१०. वर्ष के किन महीनों में काम अधिक रहता है ? (महीनों के नाम लिखिए)……
११. वर्ष में किन महीनों में काम अधिक रहता है ? (महीनों के नाम लिखिए)
१२. फुर्सत के महीने कौन से हैं ? ……
१३. उन महीनों के दिन में कौन-सा समय ग्राम-सेवा के काम में लगा सकते हो ? ……
१४. स्नान कहाँ करते हो ? ……
१५. एक माह में कितनी बार स्नान करते हो ?
   व्यक्ति—स्नान-संख्या
   पुरुष— ……
   स्त्रियाँ— ……
   बच्चे— ……
१६. क्या स्नान करते समय साबुन का प्रयोग करते हो ?
१७. कपड़े कितने दिनों में धोते हो ?

घ :—खर्चे की अन्य मदें :—
(योग—…रु०…पैसा)
१. त्योहारों पर खर्चा—…रु०…पैसा।
२. बीमारी व औषध—…रु०…पैसा।
३. शिक्षा—…रु०…पैसा।
४. यात्रा—…रु०…पैसा।
५. मुकदमेबाजी—…रु०…पैसा।
६. पान, तम्बाकू, अफीम, व शराब—…रु०…पैसा।
७. कर्ज का ब्याज—…रु०…पैसा।

वार्षिक खर्च क, ख, ग व घ मदों का योग :—…रु०…पैसा।

१८. साबुन का प्रयोग कपड़ों में कब-कब करते हो ?···

१९. कुटुम्ब की बड़ी-बड़ी कठिनाइयाँ कौन-कौन-सी हैं ?	२०. कुटुम्ब की ये कठिनाइयाँ किन-किन की सहायता से हल हो सकती हैं ?
(अ)	(अ)
(आ)	(आ)
(इ)	(इ)
(ई)	(ई)

ख—सामूहिक प्रश्न संकलन

१. गाँव का नाम······तहसील ······जिला·······

२. गाँव की जनसंख्या······कुटुम्बों की संख्या···

३. गाँव में रहने वाली प्रधान जातियाँ :—

(१)·······(२)········(३)·······(४)·······

४. गाँव के प्रमुख धन्धे —(१)···(२)······(३)·······(४)·······

५. गाँव में आपसी झगड़े निबटाने के क्या साधन हैं—(१)······(२)····

६. गाँव की पाठशालाओं की संख्या·····

७. पाठशाला में (क) अध्यापकों की संख्या···

(ख) छात्रों की संख्या····

८. अगर इस गाँव में पाठशाला नहीं है तो दूसरे गाँव की पाठशाला कितने किलोमीटर दूर है ? { किलोमीटर·············मील

९. इस गाँव के कितने लड़के वहाँ पढ़ने जाते हैं ?···

१०. गाँव में बीमारों की चिकित्सा के क्या साधन हैं ?

(क)·······(ख)·······(ग)·······

११. गाँव में कुल कितने पुस्तकालय हैं ?······

सरकारी पुस्तकालयों की संख्या लिखिए·······

१२. साक्षरों की संख्या·······

१३. गाँव की प्रमुख कठिनाइयाँ —

(क) जिनको गाँव वाले ही आपसी सहयोग से दूर कर सकते हैं —	(ख) जिनको सरकार या गाँव के बाहर के सहयोग से दूर किया जा सकता है —
१.	१.
२.	२.
३.	३.
४.	४.
५.	५.
६.	६.

द्वितीय खण्ड

शाला-स्वास्थ्य

: ३४ :

पाठशाला स्वास्थ्य का सिद्धान्त

स्वास्थ्य-शिक्षा का उद्देश्य—वृहत् समाज का एक सूक्ष्म रूप पाठशाला है। सरकार की कई जिम्मेदारियों में से एक यह भी होती है कि वह देखे कि समाज में स्वास्थ्यप्रद वातावरण बना हुआ है, लोग स्वास्थ्यप्रद घरों में रहते हैं, लोग साफ-सुथरी सड़कों पर चलते है, लोगों को उनके प्रयोग की सभी वस्तुएं शुद्ध और साफ प्राप्त होती हैं, लोग काम केवल इतना ही करते हैं जितना उनकी तन्दुरस्ती के अनुकूल पड़ता है और इस प्रकार वे स्वस्थ जीवन बिताते हैं। पाठशाला-समाज का जीवन भी स्वस्थ हो यह एक अच्छी संस्था के लिए जरूरी है। स्वस्थ जीवन की यहां आदत बनने पर ही बालक समाज के जीवन को स्वस्थ बनाने में योग दे सकते हैं। इसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु शालाओं में बालकों को स्वस्थ जीवन बिताने के लिए शिक्षित किया जाता है।

स्वास्थ्यप्रद शाला—समाज के स्वास्थ्यप्रद वातावरण को पाठशाला में मचित करने की शाला के अधिकारियों की जिम्मेदारी होती है। इस दृष्टि से शाला की इमारत स्वास्थ्यप्रद होनी चाहिए। प्रत्येक कमरे में बैठने की ऐसी सुविधा होनी चाहिए कि छात्रों को उपयुक्त एवं स्वास्थ्यप्रद आसन से बैठने की आदत पड़े। छात्रों को मानव शरीर की एवं उसके अंग-प्रत्यंग की बनावट की पूर्ण जानकारी हो जिससे वे उसकी उचित प्रकार से रक्षा कर स्वयं को स्वस्थ बना सकें। छात्र स्वयं शाला समाज का एक अंग है, अतः शाला-स्वास्थ्य एवं शाला-स्वच्छता के प्रति उसे भी सजग रहने की आदत बनानी चाहिए। उसे बीमारियों से बचने के लिए विभिन्न बीमारियों के विषय में प्रारम्भिक जानकारी हो, जिससे वह सचेत रह कर उनसे बच सके। उसे मानव की प्रारम्भिक एवं महत्वपूर्ण आवश्यकताएं—जैसे हवा, प्रकाश, पानी और भोजन, उनकी बनावट, उनका शुद्धीकरण एवं उनकी प्राप्ति के विषय में पूर्ण ज्ञान होना ही चाहिए। ऐसी बीमारियों का ज्ञान भी होना चाहिए जो शरीर में इस प्रकार घर करती रहती हैं कि व्यक्ति को प्रारम्भिक अवस्था में उनकी जानकारी नहीं हो पाती। इस दृष्टि से कम से कम प्रति वर्ष डाक्टर द्वारा शरीर का अनिवार्य रूप से निरीक्षण कराया जाना चाहिए और निरीक्षक की आज्ञाओं का दृढ़ता से पालन किया जाना चाहिए। स्वास्थ्यप्रद शाला की कार्य-प्रणाली में उपरोक्त सभी बिन्दुओं का अनिवार्य रूप से समावेश होना आवश्यक है।

शाला स्वास्थ्य का पाठ्यक्रम—प्रत्येक प्रगतिवादी शाला को अपने जीवन में उन तत्वों का अनिवार्य रूप से समावेश करना चाहिए जिनसे बालक स्वस्थ रह सकें। इसके लिए यह जरूरी है कि व्यवस्थापक एवं शिक्षकों को इस बाबत विस्तृत

जानकारी हो। इसी उद्देश्य की पूर्ति के हेतु शाला-स्वास्थ्य के पाठ्यक्रम में निम्न लिखित विषयों का विशेष प्रकार से समावेश किया जाना चाहिये:—

(i) बैठने की व्यवस्था और आसन।

(ii) व्यक्तिगत स्वास्थ्य (शरीर की बनावट व उसके विभिन्न अंगों की जानकारी)।

(iii) सामाजिक स्वास्थ्य और सफाई।

(iv) विभिन्न प्रकार की बीमारियाँ, उनके कारण, लक्षण (Symptoms) व रोकथाम के उपाय।

(v) मानव की प्रमुख आवश्यकताएँ—हवा, प्रकाश, पानी व भोजन।

(vi) डाक्टर द्वारा शरीर निरीक्षण एवं दिए गए संकेतों का पालन।

कतिपय अन्य प्रवृत्तियाँ—पाठ्य क्रम में शाला-स्वास्थ्य की दृष्टि से उपरोक्त बिन्दुओं का ही समावेश किया जाता है परन्तु कुछ अन्य बिन्दु भी ऐसे महत्वपूर्ण हैं जिन पर विचार-विनिमय किया जाना आज के जनतन्त्रीय युग में बड़ा जरूरी है। इस दृष्टि से निम्न समस्याएँ महत्वपूर्ण है :—

(क) स्वयं-सेवकों द्वारा महामारी के समय एवं मेले त्योहारों में समाज-सेवा कार्य की व्यवस्था।

(ख) समाज-सेवा एव बीमारियों की रोकथाम की दृष्टि से गाँव के सामाजिक आर्थिक अंक-संकलन की व्यवस्था।

उपसंहार—शाला-स्वास्थ्य की ओर आज अधिकाधिक ध्यान दिया जाने लगा है। पुरानी शालाओं में जहाँ स्वास्थ्य सम्बन्धी सम्पूर्ण कार्य शिक्षक के निरीक्षण के द्वारा ही चलता था उसके स्थान पर अब डाक्टर द्वारा प्रति वर्ष छात्रों की जाँच की व्यवस्था शुरू हुई है। ज्यों-ज्यों बालकों को शाला में अधिक समय तक रखने और आवास-शालाओं की परम्परा व्यापक होती जा रही है त्यों-त्यों बालकों के स्वास्थ्य पर अधिक ध्यान देना अधिक जरूरी होता जा रहा है। इस दृष्टि से अब शाला में 'स्कूल नर्स' की नियुक्तियाँ भी कहीं कहीं देखी जाती हैं, शाला के स्वास्थ्य पर अधिक ध्यान देने हेतु शालाओं का अपना-अलग डाक्टर रखना भी प्रारम्भ हुआ है। शाला में अपनी डिस्पेंसरी भी होती है। इस दृष्टि से प्रगतिवादी शालाओं में बालकों को प्रति पखवाड़े तोलने की और उन्हें नाश्ता व संतुलित भोजन देने के लिए डाक्टर द्वारा उसकी जाँच की परिपाटी भी चल पड़ी है। इतना ही नहीं उनके काम करने के व आराम करने के समय को भी डाक्टर द्वारा निश्चित किया जाना शुरू हुआ और उनके रहने के स्थान व उनकी सम्पूर्ण दिनचर्या पर भी डाक्टर की निगाह रखी जाने लगी है। इस प्रकार प्रगतिवादी शालाओं में स्वास्थ्य पर अधिक से अधिक ध्यान देने का क्रम आरम्भ हुआ है।

सारांश

स्वास्थ्य-शिक्षा का उद्देश्य—हमारे सामाजिक जीवन को स्वास्थ्यमय बनाने के उद्देश्य की पूर्ति की दृष्टि से यह जरूरी है कि हम शाला-जीवन को

स्वास्थ्यप्रद बनाकर बालक को स्वस्थ एवं स्वच्छता से जीवन बिताने का प्रशिक्षण दें।

स्वास्थ्यप्रद शाला—स्वास्थ्यप्रद शाला के अन्तर्गत स्वास्थ्यप्रद इमारत, बैठने की ठीक व्यवस्था एवं ऐसे छात्रों का समावेश आता है जो स्वास्थ्य के नियमों से पूरी तरह जानकार हैं और उनका पालन करते हैं।

शाला-स्वास्थ्य का पाठ्यक्रम—इनके अन्तर्गत बैठने की सही पद्धति, व्यक्तिगत एवं सामाजिक स्वास्थ्य, विभिन्न प्रकार की बीमारियों की जानकारी, मानव की प्रमुख आवश्यकताएं और डाक्टर द्वारा छात्रों का निरीक्षण एवं उसके संकेतों का पालन आदि विषयों का समावेश होता है।

कतिपय अन्य प्रवृत्तियाँ—(क) स्वयंसेवकों द्वारा विशेष परिस्थितियों में समाज-सेवा-कार्य और (ख) समाज-सेवा एवं बीमारियों की रोकथाम की दृष्टि से गांव का सामाजिक-आर्थिक तथ्य-संकलन ऐसे विषय हैं जो कतिपय अन्य प्रवृत्तियों में शामिल होते हैं।

उपसंहार—प्रगतिवादी शालाओं में स्वास्थ्य की दृष्टि से अधिक से अधिक ध्यान दिया जाकर बालकों की प्रत्येक गतिविधि पर डाक्टर की निगाह रहती है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(१) शालाओं में स्वास्थ्य की शिक्षा किस उद्देश्य की पूर्ति में सहायक होती है? विस्तार से लिखिए।

(२) प्रगतिवादी शाला छात्रों को किस प्रकार देख-रेख करते हुए उनके स्वास्थ्यवर्धन में सहायक होती है?

: ३५ :

व्यक्तिगत स्वास्थ्य

स्वास्थ्य-ज्ञान का प्रथम उद्देश्य है—व्यक्ति स्वास्थ्य के नियमों का ज्ञान प्राप्त कर स्वयं को स्वस्थ रखे और दूसरा उद्देश्य है—वह समाज और गाँव को भी स्वस्थ रखने का प्रयास करे। इस दृष्टिकोण से अध्यापक के कई कार्य हो जाते हैं। प्रथम तो यह है कि वह स्वयं को स्वस्थ रखे। दूसरा यह है कि वह शाला के बालकों का स्वास्थ्य का ध्यान रखे। तीसरा यह है कि बालकों को स्वस्थ रहना सिखायें। चौथा यह है कि समाज और गाँव को स्वस्थ रखने का प्रयास करे। पर यह निश्चित है कि यदि हम अपने आपको स्वस्थ रखते हैं और इसी प्रकार समाज अथवा गाँव का प्रत्येक व्यक्ति भी अपने आपको स्वस्थ रखता है तो अपने आप सम्पूर्ण समाज अथवा ग्रामवासियों का स्वास्थ्य सुधर सकता है। इस दृष्टि से व्यक्तिगत स्वास्थ्य की ओर ध्यान देना अत्यन्त आवश्यक है। स्वास्थ्य के नियमों की जानकारी निजी स्वास्थ्य को सुधारती है। इसी दृष्टि से यहाँ शरीर की बनावट, उसको स्वस्थ रखने के ढंग, शरीर पर प्राकृतिक उपकरणों का प्रभाव, रोगों से मुक्ति आदि का वर्णन किया गया है।

निजी स्वास्थ्य में विशेषतः निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना आवश्यक है:—

(१) व्यायाम।

(२) त्वचा की रक्षा।

(३) मुँह, दाँत तथा आँतों की रक्षा।

(४) बालों की रक्षा।

(५) नाखूनों की रक्षा।

(६) वस्त्र।

(७) थकान, आराम, नींद।

(८) मादक वस्तुओं का प्रयोग।

(१) व्यायाम—निजी स्वास्थ्य का सबसे प्रथम और महत्वपूर्ण बिन्दु है व्यायाम। व्यायाम प्रतिदिन का आवश्यक कार्य है जो स्त्री-पुरुष, बालक-वृद्ध, युवक-प्रौढ़, सभी को करना चाहिए। इससे शरीर का प्रत्येक अंग स्फूर्तियुक्त हो जाता है। श्वास-प्रश्वास और रक्त-संचालन की क्रिया को वेग मिलता है। मांसपेशियाँ दृढ़ होती हैं। शरीर की गन्दगी प्रश्वास के रूप में, पसीने के रूप में शीघ्र निकलती है। अध्यापक को बालकों में नियमित व्यायाम की आदत डालनी चाहिए। शाला के कार्यक्रम में व्यायाम को स्थान मिलना चाहिए। यह कार्य उपयुक्त समय पर

होना चाहिए। अनुपयुक्त समय कराया गया व्यायाम सदा हानिकर होता है। व्यायाम बालकों की उम्र के अनुसार कराया जाना चाहिए। बुनियादी शाला मे तो वैसे ही शरीर-श्रम उद्योग-कार्य द्वारा हो जाता है। अतः इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि बालक थक न जाएँ। व्यायाम के अभ्यास क्रमबद्ध होने चाहिएँ। कमजोर बालकों को अधिक व्यायाम न कराया जाना चाहिए। व्यायाम खुली हवा में कराया जाना चाहिए।

(२) त्वचा की रक्षा और स्नान—शरीर के सबसे ऊपरी आवरण को त्वचा कहते हैं। यह सूक्ष्म छिद्रपूर्ण है जिससे शरीर की गन्दगी पसीने के रूप में बाहर निकलती है। अतः त्वचा को साफ-सुथरी रखना चाहिए। इस पर तेल मल कर, फिर नहाकर इसे मुलायम और साफ रखा जा सकता है। त्वचा को साफ न करने से शरीर में दुर्गन्धि आने लगती है, उसके छिद्रों मे धूल जम कर ये बन्द हो जाते हैं। अधिक दिनों तक न नहाने मे पसीने से उत्पन्न होने वाले कीटाणु अर्थात् जुएँ, दाद के कीटाणु, खुजली के कीटाणु आदि हो जाते हैं। त्वचा गन्दी रहने से स्पर्श-ज्ञान भी हल्का हो जाता है। अतः बालकों मे गर्मी की ऋतु मे नियमित रूप से हमेशा स्नान की आदत डालनी चाहिए। सर्दी की ऋतु में एक दिन छोड़कर नहाया जा सकता है। वैसे स्नान सदा ही ठण्डे पानी से करना लाभदायक है। पर गर्मी में ठण्डे पानी से और सर्दी मे गर्म पानी से भी नहाया जा सकता है। स्नान के समय उत्तम साबुन का प्रयोग भी किया जा सकता है। नहाने के पश्चात् सूखे कपड़े से शरीर पोंछना चाहिए।

(३) मुँह, दाँत तथा आँतों की रक्षा—भोजन को थाली मे परोस कर उसमे से एक ग्रास हाथ द्वारा उठा लिये जाने पर मुँह, दाँत, जीभ और आँतों का काम ही शेष रह जाता है। भोजन शरीर के लिए आवश्यक वस्तु है और प्रतिदिन साधारणतः कम से कम दो बार तो खाया ही जाता है। अतः यदि मुँह, दाँत तथा आँतों की ठीक ढग से सफाई न होती रहेगी तो शरीर में पहुँचाया गया भोजन विष का काम भी कर सकता है। बालको मे यह आदत डालनी चाहिए कि प्रतिदिन मुँह अच्छे ढंग से धोएँ। प्रातः उठते ही हाथ-मुँह अच्छे ढग से धोएँ तथा दांतो को ठीक ढग से साफ करें। यदि शाला मे नाश्ते का आयोजन हो तो नाश्ते के पहले बालकों के हाथ और मुँह अच्छे ढंग से साफ कराने चाहिएँ। यही आदत भोजन करने के पहले भी डाली जानी चाहिए। भोजन करने के पश्चात् तथा रात को सोने से पूर्व भी मुँह की सफाई अच्छे ढंग से की जानी चाहिए।

इसी प्रकार आँतों की रक्षा करना भी आवश्यक है। अपच या अजीर्ण हो जाने से भी आँतें खराब होती हैं। कब्ज रहने या अधिक दस्त लगने से भी आँतें खराब होती हैं। दिन मे साधारणतया दो बार खाते ही हैं। अतः शौच भी दो बार जाना चाहिए। आँतों की रक्षा के लिए नित्य व्यायाम करना, संतुलित भोजन करना, पर्याप्त पानी पीना, मादक वस्तुओं का त्यागना आदि आवश्यक हैं।

(४) बालों की रक्षा—बाल सिर की रक्षा करते हैं तथा इन पर लगाई हुई चिकनाई छिद्रों में होकर मस्तिष्क में पहुँचती है। बालों में मिट्टी जम जाती है और

यदि उन्हें साफ न किया जाय तो बाल बदबू देने लगेंगे, जुएँ पड़ जाएँगी। अतः बालकों के बालों की ओर भी विशेष ध्यान देना आवश्यक है। उन्हें साफ रखने से मस्तिष्क तरोताजा रहेगा। जिन बालकों के बाल साफ न रहते हों तथा जुएँ पाई जाती हों उन्हें अन्य बालकों से दूर रखना चाहिए और जुएँ मारने की औषधियों द्वारा उनके बालों को साफ कराया जाना चाहिए। बालों को साफ न करने से सिर में फोड़े-फुंसी तथा दाद आदि होने का भय है। बाल जहाँ तक हो सके छोटे रखने चाहिएँ। अध्यापक को देखना चाहिए कि बालकों के बाल अधिक लम्बे तो नहीं हैं तथा समय पर कटाये जाते हैं या नहीं।

(५) नाखूनों की रक्षा—नाखूनों को बढ़ने नहीं दिया जाना चाहिए। उन्हें काटते रहना चाहिए अन्यथा मैल भर कर भोजन के साथ पेट में चला जाता है। बढ़े हुए नाखूनों से शरीर को खुजलाने पर खरोंच आ जाती है। अध्यापक को अथवा बालकों के स्वास्थ्य-मन्त्री को हफ्ते में एक बार देखना चाहिए कि किसी के नाखून तो नहीं बढ़े हुए हैं। नाखूनों को दाँतों से काटने की बुरी आदत द्वारा कीटाणुओं का मुँह में जाने का भय रहता है।

(६) वस्त्र—वस्त्र शरीर के ताप को सम बनाये रखने के लिए, अत्यधिक शीत या गर्मी से बचने के लिए, शरीर के गुप्तांगों को ढकने के लिए, शरीर की रक्षा करने के लिए तथा वेशभूषा द्वारा शरीर को सजाने के दृष्टिकोण से पहने जाते हैं। अतः वस्त्र ऐसे होने चाहिएँ जो उपयोगी हों। बालकों को ढीले वस्त्र पहनाये जाने चाहिएँ। गर्मी में रेशमी वस्त्र शीघ्र पसीना सोखने वाले होने से पहनना लाभदायक होगा। बालकों को चमकीले रंगों वाले कपड़े अधिक पसन्द होते हैं पर काले रंग के कपड़े सर्दी और गर्मी दोनों ही ऋतुओं के लिए खराब हैं। कपड़ों के तंग बाँधने से रक्त-संचार ठीक ढंग से नहीं हो पाता। वस्त्रों को साफ रखना चाहिए अन्यथा मैले होकर जुएँ पड़ जाएँगी और बदबू आने लगेगी। अध्यापक को इस दृष्टि से बालकों को वस्त्र पहनने के संकेत देते रहना चाहिए। बालकों के लिए कमीज व हाफपेंट साधारणतया अच्छी पोशाक है जो इन्हें स्फूर्तियुक्त रखती है तथा उनके उद्योग कार्य के लिए भी ठीक है। यही कारण है कि आजकल प्रत्येक विद्यालय अपने छात्रों की पोशाक निश्चित करता है और छात्र अनिवार्य रूप से उसी पोशाक को पहन कर विद्यालय आते हैं।

(७) थकान, आराम व नींद—थकान मानसिक व शारीरिक दोनों प्रकार की होती है। बालकों को अधिक थकान न आने देना चाहिए। बीच-बीच में आराम करने देना चाहिए। पर्याप्त नींद लेने से भी थकान दूर हो जाती है। भोजन के पश्चात् बालकों को आराम करने देना चाहिए। पर उन्हें दिन में सोने की आदत से बचाना चाहिए। रात्रि में बच्चों को खूब नींद लेने देना चाहिए। आठ साल से बारह साल के बच्चों को लगभग ११ घंटे नींद लेनी चाहिए। सोने का स्थान ऐसा होना चाहिए जहाँ साफ हवा आती रहती हो।

(८) मादक वस्तुओं का प्रयोग—मादक वस्तुएँ प्रयोग करने पर शरीर की शक्ति घटती है। भले ही वे थोड़े समय के लिए उत्तेजना देती हों। आमकार्यों

मे बीड़ी तथा तम्बाकू पीने की बहुत प्रथा है तथा शहरवासियों मे सिगरेट पीने की। इनके बालक अपने पिता, चाचा, भाई आदि को बीड़ी सिगरेट पीता देखकर स्वयं सीख जाते हैं। गाँवों मे तो छोटे-छोटे बालक अपने पिता के साथ तम्बाकू पीते देखे गए हैं। यदि बालकों में ऐसी आदत का अध्यापक को पता लग जाए तो उसे इस आदत को छुड़ाने का प्रयास करना चाहिए तथा उनके पिता, भाई आदि को भी समझाना चाहिए कि वे बालक मे तम्बाकू-बीड़ी आदि पीने की आदत न डाले।

सारांश

स्वास्थ्य के नियमों का ज्ञान व्यक्तिगत स्वास्थ्य को ठीक ढंग से बनाये रखने में सहयोग देता है। निजी स्वास्थ्य को बनाये रखने के लिए इन बातों पर ध्यान देना आवश्यक है :—

(१) व्यायाम—शरीर की आयु व क्षमता की दृष्टि से नित्य नियमित रूप से किया जाना चाहिये।

(२) त्वचा की रक्षा—त्वचा का साफ-सुथरा रखना आवश्यक है।

(३) मुंह, दांत और आंत—भोजन के खाने और पचाने की क्रिया मुंह, दांत और आंतों से की जाती है। इनको साफ न रखने से भोजन विष भी बन सकता है।

(४) बालों की रक्षा—बाल छोटे होने चाहिएं और साफ रखे जाने चाहिएं।

(५) नाखूनों की रक्षा—नाखूनों को सदा काटते रहना चाहिए।

(६) वस्त्र—ढीले व साफ सुथरे होने चाहिए।

(७) थकान, आराम, नींद—बालकों को अधिक थकने न देना चाहिए व उनके आराम व नींद का पर्याप्त समय उन्हें मिलना चाहिएं।

(८) मादक वस्तुओं का प्रयोग—यह शरीर को हानि पहुँचाती है अतः इनसे बालकों की रक्षा करना आवश्यक है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(१) निजी स्वास्थ्य से क्या तात्पर्य है? बालकों में आप [illegible] दृष्टि से किन-किन आदतों [illegible] उत्पन्न करना चाहेंगे व किस प्रकार?

(२) अध्यापक को बालकों के निजी स्वास्थ्य की दृष्टि से किन-किन बातों पर किस-किस प्रकार ध्यान देना चाहिये? संक्षिप्त रूप में लिखिए।

अस्थिमण्डल

हम एक ऐसी इमारत को देखें जिसका निर्माण कार्य चल रहा हो तो हमें स्पष्ट दिखाई देगा कि लोहा, पत्थर, ईंट और लकड़ी उसके मुख्य आधार हैं। उनको एक-दूसरे से मिट्टी, चूना या सीमेंट से जोड़ा जा रहा है और अंत में ये ही मिट्टी, चूना और सीमेंट, लोहा, पत्थर व ईंटों को ढककर सारी इमारत को सुन्दर और साफ बना देते हैं। मानव-शरीर की भी यही गति है। हड्डियों का ढांचा उसका मुख्य आधार है जिसको आँतें, रक्त व मांस ने संगठित कर रखा है और चमड़ी ने उसे ढक कर सुन्दर और साफ बना दिया है। ढांचा अगर मजबूत है तब इमारत और मानव-शरीर अधिक वर्षों तक चलेंगे और इसके विपरीत हमेशा में हवा अनिश्चितता की दशा बनी रहेगी। अगर हिसाब लगाया जाए तो हड्डियां सम्पूर्ण शरीर का १२ प्रतिशत भाग हैं। वैयक्तिक स्वास्थ्य की दृष्टि से शरीर के इस अस्थिमण्डल (Skeleton) या ढांचे का अध्ययन आवश्यक है।

अस्थिमण्डल का महत्व—अस्थिमंडल को अस्थिपिंजर भी कहते हैं। यह शरीर के लिए निम्न दृष्टि से महत्वपूर्ण है :—

(i) वह शरीर की बनावट का आधार है।

(ii) वह शरीर की मजबूती का आधार है।

(iii) वह शरीर के विभिन्न अंगों को जोड़े हुए है।

(iv) वह शरीर के कोमल एवं महत्त्वपूर्ण अंगों को सहारा देता है एवं सुरक्षित रखता है।

अस्थिमंडल का मुख्य भाग—अध्ययन में सुविधा की दृष्टि से सम्पूर्ण अस्थिपिंजर को हम निम्नलिखित भागों में बांट सकते हैं :—

(क) मस्तक।

(ख) धड़ (रीढ़ की हड्डी, पसलियां और छाती की हड्डी)।

(ग) ऊपरी अवयव (हाथ)।

(घ) वस्ति प्रदेश और नीचे के अवयव (टांगें व पांव)।

(क) मस्तक—यह एक बक्स के समान होता है, जिसमें २२ हड्डियां होती हैं। बनावट की दृष्टि से मस्तक के दो भाग किये जा सकते हैं :—

(i) मस्तक का पिछला भाग।

(ii) सामने का भाग।

(i) मस्तक का पिछला भाग—पिछला भाग गोलाकार होते हुए सामने के में भौंहों तक आता है और बगल में कान तक इसकी सीमा है। इस भाग

हड्डियाँ होती हैं जो सब मिलकर सिर को नारियल की काचली के समान बना देती हैं। इसी कठोर भाग के अन्दर शरीर का अनमोल अंग मस्तिष्क रहता है।

अस्थिमंडल

चित्र नं० २

(ii) सामने का भाग—सामने के भाग में ही आँखें, नाक, मुँह व कान हैं। यह भाग कुल १४ हड्डियों से बना हुआ होता है। जबड़ा भी इसी भाग में रहता है। जबड़े के दो भाग होते हैं :—

(អ) ऊपरी जबड़ा—यह भाग शेष हड्डियों से मजबूती से जुड़ा है।

(ङ) पूंछ की हड्डी की कशेरुकाएं—यह भाग रीढ़ की हड्डी के सबसे नीचे का भाग है। यहां पर कुल ४ कशेरुकाएं होती हैं।

प्रत्येक कशेरुका के मध्य में एक छेद होता है। ऐसी छेद वाली तेंतीस कशेरुकाओं से बनी हुई रीढ़ की हड्डी भी बीच में खाली रहती है। इसी खाली भाग में महत्वपूर्ण सुषुम्णा सुरक्षित रहती है, जो शरीर की नाड़ियों का केन्द्र है और मस्तिष्क तक शरीर की खबरें लाती है और ले जाती है।

(ii) पसलियां और सीने की हड्डी—जैसे रीढ़ की हड्डी धड़ के पीछे के भाग में होती है वैसे ही सीने की हड्डी धड़ के सामने के भाग में होती है। इसका ऊपर का भाग चौड़ा और नीचे का भाग नुकीला होता है। रीढ़ की हड्डी का सीने की हड्डी से सम्बन्ध जोड़ने का काम जो हड्डियां करती हैं उन्हीं को पसलियां कहते हैं। वक्ष-स्थल-कशेरुकाओं से दोनों ओर बारह-बारह पसलियां निकली हुई होती हैं। प्रथम सात पसलियां सीने की हड्डी से आकर मिल जाती हैं। इन्हें असली पसलियां कहते हैं। इनके नीचे तीन पसलियां अपने ऊपर की पसलियों से आकर मिलती हैं और "झूठी पसलियों" के नाम से सम्बोधित की जाती हैं, शेष दो-दो पसलियां कहीं भी आकर नहीं मिलतीं और "तैरती पसलियां" कहलाती हैं।

उपरोक्त सब हड्डियां मिलकर एक ऐसे मजबूत स्थान का निर्माण करती हैं जिसमें शरीर के बहुत से मर्मस्थल स्थिर रह पाते हैं। इसी भाग के अन्दर हृदय, फेफड़े, जिगर, तिल्ली एवं आमाशय आदि स्थित हैं।

(ग) ऊपरी अवयव—दोनों हाथ इस भाग में शामिल हैं। एक हाथ में छोटी और बड़ी कुल बत्तीस हड्डियां होती हैं। हाथ के ऊपर के भाग में दो प्रमुख हड्डियां हैं। सामने की हंसिया की हड्डी और पीछे की कन्धे की हड्डी कहलाती है। हंसिया की और कन्धे की हड्डी के द्वारा ही वह जोड़ बनता है जहां से बांह की एक हड्डी शुरू होती है। बांह की हड्डी का नीचे का भाग कुहनी कहलाता है। कुहनी के स्थान से अग्रबाहु की दो हड्डियां शुरू होती हैं। जो हड्डी आगे अंगूठे की ओर पहुंचती है उसे बहिःप्रकोष्ठास्थि और जो कनिष्ठा की ओर पहुंचती है उसे अन्तःप्रकोष्ठास्थि कहते हैं। ये दोनों हड्डियां कलाई पर आकर मिल जाती हैं। कलाई का सम्पूर्ण भाग जिसमें कुल आठ हड्डियां हैं चार-चार छोटी हड्डियों की दो कतारों से बना हुआ है। इसी स्थान से हथेली का प्रारम्भ होता है जो कुल पांच लम्बी हड्डियों से गुंथ कर बनी है। इन्हीं हड्डियों से अंगुली की हड्डियां जुड़ी होती हैं। प्रत्येक अंगुली कुल तीन हड्डियों से और अंगूठा दो हड्डियों से बना हुआ है।

(घ) बस्तिप्रदेश और नीचे के अवयव :—

(i) बस्तिप्रदेश—धड़ के नीचे के बहुत से मर्मस्थलों की सुरक्षा का आधार बस्तिप्रदेश है। इस भाग में स्थित ९ कशेरुकाओं के मिलन पर यहां की हड्डियों की संख्या बहुत कम रह जाती है। २ नितम्बास्थियां जो यहां की प्रमुख हड्डियां हैं, सामने की ओर बस्त्यकुच नाम की एक हड्डी से आकर मिलती हैं और पीछे की ओर एक तिकोनी हड्डी पर आकर मिल जाती हैं। उपरोक्त दो बड़ी अस्थियों से जांघ की हड्डी (जंघास्थि) का ऊपरी भाग जुड़ा रहता है।

(iii) नीचे के धड़ में—जैसे ऊपरी धड़ में दोनों हाथ शामिल हैं वैसे नीचे के धड़ में दोनों टांगें शामिल हैं। प्रत्येक टांग में तीन हड्डियां होती हैं। वस्तिप्रदेश से निकलने वाली हड्डी जांघ की हड्डी कहलाती है। यह सम्पूर्ण शरीर में सबसे बड़ी और सबसे मजबूत हड्डी है। इसके नीचे की ओर का सिरा चौड़ा होकर घुटने के जोड़ पर मिलता है। घुटने की हड्डी एक छोटी तिकोनी हड्डी है जो घुटने के जोड़ को ढंके रहती है। घुटने के जोड़ पर नीचे से दो हड्डियां आकर मिलती हैं। सामने वाली बड़ी हड्डी जो घुटने से पैर के टखने तक जाती है पिंडली की हड्डी कहलाती है और दूसरी छोटी हड्डी को जो इसी के साथ पीछे की ओर होती है अनुजंघास्थि कहते हैं। ये दोनों हड्डियां नीचे जाकर टखने से जुड़ जाती हैं।

टखना कुल ७ हड्डियों से मिलकर बना है। एड़ी की हड्डी भी इन्हीं ७ में से एक एवं सबसे बड़ी हड्डी है। टखने से आगे के भाग में ५ हड्डियां हैं जो उस हिस्से को बनाती हैं जहां पैर की अंगुलियां आकर मिलती हैं। पैर की प्रत्येक अंगुली में ३, और अंगूठे में २ हड्डियां होती हैं।

जोड़

शरीर की २ हड्डियां जहां भी मिलती हैं वहीं जोड़ होता है। जोड़ अचल भी होता है जैसे कि सर की हड्डियों का जोड़ और चल भी होता है जैसे घुटना, कुहनी आदि के जोड़। चल जोड़ के स्थान पर दोनों हड्डियों के सिरे एक पुष्ट जालीदार अस्थिकोष से घिरे रहते हैं। इनके कारण हड्डियां अपने स्थान पर रहती हैं और हिल-चल सकती हैं। जालीदार अस्थिकोष में ही एक स्तर आवरणत्वचा होती है जो एक चिकना रस पैदा करती है। यह रस जोड़ की हड्डियों को चिकना रखकर हिलने-चलने में मदद देता है।

जोड़ों के प्रकार—बनावट और कार्य की दृष्टि से जोड़ निम्न प्रकार के होते हैं :—

(१) घुण्डी व छल्लेदार जोड़—ऐसे जोड़ में एक घुण्डी होती है जो छल्ले में जाकर बैठ जाती है। कंधे एवं कूल्हे के जोड़ इसी प्रकार के अन्तर्गत आते हैं।

(२) कब्जेदार या चूलदार जोड़—जैसे कब्जा एक ओर बन्द होता है पर सीधा करने पर दूसरी ओर बन्द नहीं हो सकता वैसे ही गति कब्जेदार जोड़ों में होती है। घुटने और टखने के जोड़ ऐसे ही जोड़ों में से हैं।

(३) घूमने वाले (चक्कर खाने वाले) जोड़—ऐसे जोड़ पर अंग केवल चक्कर ही लगा सकता है। मस्तक के नीचे ऐसे ही जोड़ की स्थिति के कारण गर्दन दाएं एवं बाएं घुमाई जा सकती है।

पुट्ठे

जोड़ों के स्थान पर हड्डियों, पुट्ठों एवं मांसपेशियों की सहायता से हिलाई-डुलाई जाती है। मांसपेशियों को इस काम में सफेद रेशेदार नसों के लोथ के द्वारा सहायता मिलती है। नाड़ी-जालक्रम दो भागों में विभाजित होता है। प्रथम भाग है मस्तिष्क-मेरुदण्डक्रम और द्वितीय भाग है वेदनात्मकक्रम। ये ही शरीर की सम्पूर्ण प्रणाली को नियन्त्रित करते हैं। मस्तिष्क-मेरुदंडक्रम अपने निर्णय को

नाड़ियों द्वारा पुट्ठों के पास भेजता है और पुट्ठे आज्ञा का पालन करते हैं। जो पुट्ठे व्यक्ति की इच्छा के अनुसार काम करते हैं 'ऐच्छिक पुट्ठे' कहलाते हैं।

नाड़ी-संस्थान के द्वितीय भाग (वेदनात्मक-क्रम) के नियन्त्रण में जो पुट्ठे काम करते हैं उन्हें 'अनैच्छिक पुट्ठे, कहते हैं। इनकी कार्यप्रणाली पर व्यक्ति का अधिकार नहीं होता। वे अपना काम लगातार करते हैं। अनैच्छिक पुट्ठे आँतों में साँस लेने की नली में, रक्तवाहक नालियों में और हृदय आदि स्थानों पर पाए जाते हैं।

ऐच्छिक और अनैच्छिक पुट्ठों के अतिरिक्त तीसरे प्रकार के पुट्ठे भी होते जिन्हें 'जोड़ने वाले पुट्ठे' कहते हैं। ये पुट्ठे उपरोक्त प्रकार के पुट्ठों के स्थानों अतिरिक्त स्थानों पर मिलते हैं। ये अस्थिपिंजर के सब भागों को जोड़कर रखते हैं। इन पुट्ठों के नीचे की तरफ हड्डियाँ और ऊपर की तरफ चमड़ी होती है।

चमड़ी

चमड़ी का शरीर के लिए भारी महत्व है। इसका महत्व इसी से स्पष्ट है कि ऐसा मनुष्य जिसके शरीर के अधिकांश भाग की चमड़ी किसी कारण से नष्ट हो गई है, जीवित नहीं रह सकता जब तक कि किसी उपर्युक्त तरीके से उसकी चिकित्सा न की जाए। चमड़ी हमारे शरीर के लिए निम्न दृष्टि से जरूरी है :—

(i) यह शरीर के समस्त कोमल अंगों से ढकी रहती है।

(ii) शरीर के किसी भी स्थान को कोई वस्तु छुए एवं हानि पहुँचाये तो यह मस्तिष्क को उसकी सूचना देती है।

(iii) यह शरीर के बाहरी तापक्रम (गर्मी-सर्दी) का ज्ञान कराती है और शरीर के तापक्रम को सम रखने में सहायता करती है।

(iv) यह शरीर के मल निकालने के एक अंग की तरह काम करती है और पसीने के द्वारा मल त्यागने में सहायता करती है।

चमड़ी में सबसे बड़ा गुण यह है कि इस पर कोई घाव हो जाने पर यह पुनः स्वास्थ्य प्राप्त करने की अनोखी शक्ति रखती है। इसके दो परत होते हैं :—

(क) बाहरी परत—यह परत भीतरी परत की तुलना में कठोर होती है और बाहर की तरफ रहती है।

(ख) भीतरी परत—इसे 'सच्ची चमड़ी' भी कहते हैं। इसी परत में अनेकों छोटी-छोटी गाँठें होती हैं जिनसे पसीना निकलता रहता है। पसीना पानी और कुछ के मेल के मिश्रण से बनता है। इसका निकलना स्वास्थ्य की दृष्टि से बड़ा जरूरी है।

चमड़ी कई प्रकार के रोगों से पीड़ित हो सकती है। इस दृष्टि से इसकी स्वच्छता और इस ओर सावधानी स्वास्थ्य के लिए नितान्त आवश्यक है। फोड़ा, फुन्सी, दाद खाज आदि अनेक ऐसे चर्मरोग हैं जो उपरोक्त लापरवाही के ही कारण घर कर लेते हैं।

अस्थिमंडल, जोड़, पुट्ठे आदि का शिक्षा से सम्बन्ध—हमने पूर्व अध्याय के बच्चों के बैठने, खड़े रहने, चलने आदि के आसनों एवं स्वास्थ्यकर तरीकों के विषय

में अध्ययन कर लिया है। उन्हीं नियमों का इस पाठ के अन्तर्गत आने वाले मर्म से बड़ा भारी सम्बन्ध है। सम्पूर्ण अस्थिपिंजर ही अनियमित हो सकता है यदि शाला के अन्दर शुरू से ही शरीर को उपयुक्त, सही एवं स्वास्थ्यप्रद आसन में रखने की आदत बालकों में न डाल दी जाए।

जोड़ और पुट्ठे शरीर के हिलने-डुलने को नियन्त्रित करते हैं। बालक स्कूल काम में भी लिखना व हाथ से काम करना सीखते हैं और यही क्रियाएं भावी जीवन के लिए सफलता का आधार बनती हैं। जो बालक अपनी मांसपेशियों पर अधिक से अधिक नियन्त्रण रखने का प्रशिक्षण पा लेते हैं वे जीवन-क्षेत्र के मोटे से मोटे काम को तो करते ही हैं पर बारीक से बारीक काम को भी अधिक सुन्दरता से पूरा कर लेते हैं। एक चित्रकार के हाथ के जोड़ और मांसपेशियां एक साधारण व्यक्ति की तुलना में कई गुना अधिक नियन्त्रित होती हैं।

सारांश

मानव शरीर एक लोहा, पत्थर, ईंट, सीमेंट और चूने की बनी हुई इमारत के समान है। इमारत में लोहा, पत्थर और ईंट के समान ही महत्त्व मानव शरीर में अस्थिपिंजर का है।

अस्थिमंडल का महत्त्व— यह शरीर की बनावट और मजबूती का आधार है। विभिन्न अंगों को जोड़ता है और सहारा देता है।

अस्थिमण्डल के मुख्य भाग—(क) मस्तक, (ख) धड़, (ग) ऊपरी अवयव, (घ) वस्तिप्रदेश और निचले अवयव।

(क) मस्तक—कुल २२ हड्डियों वाले इस अंगों के दो भाग हैं। एक पिछला भाग जिसमें दिमाग सुरक्षित रहता है और दूसरा सामने का भाग जिसमें आंख, नाक, कान, मुंह व जबड़े स्थित हैं।

(ख) धड़—इस भाग में रीढ़, पसलियां और छाती की हड्डियां स्थित हैं। रीढ़ की हड्डी में कुल ३३ हड्डियां होती हैं। रीढ़ की हड्डी की कशेरुकाएं कुल पांच भागों में विभाजित की जाती हैं।

पसलियां कुल मिलाकर २४ होती हैं। दोनों ओर की सात-सात पसलियां सामने की ओर छाती की हड्डी से आकर मिल जाती हैं।

(ग) ऊपरी अवयव—इस भाग में दोनों हाथ शामिल हैं। प्रत्येक हाथ में छोटी बड़ी कुल ३२ हड्डियां होती हैं।

(घ) वस्तिप्रदेश और नीचे के अवयव—वस्तिप्रदेश बहुत से अंगों की सुरक्षा का आधार है। इसी से दोनों टांगें जुड़ी होती हैं जिन्हें नीचे के अवयव कह कर सम्बोधित किया गया है। नीचे के प्रत्येक अवयव में ३० हड्डियां होती हैं।

जोड़

शरीर की दो हड्डियां जहां आकर मिलती हैं वह स्थान जोड़ कहलाता है। जोड़ अचल भी होता है और चल भी। चल जोड़ तीन भागों में बांटे जा सकते हैं— (१) चूंली व खूंटेदार जोड़, (२) कब्जेदार जोड़, (३) सरकने वाले जोड़।

पुट्ठे

पुट्ठे (शरीर का मांस) तीन प्रकार के होते हैं—ऐच्छिक पुट्ठे—जो व्यक्ति की इच्छा पर काम करते रहते हैं, (२) अनैच्छिक पुट्ठे—जो अपने आप लगातार काम करते रहते हैं, (३) जोड़ने वाले पुट्ठे—जो शरीर के अस्थिपिंजर के सब भागों को जोड़कर रखते हैं।

चमड़ी

शरीर का बाहरी आवरण है, तापक्रम का ज्ञान कराती है और शरीर का मल पसीने द्वारा बाहर निकालने में सहायता करती है। इसके दो परत होते हैं—(i) बाहरी परत—जो अन्दर के परत की तुलना में कठोर होता है, (ii) भीतरी परत—जो कोमल होता है। इसमें कई छोटी-छोटी गिल्टियां होती हैं जिनके द्वारा पसीना बाहर निकलता है।

अस्थिमण्डल, जोड़, पुट्ठों आदि का शिक्षक से सम्बन्ध—शिक्षालय का यह कर्तव्य होता है कि वह बालक को बैठने, चलने व दौड़ने के ऐसे तरीके समझाए जिससे अस्थिमण्डल की प्राकृतिक आकृति बनी रहे और वह विकृत न हो जाए ताकि स्वास्थ्य को हानि न पहुंचे।

जोड़ और पुट्ठों पर नियन्त्रण का प्रशिक्षण देने की जिम्मेदारी भी पाठशाला की है। जो बालक इस विषय में पर्याप्त पथ-प्रदर्शन पाते हैं वे जीवन-क्षेत्र में नाना प्रकार के कार्यों में एवं जीविकोपार्जन में अधिक सफल होते हैं।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(१) अस्थिपिंजर का विस्तार-सहित वर्णन कीजिए और यह स्पष्ट कीजिए कि शरीर के लिए इसका क्या महत्त्व है ?

(२) जोड़ किसे कहते हैं ? जोड़ों के प्रकार विस्तार से वर्णन कीजिए।

(३) पुट्ठे क्या हैं ? ये कितने प्रकार के होते हैं ?

(४) अस्थिपिंजर, जोड़ और पुट्ठों की बनावट और कार्य का विस्तृत ज्ञान अध्यापक के जीवन के लिए किस प्रकार लाभप्रद हो सकता है ?

—·•·—

श्वास-क्रिया

श्वास-क्रिया के द्वारा मानव-शरीर में रक्त की शुद्धि का काम निरन्तर चलता रहता है। श्वास लेने से रक्त में आक्सीजन मिलता है और प्रश्वास के साथ रक्त में मिश्रित कार्बन-डिओक्साइड् गैस शरीर के बाहर निकलती है। वर्णन की दृष्टि से यह कार्य बड़ा सरल दिखाई देता है, परन्तु वास्तविकता की दृष्टि से यह काम उतना सरल नहीं है।

श्वास-क्रिया से सम्बन्धित अंग—इस क्रिया में नाक, गला, श्वासमार्ग (विण्ड पाइप), वायु नली (ब्रोङ्कई), वायु कोष्टक व फेफड़े सम्बन्धित हैं।

श्वास-क्रिया
चित्र नं० ५

प्राकृतिक श्वास क्रिया—श्वास लेने के समय हवा नाक के जरिये गले के पिछले भाग में पहुँचती है। यहाँ से यह हवा एक ऐसे छिद्र द्वारा जिस पर एक पर्दा सा लगा हुआ है श्वास मार्ग में प्रवेश करती है। श्वास-मार्ग के पर्दे का महत्व यह है कि वह इसमें किसी ठोस या द्रव पदार्थ को नहीं जाने देता। यह श्वास-मार्ग छाती की हड्डी के करीब दो इंच नीचे जाकर दो भागों में बँट जाता है। ये भाग वायु नली (ब्रोङ्कई) कहलाते हैं। दायाँ भाग दाएँ फेफड़े को और बायाँ बाएँ फेफड़ों को पहुँचता है। प्रत्येक वायु-नली की शाखाएँ, उपशाखाएँ व प्रशाखाएँ होते हुए प्रत्येक सूक्ष्मतम शाखा, फेफड़े के प्रत्येक सूक्ष्मतम वायु-कोष्ठक से जा मिलती है। दोनों फेफड़े पसलियों के नीचे स्थित हैं और प्रत्येक फेफड़ा कोमल झिल्ली के एक थैले में बन्द रहता है। यह झिल्ली फेफड़े को स्वतन्त्रता से काम करने में सहायता करती है। श्वास की हवा अन्दर जाने के समय छाती का हिस्सा फूलता है और वायु फेफड़ों में भर जाती है। वह अपना ऑक्सीजन रक्त को दे देती है। उसका कार्बन-डिओक्साइड्, गर्मी व अन्य दूषित पदार्थ ले लेती है। अशुद्ध गहरे लाल रक्त को शुद्ध चमकीला लाल रक्त बना कर, प्रश्वास के समय बाहर निकल आती है। श्वास के ठीक बाद ही प्रश्वास नहीं होता है। क्रिया के इन दो भागों के बीच कुछ अन्तर होता है। स्वस्थ मानव एक मिनिट में लगभग १८ बार श्वास-प्रश्वास क्रिया को दुहराता है।

श्वास के समय उदरप्रचिर पेशी (डायफ्राम) जो छाती को पेट से अलग करने वाला एक धनुषाकार अंग है, नीचे की ओर दब जाता है; छाती और पसलियाँ ऊपर उठती हैं। शून्य स्थान पैदा होता है। वायु अन्दर की ओर खिंचती है। प्रश्वास के लिए किंचित-मात्र समय बाद ही मांसशिरा ऊपर उठने लगती है। पसलियाँ दबने लगती हैं और श्वास की शुद्ध वायु रक्त के अशुद्ध तत्वों को साथ ले स्वयं अशुद्ध हो बाहर निकल जाती है। यह श्वास-प्रश्वास का क्रम जीवन भर चलता रहता है। इस क्रम के रुकने की शुरुआत होते ही दम घुटने लगता है, रुकते ही व्यक्ति बेहोश हो जाता है और फौरन कोई यत्न न किया जाए तो व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है।

बनावटी श्वास-क्रिया—जब व्यक्ति का श्वास रुक गया हो, तुरन्त ही उन कारणों को जानना चाहिए जो श्वास को रोके हुए हैं यह देखना चाहिए कि वायु अन्दर जाने के रास्ते जैसे नाक व श्वास-मार्ग रुके तो नहीं हैं अथवा श्वास के अन्दर जाने की दशा में व्यक्ति के सीने को फूलने से कोई वस्तु या बोझ रोक तो नहीं रहा है या व्यक्ति के लिए पर्याप्त शुद्ध वायु का अभाव तो नहीं है। इस दृष्टि से व्यक्ति के शरीर को जाँच कर, और अगर कोई कारण है तो उसे दूर करके फौरन बनावटी श्वास-क्रिया प्रारम्भ की जानी चाहिए। बनावटी श्वास-क्रिया की दो रीतियाँ हैं :—

(१) शेफर की रीति—इस रीति में रोगी को उल्टा लिटाना पड़ता है। कृत्रिम श्वास देने की दृष्टि से सब से पहला काम यह होना चाहिए कि रोगी के कपड़ों को ढीला कर दिया जाए। रोगी के नीचे गद्दी हो यह जरूरी नहीं है। रोगी के दोनों हाथ उसके शरीर के निकट लेने चाहिएँ। उसकी जीभ बाहर खींच ली जाए। पहली सहायता देने वाला व्यक्ति रोगी के जिस तरफ बैठा हुआ हो उस तरफ की रोगी की टाँग को रोगी की दूसरी टाँग पर चढ़ा दी जाए। रोगी के गले के नीचे से एक हाथ ले जाया जाकर उसके चेहरे को सहारा दिया जाए और दूसरा हाथ रोगी के शरीर के दूसरी ओर के पुट्ठे के कपड़ों को पकड़कर रोगी को उलट दिया जाए।

बीमार को उल्टा लिटा देने के पश्चात् पहली सहायता देने वाले व्यक्ति को बीमार के सिर की ओर मुँह करके अपनी एड़ी के बल बैठना चाहिए। बीमार की कमर पर हाथ इस तरह रखे जाएँ कि दोनों कलाइयाँ एक दूसरे के निकट रहें। हाथों की उँगलियाँ बीमार की दोनों बगलों की ओर झुकी रहें। दोनों अंगूठे शरीर की मध्य रेखा के दोनों ओर सामानान्तर रहें। इस स्थिति में व्यवस्थित होने पर घुटनों को जमीन पर टिकाकर उपरोक्त स्थिति में ही इस प्रकार झुकना चाहिए कि जिससे शरीर का सारा बोझ बीमार की कमर पर पड़े। इस दबाव से रोगी का पेट दबता है। मांसशिरा ऊपर की ओर उठती है। बीमार के मुँह से पानी, हवा व कफ आदि बाहर निकलने लगते हैं। हवा का बाहर निकलना प्रश्वास की क्रिया को प्रारम्भ करता है। दबाव की यह स्थिति २ सेकंड तक चलनी चाहिए।

तत्पश्चात् धीरे-धीरे दबाव को कम करने की क्रिया शुरू होनी चाहिए। हाथ अपने स्थान पर पूर्व स्थिति में ही बने रहेंगे परन्तु प्रथम सहायता देने वाले के

बाहर खींच लेना चाहिए जिससे उसके द्वारा श्वास नली के बन्द हो जाने का खतरा दूर हो जाए। रोगी के दोनों हाथों को भी मस्तक के ऊपर की ओर ले लिया जाए।

पहली सहायता देने वाले व्यक्ति को अब रोगी के मस्तक की ओर मुँह करके, रोगी के ऊपर की ओर खींचे हुए दोनों हाथों के बीच, अपने घुटनों के बल बैठ जाना चाहिए। उसके दोनों हाथों को अग्रबाहु पर से पकड़ लो। हाथों को जितना भी ज्यादा से ज्यादा हो सके बाहर की ओर और ऊपर की ओर जाने दो। इस क्रिया से सीना फूलता है और वे मांसपेशियां जो भुजाओं और पसलियों से सम्बद्ध हैं पसलियों को ऊंचा उठाती हैं। हवा अन्दर जाती है। यह स्थिति २ सेकण्ड तक चलनी चाहिए देखो चित्र "क"।

चित्र नं० ■ (ख) दबाव डालने की स्थिति सिलवेस्टर की रीति

तत्पश्चात् प्रश्वास क्रिया करानी चाहिए। अब दोनों अग्रबाहु को नीचे की ओर इस प्रकार लाया जाए कि रोगी की छाती के ऊपर आने की दशा में उनकी दोनों अग्रबाहु एक दूसरे के ठीक ऊपर न आकर एक दूसरी के द्वारा काटने के चिन्ह (×) बनता रहे। यह वह स्थिति है जब छाती का गड्ढा सिकुड़ जाता है। उपरोक्त स्थिति में बीमार की कोहनियों पर दबाव पड़ना चाहिए जिससे अन्दर की हवा बाहर निकल आए (देखो चित्र "ख")। यह क्रिया २ सेकण्ड तक चलनी चाहिए।

कृत्रिम श्वास-क्रिया का संचालन एक मेहनती काम है। इसमें व्यक्ति थक जाता है। अतः एक या दो व्यक्ति ऐसे मौजूद रहने चाहिएं जो बदल-बदल कर इस काम को लगातार चालू रखने में सफल हो सकें। जब रोगी के हाथ बाहर की ओर फैले हुए हों तभी दूसरे व्यक्ति को यह काम संभलना चाहिए।

श्वास-क्रिया और शाला—श्वास-क्रिया के दो भाग हैं। प्रथम है प्राकृतिक श्वास-क्रिया जिसके नियमित रहने की अधिकांशतः जिम्मेदारी डाक्टर एवं शाला के चिकित्सक की आती है। अध्यापक या शाला की व्यवस्था में भाग लेने वाले अन्य

कार्यकर्ताओं की तो इस विषय में इतनी ही जिम्मेदारी है कि उन्हें किसी भी बालक में उपरोक्त क्रम में कोई रोग दिखाई दे तो उसकी उनको जानकारी दी जाए। परन्तु जहां कृत्रिम श्वास-क्रिया का प्रश्न है इसके विषय में शाला की व्यवस्था में हाथ बंटाने वाले सब व्यक्तियों व बालकों को इसकी पूरी जानकारी होनी चाहिए। जिससे ज्योंही ऐसी स्थिति आए रोगी की सहायता की जा सके और डाक्टर के आने तक कृत्रिम श्वास-क्रिया चालू रखी जा सके।

सारांश

श्वास-क्रिया से सम्बन्धित अंग—इस क्रिया में नाक, गला, श्वास-मार्ग वायु नली, वायु कोष्ठक व फेफड़े काम करते हैं। इस क्रिया से शरीर के अशुद्ध रक्त का शुद्ध रक्त में परिवर्तित होने का क्रम जारी रहता है।

प्राकृतिक श्वास-क्रिया—श्वास के अन्दर जाने वाली हवा फेफड़े के छोटे से छोटे कोष्ठक तक पहुँचती है। यहीं पर इस हवा का अशुद्ध रक्त से मेल हो— है। शुद्ध वायु का ऑक्सीजन रक्त में मिलकर उसे शुद्ध और चमकीला बना देता और उसका कार्बन-डिऑक्साइड, गर्मी व अन्य दूषित पदार्थ साथ लेकर बाहर निक आती है। श्वास-प्रश्वास की क्रिया एक मिनट में करीब अठारह बार दुहराई जाती है

बनावटी श्वास-क्रिया—जब व्यक्ति का श्वास रुक जावे तब इस क्रिय को करना जरूरी हो जाता है। इस क्रम में दो तरीकों को अपनाया जाता है—

(क) शेफर की रीति—इस रीति को अपनाने के समय रोगी को उल्ट लिटाया जाकर, उसकी कमर के ऊपर दो सेकण्ड तक दबाव डालकर तीन सेकण तक दबाव को कम कर दिया जाता है। इस प्रकार इस क्रिया को एक मिनट में बारह बार दुहराया जाता है।

(ख) सिलवेस्टर की रीति—इस रीति के समय व्यक्ति को सीधा (पीठ के बल पर) लिटाते हैं। उसके स्कन्धफलक के नीचे एक तकिया या गद्दी रख देते हैं और उसके दोनों हाथों को बाहर व ऊपर की ओर खींचते हैं जिससे सीना फूलता है। यह क्रिया दो सेकण्ड में ही पूरी करके रोगी की अग्र-बाहु को पकड़ के उसके सीने पर इस प्रकार लाते हैं कि एक अग्र-बाहु दूसरी के ठीक ऊपर न आकर एक दूसरी के द्वारा काटने का चिन्ह (×) बनाए। इस स्थिति में बीमार की कोहनियों पर दबाव पड़ता है और यह दबाव तीन सेकण्ड तक रहना चाहिए। इस क्रिया के दोनों अंग एक मिनट में बारह बार दुहराये जाते हैं।

श्वास-क्रिया और शाला—शाला के जिम्मेदार सदस्यों को कृत्रिम श्वास क्रिया को संचलित करने का ज्ञान होना बड़ा जरूरी है जिससे शाला के सदस्यों को खतरे से बचाया जा सके और उनकी प्राथमिक सहायता की जा सके।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(१) श्वास-नलिका का विस्तार से वर्णन कीजिए।

(२) कृत्रिम श्वास क्रिया का शाला की दृष्टि से क्या महत्व है? शेफर और सिलवेस्टर की रीतियों में कौन सी रीति आपकी दृष्टि में अधिक सहूलियत देने वाली है?

—:०:—

रक्त परिभ्रमण

श्वास-क्रिया से निकटस्थ सम्बन्धित क्रिया रक्त-परिभ्रमण क्रिया है। श्वास-क्रिया से सम्बद्ध अनेक अंग इस क्रिया में भी योग देते हैं। रक्त-परिभ्रमण का अंग हृदय है। शुद्ध खून इसके बाएँ भाग से निकलकर सम्पूर्ण शरीर का भ्रमण करता है। इसी क्रम में शरीर की गन्दगी इसमें मिलती है। गन्दगी मिश्रित खून हृदय के दाएँ भाग में पहुँचकर फेफड़ों में जाता है, जहाँ इसकी सफाई होती है। शुद्ध खून फिर से हृदय के बाएँ भाग में उस जगह पहुँचकर जहाँ से इसने पहले यात्रा शुरू की थी अपनी नई यात्रा प्रारम्भ कर देता है।

हृदय—रक्त के परिभ्रमण में हृदय एक पम्प की तरह लगातार काम करता है। यह मांसपेशियों का बना हुआ एक अंग है। इसकी शक्ल पीपल के पत्ते से मिलती है। यह छाती की हड्डी व पसली की मध्यरेखाओं के ठीक पीछे स्थित है। हृदय का तीन-चौथाई भाग शरीर मध्य-रेखा से बाईं ओर, और एक-चौथाई भाग दाईं ओर स्थित है। इसकी धड़कन मानव के बाएँ स्तन के नीचे मालूम की जा सकती है। ऊपर से नीचे की ओर इसमें एक पर्दा लगा हुआ होता है। यह पर्दा हृदय को दो भागों में बाँट देता है। इन दोनों भागों में न तो आपसी सम्बन्ध है और न इनका काम ही समान है। हृदय का बायाँ भाग फेफड़े के अतिरिक्त शेष भागों में रक्त परिभ्रमण को नियन्त्रित करता है। हृदय का दायाँ भाग फेफड़ों में रक्त पहुँचाता है। उपरोक्त दोनों भाग भी दो-दो भागों में बँटे हुए हैं। इस विभाजन की विशेषता यह है कि एक भाग का दूसरे से सम्बन्ध बना हुआ है। फेफड़े के बाएँ भाग के दो हिस्सों में ऊपरी भाग बायाँ ग्राहक-कोष्ठ (लेफ्ट ऑरिकल) और निचला भाग बायाँ क्षेपक-कोष्ठ (लेफ्ट वेन्ट्रिकल) कहलाता है। इसी प्रकार दाएँ भाग के दो हिस्से को दायाँ ग्राहक-कोष्ठ, व दायाँ क्षेपक-कोष्ठ कहलाते हैं। ग्राहक-कोष्ठ और क्षेपक-कोष्ठ के बीच का सम्बन्ध ऐसे कपाटों (वाल्व्ज) द्वारा जुड़ा हुआ है जो खुलने और बन्द होने का काम लगातार चालू रखते हैं। बाईसिकिल के पहिये की ट्यूब का वाल्व पम्प की हवा के दबाव के समय खुल जाता है। हवा अन्दर पहुँच जाती है। किन्तु अन्दर पहुँची हुई हवा को वह वापस बाहर नहीं निकलने देता। इसी प्रकार एक ओर के ग्राहक-कोष्ठ से उस ओर के क्षेपक-कोष्ठ में जब रुधिर पहुँचता है, तो वह उस कपाट के रास्ते लौट कर नहीं आ सकता। एक जवान व्यक्ति का हृदय प्रति मिनट में ७२ बार की औसत दर से धड़कता रहता है। इस धड़कन की गति सोने की अवस्था में सबसे कम होती है। बैठने पर बढ़ती है, खड़े होने पर ज्यादा होती है, और दौड़ने पर बहुत ज्यादा बढ़ जाती है।

रक्त-परिभ्रमण—रक्त-परिभ्रमण-क्रिया एक ऐसी क्रिया है जिसका किसी निश्चित स्थान से प्रारम्भ या किसी विशेष स्थान पर अन्त मानना उपयुक्त नहीं है।

रक्त-परिभ्रमण
चित्र नं० ■

यह क्रिया निरन्तर बहने वाली एक ऐसी सरिता की क्रिया के समान है जिसका उद्गम ही मुहाना है और मुहाना ही उद्गम है। इस परिभ्रमण के वर्णन को प्रारम्भ करते समय हमें किसी एक उपयुक्त स्थान को चुन लेना पड़ेगा। हृदय के बाएँ क्षेपक-कोष्ठ को हम इस हेतु चुन लेते हैं। हृदय के बाएँ क्षेपक-कोष्ठ से स्वच्छ लाल रक्त मुख्य महाधमनी में आता है। यह धमनी आगे जाकर शाखा धमनियों में एवं नाड़ियों में बँट जाती है। ये नाड़ियाँ छोटी-छोटी केशिकाओं में विभाजित होती हैं। इन केशिका नाम की नाड़ियों में गैसों और द्रवमार्गों के पारस्परी लेने देने का काम लगातार चलता रहता है। रक्त शरीर को ऑक्सीजन एवं पोषक पदार्थ देता है और शरीर के कार्बोनिक एसिड गैस एवं व्यर्थ पदार्थ को अपने साथ ले लेता है। केशिकाएँ शरीर के सब अंगों ■ फैली हुई हैं। शरीर के सब अंगों में इन केशिकाओं में रुधिर द्वारा व्यर्थ पदार्थों के लेने और पोषक पदार्थों के देने की क्रिया निरन्तर जारी रहती है। व्यर्थ पदार्थों के मिलने से रक्त दूषित और गहरा लाल हो जाता है। स्वच्छ रक्त जब केशिकाओं में पहुँचकर दूषित हो जाता है, तब

दूषित रक्त की केशिकाएं आगे जाकर बड़ी नाड़ियों को और बड़ी नाड़ियां मिलकर दो बड़ी महाशिरा (वेनकेवा) नाम की नाड़ियों का निर्माण करती हैं। सिर और हाथ का रक्त उच्च महाशिरा द्वारा और शरीर के निचले अंगों का रक्त निम्न महाशिरा द्वारा हृदय के दाहिने ग्राहक-कोष्ठ मे वापस आ जाता है। दाहिने ग्राहक-कोष्ठ से रक्त, दाहिने क्षेपक कोष्ठ मे पहुँच जाता है। दाहिने क्षेपक कोष्ठ से रक्त फुफ्फुसिया-धमनी में पहुँच जाता है जो इसे फेफड़ों में ले जाती है। यहाँ आकर यह धमनी अनेक छोटी-छोटी केशिकाओं में बँट जाती है। यहाँ पर अशुद्ध रक्त का वायु से सम्पर्क होता है। इसका कार्बोनिक एसिड गैस व दूषित व्यर्थ पदार्थ प्रश्वास की वायु में मिलकर बाहर निकल जाते हैं और श्वास की शुद्ध वायु से आक्सीजन इसमे मिलकर अशुद्ध गहरे लाल रक्त को स्वच्छ लाल रक्त में बदल देता है। शुद्ध-रक्त वाली केशिकाएं वापस बड़ी नाड़ियों को और अन्त मे फुफ्फुसिया नाम की नाड़ियों को बनाती हैं जो रक्त को हृदय के बाएँ ग्राहक-कोष्ठ मे पहुँचा देती है। यहाँ से रक्त वाल्व द्वारा दाएँ क्षेपक कोष्ठ में पहुँच जाता है। इस प्रणाली द्वारा रक्त का परिभ्रमण पूरा हो जाता है।

सारांश

रक्त-परिभ्रमण का प्रमुख अंग हृदय है जो एक पम्प की तरह काम करता है।

हृदय—यह पीपल के पत्ते के आकार का होता है। इसका तीन-चौथाई भाग शरीर-मध्य-रेखा के बाईं ओर है। यह चारों भागों में बंटा हुआ है। ऊपरी और निचले भाग आपस में कपाटों द्वारा सम्बद्ध होते हैं परन्तु बाएँ और दाएँ भागों में आपसी सम्बन्ध नहीं है।

रक्त परिभ्रमण—बाएं क्षेपक कोष्ठ से शुद्ध रक्त मुख्य महाधमनी, शाखा धमनियों, नाड़ियों और केशिकाओं में पहुँचता है। यहाँ आने तक यह अशुद्ध हो जाता है। अशुद्ध रक्त केशिकाओं से नाड़ियों और फिर दो बड़ी महाशिराओं द्वारा दाएं ग्राहक कोष्ठ में पहुँचता है। कपाट के द्वारा यह रक्त दाएं क्षेपक कोष्ठ में पहुँचता है और फिर वहां से फेफड़ों में जाता है। जहां शुद्ध वायु के समावेश से शुद्ध होता है और वापस बाएं ग्राहक कोष्ठ में पहुँच जाता है। यह शुद्ध खून वापस बाएं क्षेपक कोष्ठ मे पहुँच जाता है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(१) रक्त परिभ्रमण क्रिया में काम आने वाले अंगों को गिन दो। हृदय के विषय में विस्तार से वर्णन लिखिये।

(२) रक्त-परिभ्रमण क्रिया का विस्तार से वर्णन लिखिये। अपने वर्णन को चित्र द्वारा स्पष्ट कीजिये।

—:०:—

(ii) भोजन की नली—चबाया हुआ भोजन आगे बढ़ने पर एक नली में होकर गुजरता है। गले में दो नलियां होती हैं। एक पिछले भाग में जिसमें होकर श्वास-क्रिया के अन्तर्गत आने वाली हवा फेफड़े में पहुँचती है। दूसरी नली अगले भाग में होती है जो भोजन को आमाशय तक पहुँचाती है। इसी नली को भोजन की नली कहते हैं।

पाचन प्रणाली

चित्र नं० ९

(iii) आमाशय—भोजन की नली से आने वाला भोजन आमाशय (मेदा) में आकर इकट्ठा होता है। यहां पर उसमें एक प्रकार के तेजाबी पानी के मिलने की क्रिया करीब आधा घंटे तक चलती रहती है। इसी समय आमाशय में कुछ-कुछ

हलचल भी होती रहती है। उपरोक्त दोनों कार्य भोजन के पचने में सहायता करते हैं।

(iv) यकृत (जिगर), गुर्दे और मूत्राशय—भोजन आमाशय के बाद छोटी आंत में पहुँचता है। आमाशय और छोटी आंत के जोड़ पर ही यकृत की एक पतली नली (बाइल डक्ट) आकर मिलती है। इसी नली से एक पीले रंग का पाचक रस आता है। इस रस को पित्त कहते हैं। यह भोजन को पचाता है और साथ ही भीतरी विषों का नाश करता है और अन्न में रस को खून में बदलने का काम करता है। यहां के उपयोग के बाद जो रस गुर्दे में पहुँचता है वहां एक बार और भी शरीर के लिए उपयोगी तत्त्वों को छांटा जाता है। यहां से व्यर्थ की सामग्री मूत्राशय में मूत्र के रूप में आकर इकट्ठी हो जाती है। जब यकृत में खराबी हो जाती है तब पाचन-क्रिया तो खराब होती ही है परन्तु भीतरी विष भी रक्त में मिलने लगता है जिससे अफारा व पीलिया आदि रोग पैदा हो जाते हैं और खून बनना बन्द हो जाता है। स्वास्थ्य की दृष्टि से जिगर को कभी-कभी आराम भी मिलना जरूरी है। यह तभी सम्भव है जब निश्चित काल के पश्चात् उपवास करने का नियम बनाकर उसका पालन किया जाए। उपवास के अवसर पर यकृत पहले तो भीतर के जमा भोजन को पचाने का काम करेगा और फिर कुछ आराम भी पायेगा। ऐसा करने पर तेज भूख भी लगेगी और यकृत सुदृढ़ बना रहेगा।

(v) तिल्ली—बाईं पसलियों के नीचे के भाग में तिल्ली की स्थिति है। जब स्वास्थ्य खराब होता है, बुखार मुख्यतः पड़ जाता है तो तिल्ली बढ़ जाती है और स्वस्थ हो जाने पर वापस अपने स्थान पर आ जाती है।

(vi) क्लोम—तिल्ली के समीप ही क्लोम की स्थिति होती है। क्लोम से निकलने वाले विभिन्न रस भोजन के विभिन्न अंशों को पचाने में सहायक होते हैं। क्लोम में खराबी हो जाने पर मधुमेह एवं बहुमूत्र की बीमारी पैदा हो जाती है।

(vii) छोटी आंत—पाचन प्रणाली के उपरोक्त सब अंगों द्वारा गुजर कर अपूर्ण रूप से पचा भोजन एक छोटी आंत में आता है जिसका व्यास करीब एक इंच और लम्बाई करीब बीस फुट होती है। इस आंत में एक प्राकृतिक हरकत के साथ-साथ भोजन आगे बढ़ता रहता है। इस आंत की दीवारों से इसी अवसर पर एक क्षारीय रस भी आकर भोजन में मिलता रहता है। इस आंत के अन्तिम सिरे पर पहुँचते-पहुँचते पाचन क्रिया पूर्णता के निकट हो जाती है। भोजन के रस का एक अंश शरीर का भाग बन जाता है और शेषांश मल या विष्ठा के रूप में आगे बढ़ता है।

(viii) बड़ी आंत—छोटी आंत की लम्बाई अधिक होती है और बड़ी आंत की कम परन्तु बड़ी आंत की मोटाई छोटी आंत से अधिक होती है। इसी कारण इस आंत को बड़ी आंत कहते हैं। जहां पर छोटी आंत से बड़ी आंत मिलती है वहीं पर एक अन्य अंग भी होता है जिसे अपेन्डिक्स कहते हैं। बड़ी आंत के अन्त के

पहुँच जाने पर सूजन आ जाती है और दर्द शुरु हो जाता है जिसके फलस्वरूप चीर-फाड़ जरूरी हो जाती है। इस अंग के कट जाने पर ही दर्द से छुटकारा मिलता है। दाईं ओर नीचे के भाग से प्रारम्भ होकर बड़ी आंत ऊपर की ओर जाती है और फिर बाईं ओर घूम कर धड़ के बाएँ भाग में होती हुई नीचे की ओर आती है और गुदा के द्वार तक पहुँचती है।

(ix) गुदा एवं मलद्वार—खाए हुए भोजन का वह अंश जो शरीर का भाग नहीं बन पाता मलद्वार द्वारा बाहर फेंक दिया जाता है। व्यक्ति की पाचन प्रणाली के स्वास्थ्य का चिन्ह यही है कि शौच के लिए बैठते ही सब मैला फौरन ही बाहर निकल आए। निकला हुआ मैला न अधिक कड़ा हो और न पतला हो। शौच जाने में अधिक देरी लगना यह संकेत देता है कि व्यक्ति को कब्ज की शिकायत है। कब्ज आजकल भोजन की अनियमितता व उसके फलस्वरूप पैदा होने वाली पाचन प्रणाली के अंगों की अस्वस्थता के कारण अधिकांश लोगों को रहा करता है।

पाचन प्रणाली और शिक्षा—पाचन क्रिया बालक के शारीरिक स्वास्थ्य पर तो प्रभाव डालती ही है परन्तु मानसिक स्वास्थ्य भी इससे प्रभावित होता है। अगर पाचन क्रिया ठीक प्रकार नहीं होती है तो बालक का स्वास्थ्य गिरता जाएगा। किसी विद्वान ने कहा है "स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मन निवास करता है।" अतः शरीर की अस्वस्थता की दशा में बालक मानसिक कार्य भी पूर्ण योग्यता से सम्पादित नहीं कर सकेगा। अतः यह स्पष्ट है कि ऐसी दशा में पाठशाला एवं उसके कार्य-कर्ता बालक को जिस अंश में लाभ पहुँचा सकते हैं उस अंश तक बालक लाभ उठाने में अस्वस्थता के कारण वंचित रह जाएगा। अस्वस्थ बालक मानसिक निर्बलता का शिकार होकर चिड़चिड़ा, झगड़ालू एवं जिद्दी बन जाता है। उसका इस प्रकार का व्यक्तित्व शाला के अनुशासन पर भी बुरा प्रभाव डालता है। उपरोक्त कठिनाइयों से बचने के लिए यह जरूरी है कि बालकों की पाचन प्रणाली के अंगों के स्वास्थ्य की ओर पूरा-पूरा ध्यान दिया जाए। शाला में बालकों पर अनावश्यक दबाव, भार, चिन्ता डालने से भी उनकी पाचन-क्रिया में बाधा पहुँचती है जिससे शरीर रोगी हो जाता है। एक मनोवैज्ञानिक यन्त्रों द्वारा एक बिल्ली की पाचन क्रिया का अध्ययन कर रहे थे। अचानक उसका कुत्ता भीतर आ गया। बिल्ली उसे देखते ही डर गई और उसकी पाचन क्रिया रुक गई। कुत्ते के चले जाने पर पाचन क्रिया पूर्ववत् चालू हो गई। अतः बालकों को सदा प्रसन्न-मुख रखना चाहिए। उन्हें भयभीत और चिन्तित न होने देना चाहिए।

सारांश

जैसे एक मशीन को चलाने के लिए कोयला और पानी जरूरी है उसी प्रकार मानव शरीर को कायम रखने के लिए, भोजन जरूरी है। प्राप्त भोजन शरीर के विभिन्न अंगों में होकर गुजरता है। उसका एक भाग शरीर का हिस्सा बन जाता है और शेष भाग मल के रूप में बाहर फेंक दिया जाता है।

पाचन क्रिया के मुख्य अंग और उनका कार्य:—

(i) मुंह—भोजन सर्वप्रथम मुंह में जाता है। यहां वह चबाया जाता है और उसमें एक रस (लार) का मिश्रण होता है।

(ii) भोजन की नली—यह गले में सामने की ओर होती है और चबाये हुए भोजन को आमाशय में पहुंचाती है।

(iii) आमाशय—भोजन के यहां आने पर एक तेजाबी पानी इसमें मिलता है एवं हरकत द्वारा यह भोजन के पचने में सहायता करता है।

(iv) यकृत, गुर्दे और मूत्राशय—यकृत से एक पीले रंग का रस जिसे पित्त कहते हैं भोजन में आकर मिलता है और पाचन क्रिया में सहायता करता है। यकृत से बचा हुआ रस गुर्दों में पहुंचता है जहां शरीर के लिए लाभकारी तत्वों को चुना जाता है और शेष व्यर्थ सामग्री मूत्राशय में जाकर इकट्ठी हो जाती है।

(v) तिल्ली—यह बाईं पसलियों के नीचे स्थित रहती है।

(vi) क्लोम—यह भोजन के विभिन्न अंशों को विभिन्न रसों द्वारा पचाने का कार्य करता है।

(vii) छोटी आंत—यह एक इंच व्यास की करीब २१ फीट लम्बी नली होती है जिसमें होकर भोजन गुजरता है।

(viii) बड़ी आंत—छोटी आंत से भोजन बड़ी आंत में आता है। यहां भोजन का वह भाग आता है जो मल का रूप धारण कर लेता है।

(ix) गुदा एवं मल द्वार—यहां से मल बाहर फेंक दिया जाता है।

पाचन प्रणाली और शिक्षा—पाचन प्रणाली बालक के शारीरिक स्वास्थ्य और मानसिक स्वास्थ्य दोनों पर प्रभाव डालती है। अतः पाचन प्रणाली के अंगों के स्वास्थ्य पर पूरा ध्यान देना जरूरी है। बालकों पर शिक्षा का भय और दबाव नहीं पड़ने देना चाहिए।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(१) पाचन प्रणाली का विस्तार से विवेचन कीजिए और उसमें सहायक प्रत्येक अंग का वर्णन कीजिए।

(२) पाचन प्रणाली बालक की शिक्षा को किस प्रकार प्रभावित करती है इस विषय में विस्तार से अपने विचार व्यक्त कीजिए।

मस्तिष्क और सुषुम्ना

मस्तिष्क और सुषुम्ना शरीर संचालक कहे जाते हैं। इन्हीं पर जीवन का सुचारु रूप से चलना सम्भव है। वैसे शरीर का प्रत्येक अंग अपना-अपना विशेष महत्त्व रखता है और उनमें से किसी एक के अभाव में भी जीवन का संचालन कठिन हो जाता है। पर मस्तिष्क और सुषुम्ना के ठीक ढंग से कार्य न करने पर जीवन खतरे में पड़ सकता है। इसीलिए प्रकृति ने इनको सुदृढ़ दुर्ग के भीतर सुरक्षित रखा है।

मस्तिष्क की बनावट—यह सुदृढ़ दुर्ग है। मनुष्य की खोपड़ी की मजबूत हड्डियों के भीतर कोमल मस्तिष्क का स्थान है। मस्तिष्क की और अधिक रक्षा के लिए खोपड़ी की हड्डियों और मस्तिष्क के बीच तीन झिल्लियों का आवरण और तथा पानी की एक परत भी है। ताकि मस्तिष्क को यकायक किसी प्रकार की हानि न पहुँच सके।

मस्तिष्क नाड़ी तन्तुओं और रक्त का बना हुआ एक लोथड़ा है जो वजन में लगभग ५० औंस होता है। इस पर कई छोटी बड़ी गहराइयाँ होती हैं। इस मस्तिष्क को हम इन भागों में बँटा हुआ पाते हैं :—

(१) बड़ा मस्तिष्क, (२) लघु मस्तिष्क, (३) सुषुम्ना।

(१) बड़ा मस्तिष्क—

(अ) बनावट—मस्तिष्क का यही सबसे बड़ा भाग है जो दो भागों में बँटा हुआ है। दोनों भागों के बीच में गहरी दरार है। पर नीचे से यह एक स्नायु से जुड़ा हुआ है। ये भाग भी दो प्रकार के पदार्थों से बना हुआ है। ऊपरी भाग भूरे पदार्थ का है और भीतरी भाग सफेद पदार्थ का है। बृहत मस्तिष्क दरारों से कई भागों में बँटा हुआ है। प्रत्येक भाग एक विशेष कार्य के लिए निश्चित है। जिसे केन्द्र कहते हैं जैसे, स्वाद केन्द्र, श्रवण केन्द्र, दृष्टि केन्द्र आदि।

(आ) बड़े मस्तिष्क का कार्य—बड़ा मस्तिष्क बुद्धि और ज्ञान का केन्द्र है। यह ज्ञान प्राप्त करता है। अनुभव करता है। विचारता है। स्मरण करता है। प्रयत्न करता है। इच्छा करता है। शरीर के कार्यों का संचालन करता है।

(२) लघु मस्तिष्क—

(अ) बनावट—लघु मस्तिष्क एक छोटा-सा स्नायु केन्द्र है। यह बड़े मस्तिष्क के पिछले भाग में नीचे की ओर स्थित है। यह स्नायु केन्द्र भी दो भागों में बँटा हुआ है और बड़े मस्तिष्क की ही भाँति ऊपर से भूरे पदार्थ से और भीतर सफेद पदार्थ से निर्मित है। इस पर भी दरारें होती हैं पर बड़े मस्तिष्क की अपेक्षा थोड़ी कम और गहरी अधिक होती हैं।

(आ) लघु मस्तिष्क का कार्य—शरीर को सन्तुलित रखना, मांस-पेशियों की चेष्टाओं को नियंत्रित करना, शरीर में ठीक ढंग से गति संचालन करना आदि। लघु मस्तिष्क में यदि कोई रोग हो जाय तो व्यक्ति चलने में लड़खड़ा जाता है। सम्बन्धित अंग कार्य नहीं करता।

(३) सुषुम्ना—

(अ) बनावट—सुषुम्ना एक प्रकार से मस्तिष्क का ही अंग है। इसीलिए मस्तिष्क की ही भाँति इसकी रक्षा की गई है। यह भी मस्तिष्क की ही भाँति सफेद और भूरे पदार्थ से निर्मित है। अन्तर केवल यही है कि सुषुम्ना में भूरा पदार्थ भीतर और सफेद पदार्थ बाहर है। इस प्रकार यह एक रस्सी की शक्ल की है। रीढ़ की हड्डी की कशेरुका नली में सुरक्षित है। हड्डियों की इस नली में भी सुषुम्ना मस्तिष्क की ही भाँति तीन परतदार आवरणों में ढकी हुई है। सुषुम्ना १२ इंच लम्बी तथा ½ इंच मोटी होती है। इसके अगली ओर और पिछली ओर दो दरारें होती हैं। दोनों दरारें बहुत गहरी होती हैं। सुषुम्ना का मस्तिष्क से मिलने वाला भाग सुषुम्ना शीर्षक कहलाता है। इस सुषुम्ना से ३२ जोड़े सुषुम्ना स्नायु निकलते हैं जो रीढ़ की हड्डी के बीच की जगहों से निकल कर बाहर जाते हैं। जो स्नायु सुषुम्ना के अगले भाग से निकलता है वह खबर बाहर ले जाता है। जो पिछले भाग से निकलता है वह खबर लाता है।

(आ) सुषुम्ना का कार्य—सुषुम्ना के द्वारा ही शरीर की विभिन्न सूचनाएँ मस्तिष्क में पहुँचती हैं। शरीर के बायें भाग की सूचना दाहिने मस्तिष्क को और दाहिने भाग की सूचना बायें मस्तिष्क को पहुँचती है। और इसी प्रकार मस्तिष्क की प्रतिक्रिया सुषुम्ना के पिछले भाग वाले स्नायु शरीर के विभिन्न भागों को पहुँचाते हैं। यद्यपि सुषुम्ना का कार्य सूचनाओं को मस्तिष्क तक लाने ले जाने का है तथापि कई बार सुषुम्ना के केन्द्र स्वयं ही बिना मस्तिष्क को सूचना दिए हुए कार्य को कर डालते हैं। ऐसी क्रियाओं को स्वतः प्रेरित क्रियाएँ (Reflex Actions) कहते हैं। जैसे पाँव में गुदगुदी चलते ही पाँव को हटा लेना, सुई चुभने पर तत्काल हाथ हटा लेना आदि स्वत: प्रेरित क्रियाएँ हैं, जिनकी क्रिया सुषुम्ना के सम्बन्धित केन्द्र द्वारा पूरित होती है। सुषुम्ना में कहीं खराबी या चोट आ जाती है तो उससे सम्बन्धित शरीर के अंगों की सूचना मस्तिष्क तक नहीं पहुँच पाती, और वह अंग शिथिल और निर्जीव सा हो जाता है।

मस्तिष्क का शिक्षा में महत्व—हम जो भी ज्ञान और अनुभव प्राप्त करते हैं वे मस्तिष्क द्वारा एकत्रित किये जाते हैं, स्मरण रखे जाते हैं और आवश्यकता तथा परिस्थिति उत्पन्न होने पर प्रयोग में लाए जाते हैं। अतः यों कहना चाहिए कि बिना मस्तिष्क के शिक्षा ग्रहण नहीं की जा सकती। मस्तिष्क-शक्ति विभिन्न व्यक्तियों में विभिन्न मात्रा में होती है। यही नहीं मस्तिष्क-शक्ति में व्यक्तिगत विभेद भी है। [illegible] मस्तिष्क-शक्ति की दृढ़ता और निर्बलता का [illegible] अनुमान [illegible] [illegible]। अर्थात् यदि सिर बड़ा है तो उसका मस्तिष्क भी भारी होना और [illegible] अच्छा होना चाहिए। परन्तु यह बात नहीं है। मस्तिष्क की [illegible] [illegible]

द्वारा शरीर की विभिन्न सूचनाएँ मस्तिष्क को पहुँचती हैं। कई कार्यों की पूर्ति सुषुम्ना बिना मस्तिष्क को सूचना दिए ही कर सकती है, जैसे आँख के सामने उंगली लाते ही पलक मारना आदि। ऐसी क्रियाओं को स्वतः प्रेरित क्रियाएँ कहते हैं।

मस्तिष्क का शिक्षा में महत्त्व—अनुभव और ज्ञान मस्तिष्क द्वारा एकत्र किया जाता है। स्मरण रखकर पुनः प्रयोग में लाया जाता है। मस्तिष्क शक्ति का विकास किसी एक सीमा तक किया जा सकता है अन्यथा इसे वंशानुक्रमागत ही मानते हैं। हाथ से काम कर अनुभव प्राप्त करने के द्वारा मस्तिष्क का विकास अधिक सम्भव है। बुनियादी शिक्षा इसमें समर्थ है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(१) मस्तिष्क की बनावट और उसके कार्यों पर एक निबन्ध लिखिए।

(२) मस्तिष्क के विकास के लिये आपकी क्या धारणा है? बुनियादी शिक्षा से मस्तिष्क के विकास में सहायता मिलती है या नहीं? अपने उत्तर की सतर्क पुष्टि कीजिये।

शरीर के कुछ महत्त्वपूर्ण अंग

शरीर की बनावट एवं उसकी क्रियाओं का ज्ञान तथा उनका शिक्षा-ग्रहण करने पर प्रभाव आदि जान लेने पर भी शरीर के कुछ ऐसे अंगों की जानकारी आवश्यक है जिनका शिक्षा-ग्रहण करने से सीधा और गहरा सम्बन्ध है। ये अंग हैं:—आँख, कान, नाक, दाँत आदि। यहाँ इन्हीं का विवेचन किया जा रहा है।

आँख

आँख शरीर का महत्त्वपूर्ण अंग तो है ही परन्तु अत्यन्त कोमल अंग भी है। इसकी बनावट एक कैमरे के समान होती है। कैमरे के समान ही इसमें भी सामने के भाग में एक 'लेन्स' होता है। इसी लेन्स से प्राप्त छाया मस्तिष्क को दृष्टि के सामने की वस्तु के रंग-रूप का ज्ञान कराती है। अध्ययन में सरलता की दृष्टि से हम आँख को निम्न विभागों में बाँट सकते हैं:—

आँख
चित्र नं० १०

आँख

- (क) परत
  - (१ क) सफेद परत (स्क्लेरोटिक)
  - (२ क) पुतली भीतर की झिल्ली कोरायड
  - (३ क) चित्रपट (रेटिना)
- (ख) कोष्ठ
  - (१ ख) बाहरी कोष्ठ
  - (२ ख) लेन्स
  - (३ ख) भीतरी कोष्ठ

(क) आँख के परत—आँख में तीन परत होते हैं। सबसे पहला परत सफेद परत कहलाता है। यही आँख के अधिकांश हिस्से को ढके रहता है। इस परत के मध्य में

आँख की गोलाकार खिड़की होती है। यहाँ से ही मस्तिष्क बाहरी दृश्यों का प्रतिबिम्ब प्राप्त करता है। गोलाकार भाग के मध्य में प्रकाश के प्रभाव से सिकुड़ने एवं बढ़ने वाला एक बिन्दु होता है। इसी बिन्दु को पुतली कहते हैं। आँख का सबसे भीतर का परत जिसकी मोटाई एक इंच के अस्सीवें भाग के बराबर होती है चित्रपट का काम करता है। इस चित्रपट का सम्बन्ध बारीक तन्तुओं द्वारा मस्तिष्क से जुड़ा रहता है। यही सम्बन्ध सम्पूर्ण दृश्य को मस्तिष्क तक पहुँचाता है।

(ख) आँख के कोष्ठ—आँख के अन्दर तीन कोष्ठ होते हैं। बाहरी कोष्ठ (१ख), जो लेन्ज और सफेद परत के बीच में होता है। यह जलपूर्ण होता है। भीतरी कोष्ठ (३ ख) जो आँख के भीतरी भाग के अधिकांश हिस्से को घेरे हुए है मुरब्बे की तरह के एक पदार्थ से बना हुआ होता है। उपरोक्त दो कोष्ठों के बीच में ही लेन्ज (२ ख) की स्थिति होती है जो दृश्य का प्रतिबिम्ब अन्दर पहुँचाता है।

(ग) आँख के अन्य भाग—जैसे एक तस्वीर चौखटे में लगी होती है वैसे ही आँख भी चारों ओर से मांसपेशियों के मध्य स्थित रहती है। ये मांसपेशियाँ आँख को विभिन्न ओर झाँकने में सहायता करती हैं। इन्हीं की सहायता से खतरे के समय पलकें आँख को ढककर उसकी रक्षा करती हैं।

आँख और शिक्षा—निरीक्षण शिक्षा सहायक उपकरणों में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रखता है। स्वस्थ नेत्र बिना निरीक्षण सम्भव नहीं। बालक शिक्षा के प्रारम्भिक काल में बारीक अक्षरों में छपी पुस्तकें पढ़ते हैं। वे पढ़ते समय उचित आसन से नहीं बैठते, वे पुस्तकों को स्वास्थ्य की दृष्टि से लाभकारी एवं निश्चित दूरी पर नहीं रखते और पर्याप्त प्रकाश के अभाव में भी पुस्तकें पढ़ते रहते हैं। ये सब गल्तियाँ होती रहती हैं और इतना होने पर भी उनकी सविवरण डाक्टरी जाँच नियमित रूप से नहीं हो पाती। ये सभी कारण आज की शालाओं में बालकों की दृष्टि को खराब कर डालते हैं। आज के शिक्षित समाज में अधिकांशतः आँखों की खराबी का प्रमुख कारण केवल शिक्षा काल की लापरवाही ही है। बालकों की आँखों के प्रति शिक्षक को अत्यधिक सतर्क एवं सावधान रहने की जरूरत है। ज्योंही किसी बालक की आँख में अस्वस्थता के चिह्न दिखाई दें, डाक्टर द्वारा जाँच करवाई जानी चाहिए एवं आवश्यकता हो तो ऐनक की व्यवस्था कराई जानी चाहिए।

नाक

नाक मनुष्य की ज्ञानेन्द्रियों के अन्तर्गत बड़ा महत्वपूर्ण स्थान रखता है। नाक के द्वारा मनुष्य श्वास लेता है। श्वास द्वारा स्वच्छ एवं निर्मल वायु फेफड़ों में उनकी सफलता से काम करने के लिए पहुँचनी जरूरी है। अशुद्ध एवं दुर्गन्धपूर्ण वायु फेफड़ों की क्रिया में बाधा पहुँचाती है। इसी दृष्टि से प्रकृति ने नाक को तीन प्रमुख शक्तियाँ प्रदान की हैं :—

(१) गन्ध को जाँचने की शक्ति—इस शक्ति द्वारा यह पता लगता है कि वातावरण स्वास्थ्यप्रद है अथवा नहीं। दुर्गन्धपूर्ण वातावरण में नाक यह आभास कराता है कि इस स्थान पर रहना खतरे से खाली नहीं है। स्वच्छ एवं सुगन्धपूर्ण वातावरण में यह संकेत देता है कि इस स्थिति में अधिक से अधिक देर तक ठहरना

स्वास्थ्य के लिए अधिक से अधिक लाभकारी है।

(२) वायु को शुद्ध करने की शक्ति—नाक में छोटे छोटे बाल होते हैं। अन्दर आने वाली वायु इसके निकट होकर गुजरती है। अगर वायु में मिट्टी के बारीक कण होते हैं तो वे बालों से रुक जाते हैं और फेफड़े सुरक्षित रहते हैं। इस दृष्टि से नाक के अन्दर के बालों को काटना स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है।

(३) वायु के तापक्रम को सम करने की शक्ति—ठंडी हवा फेफड़ों को हानि पहुँचाती है। जुकाम, निमोनिया आदि इसी कारण होते हैं। प्रकृति ने नाक को ऐसा बनाया है कि वह श्वास के अन्तर्गत प्राप्त विषम तापक्रम की वायु को सम बनाकर भेजे। ऐसा होने से फेफड़े का बीमारियों से बचाव होता रहता है।

नाक और शिक्षा—साधारणतः पाठशाला में बच्चे जुकाम व अन्य फेफड़े की बीमारियों के शिकार बने रहते हैं। शिक्षक को इस विषय में सावधान रहना चाहिए। बालकों में नाक से सांस लेने की आदत डालनी चाहिए। मुँह से सांस लेने से नाक की विशेष शक्तियों से जो फेफड़ों को लाभ पहुँचता है, वह नहीं पहुँच पाता। खुली एवं शुद्ध हवा में घूमना, गहरी सांस लेना, हल्का भोजन करना, हल्के कपड़े पहनना एवं व्यायाम करना आदि स्वास्थ्य के नियमों की जानकारी दी जाकर बालकों को उनके पालन करने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए।

कान

कान शरीर का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। हम इसके द्वारा आवाज सुनते हैं। जैसे पानी में पत्थर डालते ही उसमें लहरें पैदा होती हैं उसी प्रकार आवाज भी वायुमण्डल में एक प्रकार का कम्पन पैदा करती है। कान इसी को सुनने में सहायता करते हैं। कान के परदे से टकराने वाली आवाज का प्रभाव मस्तिष्क तक पहुँचता है जहाँ से यह ज्ञान प्राप्त होता है कि यह आवाज कहाँ पैदा हुई है और उसका क्या उद्देश्य है।

कान की बनावट—अध्ययन में सरलता की दृष्टि से कान की बनावट को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है।

(१) बाहरी भाग—ध्वनि को कान के छिद्र की ओर केन्द्रित करने एवं सुनने में सहायक होने की दृष्टि से मनुष्य के मुख की दोनों बगलों में दो बाहर निकले हुए भाग होते हैं। इनको ही साधारणतः लोग कान कहते हैं। परन्तु ये भाग तो सम्पूर्ण कान का एक बहुत ही कम महत्त्वपूर्ण भाग है। इसी भाग के करीब करीब मध्य में एक छिद्र होता है। यह छिद्र भीतर की तरफ पहुँचता है जहाँ एक कोमल झिल्ली होती है। इस झिल्ली तक का भाग ही कान का बाहरी भाग कहलाता है। इसी भाग से एक मोम की तरह चिपचिपा पदार्थ निकलता रहता है। यह पदार्थ कीटाणुओं को कान में घुसने से रोकता रहता है।

(२) मध्य का भाग—कान के मध्य का भाग कोमल झिल्ली के भीतर की तरफ के भाग से शुरू होता है और भीतरी भाग से जोड़ने वाली अण्डाकार खिड़की तक पहुँचता है। कोमल झिल्ली से ही सम्बद्ध एक हड्डी उपरोक्त खिड़की पर जाकर बन्द जाती है। यह मध्य का भाग एक नली द्वारा गले से भी जुड़ा हुआ होता है।

यह नली इस भाग में आने वाली हवा के दबाव को सम रखने में सहायक होती है।

(३) भीतरी भाग—यह एक पेचीदा बनावट वाला हिस्सा है जो मने कोष्ठों में बंटा हुआ होता है। इस भाग में एक पारदर्शक तरल पदार्थ भरा रहता जहां पर श्रवण-शिरा के विभिन्न भाग आकर मिलते हैं। जब आघात बाहरी भा की झिल्ली से टकराती है तब वही भीतरी भाग से जोड़ने वाली मण्डाकार झिल्ल पर लगी हड्डी तक पहुंचती है। यहीं से भीतरी भाग के कोष्ठ का तरल पदा प्रभावित होता है और मस्तिष्क एवं बुद्धि को ध्वनि का ज्ञान होता है।

बहरापन—बहरापन कई कारणों से हो सकता है जिनमें निम्न कार महत्वपूर्ण हैं :—

(i) कान में पीप आना।

(ii) कान के बाहरी भाग में झिल्ली के सामने मैल इकट्ठा हो जाना।

(iii) स्नान के समय कान में पानी भर जाना।

(iv) कान को गले से जोड़ने वाली नली में घाव व पीप पड़ जाना।

(v) नाक में, कान के मध्य भाग में, कान की बाहरी झिल्ली में, एवं का में गले से आने वाली नली में सूजन आना।

व्यक्तिगत सावधानी की दृष्टि से कान में तिनका कभी नहीं डालना चाहिए। कभी-कभी कान को पिचकारी से साफ करवाना उत्तम है। विशेष बीमारियों की दशा में योग्य चिकित्सक से सहायता ली जानी चाहिए। कान की ८० प्रतिशत बीमारियों की शुरुआत बच्चों में ५ः वर्ष की आयु के पूर्व ही घर के वातावरण की खराबी के कारण हो जाती है। श्रेष्ठ घरेलू वातावरण, स्वास्थ्यवर्धक भोजन एवं पर्याप्त निद्रा और देख-रेख सम्भव होने की दशा में बालक कान की बीमारियों के शिकार होने से बच सकते हैं।

बहरापन और शिक्षा—बहरे बच्चों को शिक्षित करने के लिए विशेष धैर्य की जरूरत है। निम्न बिन्दु उनकी शिक्षा की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं :—

(i) जो बच्चे जन्म से ही बहरे हैं और कभी बोले नहीं हैं उन्हें ओष्ठ संचालन से सिखाया जाना चाहिए। जो बाद में बहरे हुए हैं उनके लिए यह नियम लागू नहीं होता।

(ii) ऐसे बच्चों को संसार से मिलने का पर्याप्त अवसर मिलना चाहिये जिससे उनकी हीनता की भावना दूर हो जाए।

(iii) ऐसे बच्चों को तेरह वर्ष के पश्चात् किसी उद्योग की शिक्षा शुरू कर देनी चाहिए। ऐसे बच्चे बढ़ईगिरी, सुनारी काम, भोजन बनाना, कपड़े सीना व मोची का काम आदि सफलता से कर सकते हैं। जीवन में वे उद्योग जिनमें अधिक वार्तालाप की जरूरत पड़ती है, ऐसे व्यक्तियों के लिए उपयुक्त नहीं रहते।

(iv) ऐसे व्यक्तियों पर उद्योग-शिक्षण के पश्चात् भी उपयुक्त देख-रेख रखी जानी चाहिए।

भारत में यद्यपि उपरोक्त दृष्टि से काम अभी तक पर्याप्त रूप से विकसित नहीं हुआ है फिर भी वह दिन दूर नहीं जबकि उपरोक्त प्रकार के बालकों की हर प्रकार की सुविधाएं मिलनी आरम्भ हो जायेंगी।

दांत

मानव शरीर को प्राप्त होने वाला भोजन सर्वप्रथम दांतों द्वारा चबाया जाता है। एक मनुष्य के प्रत्येक जबड़े में सोलह दांत होते हैं। विभिन्न दांत विभिन्न कार्य करते हैं। जबड़े के मध्य के चार दांत केवल काटने, चीरने-फाड़ने वाले इन दोनों दांतों के दोनों ओर काम करते हैं। इनके दोनों ओर का एक एक दांत केवल चीरने-फाड़ने का काम करता है। दो-दो दांत अर्थात् कुल चार दांत छोटे पीसने वाले दांतों के अन्तर्गत आते हैं। जबड़े के दोनों ओर पीछे के भाग में स्थित शेष छः दांत जो जड़ों में चार भागों में विभक्त होते हैं पीसने वाले बड़े दांत (दाढ़) कहलाते हैं। छोटे बच्चों के प्रत्येक जबड़े में सोलह-सोलह की बजाय केवल दस-दस दांत ही होते हैं।

चित्र नं० ११

दांत की बनावट—बनावट के अनुसार दांत के तीन भाग होते हैं :—

(१) ऊपरी चमकीला भाग—इस भाग में एक अत्यन्त कठोर, चिकना एवं चमकीला पदार्थ होता है। यह चमकीला परत मसूड़े के अन्दर तक पहुंचती है।

(२) दन्त-रचना (डेन्टिन्)—ऊपरी चमकीली परत के ठीक नीचे स्थित यह कठोर भाग अधिकांशतः चूने का बना हुआ होता है। इस भाग का रंग हल्का पीला होता है।

(३) मज्जा-छिद्र (पल्प केविटी)—दन्त रचना के भीतरी भाग में एक छिद्र होता है। इस छिद्र में मसूड़ों से आये हुए अनेक तन्तु पहुंचते हैं जो दांतों का सम्बन्ध मसूड़े एवं जबड़े से मिलाये रहते हैं।

दांतों की रक्षा—आजकल लोगों को बड़ी संख्या में दांत की बीमारियों का शिकार देखा जाता है। दांतों की सुरक्षा की दृष्टि से यह जरूरी है कि दांत रोजाना प्रातः और सायं दो बार साफ किए जाएं। शाम को दांत की सफाई के पश्चात् कुछ भी नहीं खाना चाहिए। अपने देश में दन्त मंजन को उंगली से दांत पर मलकर दांत साफ करने का रिवाज है। अब बहुत लोग ब्रुश से दांत साफ किया करते हैं। इस तरीके में अनेकों लाभ के साथ हानियां भी हैं। ब्रुश से मंजन करने में दांतों के बीच में स्थित मसूड़ों का हिस्सा व ऊपरी मसूड़े भी कमजोर पड़ जाते हैं। मसूड़ों पर मालिश तो इस दशा में कदापि नहीं हो सकती। इस दृष्टि से उंगली पर मंजन लगाकर दांत मांजना बड़ा लाभकारी रहता है। इसके अतिरिक्त कुछ और भी

सावधानियाँ बरती जा सकती हैं जैसे—

(i) भोजन के साथ कुछ ऐसे कठोर खाद्य पदार्थों का उपयोग करना जिनके चबाने से जबड़ों को अधिक मेहनत हो ऐसा होने से दाँतों की जड़ों में अतिरिक्त रक्त प्राप्त होता है और उनकी शक्ति बढती है।

(ii) गर्म दूध नही पीना चाहिए। इस दृष्टि से कच्चा दूध बड़ा लाभकारी होता है।

(iii) शकर दाँतो को हानि पहुँचाती है अतः इसका प्रयोग कम होना चाहिए।

(iv) व्यक्ति का साधारण स्वास्थ्य भी दाँतों को प्रभावित करता है। अगर पर्याप्त आराम और व्यायाम किया जाए, शुद्ध हवा में रहा जाए और नाक द्वारा गहरी साँस लेने की आदत डाली जाए तो दाँत स्वस्थ रहते हैं।

दाँतों की रक्षा और पाठशाला—पाठशाला में बालकों के स्वास्थ्य की जाँच के अवसर पर दाँतों की ओर भी पूरा ध्यान दिया जाना जरूरी है। शाला में बालकों को सुरक्षात्मक दृष्टि से उन सब कारणों के प्रति जागरूक किया जाना चाहिए जो दाँतो के स्वास्थ्य पर प्रभाव डालते हैं। बालक ही क्या परन्तु माता-पिता एवं अभिभावकों को भी इस बाबत सचेत किया जाना चाहिए कि वे अपने बालकों को दाँतों की बीमारियों से किस प्रकार बचा सकते हैं।

सारांश

आँख—शरीर का महत्वपूर्ण और कोमल अंग है। बनावट कैमरे के 'लेंज' के समान है। इसकी बनावट के ये भाग हैं:—(क) आँख के परत :—तीन परत होते हैं। (ख) आँख के कोष्ठ :—ये भी तीन होते है। (ग) आँख के अन्य भाग :—मांसपेशियां आँख को इधर-उधर घूमने में मदद देती हैं।

आँख और शिक्षा—स्वस्थ नेत्र बिना निरीक्षण द्वारा ज्ञान प्राप्ति सम्भव नहीं। अधिक समय तक लगातार पढ़ने, अत्यन्त तेज रोशनी या मन्द रोशनी में पढ़ने से भी आँखें खराब हो जाती है। अतः बालकों को ऐसा करने से बचाना चाहिए।

नाक—इस महत्वपूर्ण ज्ञानेन्द्रिय द्वारा श्वास, प्रश्वास, गंध ज्ञान तथा शरीर का मैला बाहर निकालने का कार्य होता है। यह वायु को शुद्ध करता है। वायु के तापक्रम को सम रखता है।

नाक और शिक्षा—गंदी हवा नहीं जाने देना चाहिए। जुकाम, खाँसी आदि से बचना चाहिए। नाक से साँस लेने की आदत डालनी चाहिए।

कान—कान के द्वारा दूसरे की सुनी हुई वाणी का ज्ञान मनुष्य के मस्तिष्क को होता है।

कान की बनावट—(१) बाहरी भाग:—बाहरी दिखाई देने वाला भाग बाहरी भाग कहलाता है। (२) मध्य का भाग :—यह एक झिल्लीदार भाग होता है। (३) भीतरी भाग:—यहाँ से ध्वनि का मस्तिष्क को ज्ञान होता है। यह भाग कोष्टों का बना हुआ है।

बहरापन—कान में पीप आने, मैल भर जाने, पानी भर जाने, घाव हो जाने, सूजन आ जाने से बहरापन हो जाता है।

बहरापन और शिक्षा—बहरों को ओठ-स्फुरण से शिक्षा दी जाती है। ऊँचा सुनने वाले छात्र को अध्यापक के पास बिठाना चाहिए। उद्योग शिक्षण द्वारा उनको ज्ञान कराया जाना लाभदायक होगा।

दांत—भोजन मुँह में रखते ही दांतों से चबाया जाता है। मनुष्य के प्रत्येक जबड़े में सोलह दांत होते हैं।

दांत की बनावट—(१) ऊपरी चमकीला भागः—कठोर, चिकना, चमकीला होता है। (२) दन्त रचनाः—चूने का बना हुआ कठोर भाग होता है। (३) मज्जा-छिद्र.—मसूड़ों से आये हुए ज्ञान तन्तु पहुँचते हैं।

दांतों की रक्षा—रोजाना प्रातः और सायं साफ करने चाहियें।

दांतों की रक्षा और पाठशाला—डाक्टरी निरीक्षण के समय दांतों की अच्छी जांच कराना आवश्यक है। रोग की चिकित्सा शीघ्र करानी चाहिए।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(१) शरीर की ज्ञानेन्द्रियों का शिक्षा से क्या सम्बन्ध है? उनके द्वारा शिक्षा किस प्रकार प्राप्त की जाती है? सविस्तार लिखिये।

(२) कान और शिक्षा ग्रहण करने के सम्बन्ध को स्पष्ट करते हुए बताइये कि बहरे व्यक्तियों की शिक्षा का प्रबन्ध किस प्रकार किया जा सकता है?

—:०:—

: ४२ :

बैठने की व्यवस्था एवं आसन

प्रस्तावना—बालक शाला में अध्ययन के लिए आकर दैनिक जीवन के कम से कम छः घण्टे वहां गुजारते हैं। इस समय में वे कक्षा में बैठते हैं, कलम पकड़कर लिखते हैं, खड़े रहते हैं और दौड़ते-भागते भी हैं। शरीर की एवं शरीर के अगों की प्रत्येक अवसर पर एक विशेष प्रकार की आकृति बनती है। एक बालक के शरीर की या शरीर के किसी अंग की किसी विशेष समय पर जो आकृति बन जाती है वह दूसरे से अधिकांशतः भिन्न होती है। परन्तु वास्तव में ऐसा होना नहीं चाहिए। स्वास्थ्य के नियमों के अनुसार अगर बालकों को उपरोक्त विषय में प्रशिक्षण दिया जाए तो निश्चित ही प्रत्येक शारीरिक स्थिति में उनकी आकृति समान ही रहेगी और सामयिक शिक्षण के अभाव में बालकों में जो अलग-अलग एवं अधिकांशतः गलत तरीके से, कलम पकड़ने, लिखने, पढ़ने, बैठने, खड़े रहने, चलने व दौड़ने की आदत बन जाती है यह नहीं बनने पाएगी। यही आदत कालान्तर में व्यक्ति के शरीर को कुडौल बना देती है। उनकी रीढ़ की हड्डी दाएँ बाएँ व सामने झुक जाती है और वे झुक कर चलते हैं अथवा झुक कर बैठते हैं। उन्हें अपने शरीर को स्वास्थ्य की हानिकारक स्थिति में रखने की आदत बन जाती है जो आगे जाकर बड़ी-बड़ी दृष्टि से बीमारियां कर देती हैं।

कुछ महत्वपूर्ण आसन (Posture)—पाठशाला समय में बालक की जिन प्रमुख स्थितियों में अपने शरीर को व्यवस्थित करने की जरूरत पड़ती है वे निम्नलिखित हैं :—

(क) अध्यापक के पढ़ाते समय बैठने की स्थिति।

(ख) पुस्तक पढ़ने के समय बैठने की स्थिति।

(ग) लिखते समय बैठने की स्थिति—(i) शरीर की स्थिति व (ii) कलम पकड़ने का सही तरीका।

(घ) खड़े रहने की स्थिति।

(ङ) चलने की स्थिति।

इन्हीं प्रमुख स्थितियों के अन्तर्गत हम बालकों के आसनों के विषयों में अध्ययन करेंगे।

(क) अध्यापक के पढ़ाने के समय बैठने की स्थिति—जिस समय शिक्षक कक्षा में पढ़ा रहे होते हैं साधारणतः छात्र को अपने स्थान पर बैठ कर पाठ्य-पुस्तक

का शिक्षक की ओर निगाह रखनी पड़ती है। इस अवसर पर छात्र को इस प्रकार बैठना चाहिए कि मांसपेशियों को कम से कम शक्ति व्यय करनी पड़े। इस दृष्टि से कुर्सी, जमीन या पर बैठ कर बालक को अपने रीढ़ स्तम्भ को जमीन से या कुर्सी की बैठक से लम्ब बनाते हुए स्थित रखना चाहिए। मस्तक की स्थिति ऐसी रखनी चाहिए कि गर्दन के सामने व पीछे की मांसपेशियों पर बराबर दबाव रहते हुए गर्दन को आराम मिले। हाथों को जमीन पर बैठने की दशा में जांघ पर व मेज के सहारे बैठने की दशा में मेज पर सहारा देना चाहिए। कुर्सी पर बैठने की दशा में भी पांव जमीन पर टिके होने चाहिएँ। बालक उपरोक्त प्रकार से बैठ सके इसके लिए यह जरूरी है कि मेज डैस्क की ऊँचाई बालक की शारीरिक आवश्यकता के अनुकूल हो। पास के चित्र में भी यही स्पष्ट किया गया है कि अनुकूल कुर्सी व डैस्क उपलब्ध होने पर बालक कैसे आनन्दमय एवं स्वास्थ्यप्रद आसन से बैठा हुआ कार्य में लीन हो रहा है।

पढ़ने के समय बैठने की स्थिति
चित्र नं १२

(ख) पुस्तक पढ़ने के समय बैठने की स्थिति—बालक के बैठने की सही स्थिति के विषय में उपरोक्त अंश में वर्णन किया जा चुका है। बालकों द्वारा पुस्तक पढ़ने के विषय में कुछ बिन्दु विशेष प्रकार से विचारणीय हैं। विद्वानों का यह मत है कि करीब पचास प्रतिशत छात्रों की दृष्टि (आंखें) शिक्षा-काल में ही असावधानी के कारण खराब हो जाती है। वे छोटी उम्र में अधिक समय तक पुस्तकें पढ़ते हैं, वे ऐसी पुस्तक पढ़ते हैं जिनके अक्षरों का आकार छोटा होता है, एवं गलत स्थिति में पुस्तक को रखकर पढ़ते हैं और इस प्रकार कच्ची दृष्टि पर अधिक दबाव डाल कर एवं उसका दुरुपयोग करके उसे हमेशा के लिए खराब कर लेते हैं। छोटे बच्चों को मोटे टाइप वाली पुस्तकें पढ़ने को दी जानी चाहिएँ। उन पुस्तकों के पढ़ने में भी उन्हें अधिक समय न लगाने दिया जाना चाहिए। पुस्तक आंख से कम से कम १२ इंच की दूरी पर रखनी चाहिए और साधारण अध्ययन के समय पुस्तक का धरातल बालक की आंख से ४५° का कोण बनाती हुई रहना चाहिए।

(ग) लिखते समय बैठने की स्थिति—लिखते समय बैठने के तरीके में दो बातें विचारणीय हैं। प्रथम तो यह कि बैठने का श्रेष्ठ तरीका क्या है और दूसरा यह कि कलम किस विधि से हाथ में पकड़ी जाए? उपरोक्त दोनों ही बिन्दु विचारणीय हैं। जहाँ तक बैठने के तरीके का सम्बन्ध है उपयुक्त ऊँचाई की डैस्क के अभाव और बैठने के तरीके में सही पथप्रदर्शन की कमी के कारण बालक अपना रीढ़-स्तम्भ अक्सर बाईं ओर झुका कर लिखने को बैठा करते हैं। इस प्रकार बैठते-बैठते उनका रीढ़ स्तम्भ वक्राकार होते हुए बाईं ओर झुक जाता

दृष्टि के सामने रहता ही है परन्तु पूर्व लिखा गया सम्पूर्ण साहित्य भी निगाह के सामने रहता है और लिखने वाला हाथ उसे ढकता नहीं है।

कलम हाथ में इस प्रकार पकड़नी चाहिए कि कलम की नोक को उंगलियाँ ढक न सकें। दाएँ हाथ की कनिष्ठा (सबसे छोटी उंगली) एवं अन्त. प्रकोष्ठास्थि (बाँह की भीतरी अस्थि) पर सहारा मिले और कलम अंगूठे और उसकी निकटतम दो उंगलियों द्वारा पकड़ी जाए। इस प्रकार की स्थिति में अग्रबाहु की दोनों हड्डियाँ करीब-करीब एक दूसरे के ऊपर आ जाती हैं। यह इस चित्र से भी स्पष्ट किया गया है।

(घ) खड़े रहने की स्थिति—सही तरीके से खड़े रहने की दृष्टि से यह जरूरी है कि मेरु-दण्ड सीधा रहते हुए सारे शरीर का भार दोनों टांगों पर बराबर पड़े। सीना आगे की ओर निकला हुआ रहे। मस्तक पीछे की ओर खिंचा हुआ रहे। पेट अन्दर की ओर खिंचा रहे तथा पुट्ठे बाहर की तरफ निकले रहें। एड़ियाँ मिली हुई रहते हुए पंजे आपस में ४५° का कोण बनाते हुए हों।

खड़े रहने का उपरोक्त तरीका श्रेष्ठ होते हुए भी अधिक देर तक इस प्रकार खड़ा रहना कठिन होता है। इसी कारण अक्सर लोग एक पाँव को बगल की ओर फैला कर उसे आराम देते हैं और दूसरे पर शरीर का सारा भार डालते रहते हैं। इस प्रकार कभी एक पर अधिक भार डालते हैं और कभी दूसरे पर। यह पद्धति स्वास्थ्य के लिए अहितकर है। ऐसे अवसरों पर अच्छा यह है कि किसी एक पाँव को सामने की तरफ बढ़ा दिया जाए जिससे दूसरे पर अधिक भार आ जाए और पहले को आराम मिल जाए। इसी स्थिति को लगातार बदलते रह कर शरीर को स्वास्थ्य के लिए हितकर स्थिति में रखा जा सकता है।

चलने की स्थिति—चलते समय भी शरीर की आकृति के विषय में स्वास्थ्य की दृष्टि से ध्यान देना जरूरी होता है। मेरु-दण्ड सीधा रहना चाहिए। मस्तक ऊँचा रहते हुए सीना सामने की ओर निकला रहना चाहिए। दोनों हाथ स्वाभाविक रूप में आगे व पीछे हिलते रहने चाहिएँ। पाँवों को आगे बढ़ाते समय यह ध्यान रखने की जरूरत है कि पाँव आपस में समान्तर रहें। पाँव अगर अन्दर की ओर या बगल की ओर घूम जाते हैं तो वे स्वास्थ्य को हानि तो पहुँचाते ही हैं परन्तु आराम से उठाकर चलने में कठिनाई भी पैदा करते हैं।

उपसंहार—छोटे बच्चों की शारीरिक स्थिति के विषय में [illegible] जानने की जरूरत है जब वे समय के साथ किसी काम में शामिल हों [illegible] विशेष किसी उद्योग, क्रीड़ा एवं खेल में अधिकांश समय लगे रहते हैं और यहाँ उन्हें पूर्ण स्वतन्त्रता मिलनी ही चाहिए। ऐसी शालाएँ जहाँ पर बालक और बालिकाएँ साथ-साथ पढ़ते हैं वहाँ पर शिक्षक को बालिकाओं के प्रति अधिक [illegible] रखने की जरूरत है क्योंकि उनका शरीर गलत शारीरिक स्थिति से पैदा होने वाले [illegible] को बालकों के मुकाबले में शीघ्र ग्रहण करता है।

सारांश

प्रस्तावना—बालक के शरीर में अनेक परिवर्तन गलत आसन से स्थिर होते जाते हैं। शिक्षक की यह भी जिम्मेदारी है कि वह इन कारण तत्त्वों का प्रब-न्ध करे।

कुछ महत्त्वपूर्ण आसन—शाला-काल में बालक साधारणतः निम्नलिखित आसनों में स्थित होते हैं :—

(क) अध्यापक के पढ़ाने के समय बैठने की स्थिति।

(ख) पुस्तक पढ़ते समय बैठने की स्थिति।

(ग) लिखते समय बैठने की स्थिति।

(घ) खड़े रहने की स्थिति।

(ङ) चलने की स्थिति।

(क) अध्यापक के पढ़ाने के समय बैठने की स्थिति—इस अवसर पर बालक का रीढ़-स्तम्भ जमीन से लम्ब बनाता रहे, गर्दन की मांसपेशियों पर मस्तक का बराबर दबाव पड़ता रहे, हाथों को जांघ या मेज पर सहारा मिलता रहे और जमीन पर टिके रहने चाहिए।

(ख) पुस्तक पढ़ने के समय बैठने की स्थिति—बैठने की स्थिति उपर्युक्त प्रकार से रहते हुए आंख से पुस्तक की दूरी करीब १२ इंच रहकर, पुस्तक धरातल बालक की आंख से ४५° का कोण बनाता रहना चाहिए।

(ग) लिखते समय बैठने की स्थिति—रीढ़-स्तम्भ बाएं, दाएं या आगे न झुककर सीधा रहे। कुर्सी करीब २ इंच मेज के नीचे की ओर घुसी हुई जिससे मेज की ऊपरी सतह निगाह के ठीक सामने आ जावे। बाएं हाथ को कॉपी पर सहारा देते हुए कलम अंगूठा और उसके पास की दो उंगलियों के बीच पकड़ी जाए।

हवा और व्यजन

हवा की आवश्यकता—यों तो कहा जाता है कि गर्भ मे भी बालक को माता श्वास का अंश मिलता है और इसीलिए उसमे प्राण संचरित होते है। पर गर्भ शिशु के बाहर निकलते ही वह स्वयं श्वास-प्रश्वास-क्रिया प्रारम्भ कर देता है और क्रिया जीवन भर चलती रहती है। जिस समय यह क्रिया रुक जाती है, उसी से प्राणी को मृत मान लिया जाता है। तो यो कहना चाहिए कि वायु ही तथा जीवन है। मानव शरीर का आधार पचभूत—पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश— मे से वायु का महत्त्व भी कम नही है। अतः स्पष्ट है कि इस ससार मे भी प्राणी ही नही अपितु वनस्पति तक के जीवित रहने के लिए सर्वप्रथम वायु की आवश्यकता है। हवा शरीर मे प्रमुखतः रक्त की सफाई करती है और श्वास-प्रश्वास द्वारा जीवन-सचालन करती है।

हवा के अवयव (Properties of Air)—जीवन के लिये इतनी महत्त्वपूर्ण वायु का वैज्ञानिको ने पता लगाने का प्रयत्न किया कि आखिर यह है क्या वस्तु ? यह हवा पृथ्वी के चारों ओर २०० मील तक विद्यमान है जिसे वायुमंडल कहते हैं। पंचभूत के मानने वाले प्राचीन लोग वायु को अविभाज्य मानते थे। पर वैज्ञानिकों ने यह सिद्ध कर लिया है कि वायु कई पदार्थों का मिश्रण है, जिन्हे गैस कहते हैं। यह मुख्यतया नेत्रजन (नाइट्रोजन) और ओषजन (आक्सीजन) गैसो का मिश्रण है। कार्बन-द्विओषिद (कार्बन-डाइ-आक्साइड) भी प्राय. सभी स्थानो मे पाई जाती है। हवा में अन्य कई मिश्रण भी पाए जाते है जो स्थानानुकूल होते हैं। जैसे मिल के पास वाली हवा मे धुआँ, रुई के परमाणु आदि। समुद्री हवा मे ओजोन होता है। वायु का भार अन्य पदार्थो की भाँति तोला जा सकता है।

हवा का संगठन (Composition of Air)—हवा का संगठन कभी निश्चित नहीं रहता। यद्यपि गैसें निश्चित परिमाण में मिलकर ही वायु का रूप धारण करती हैं, तथापि उनका संगठन परिवर्तित होता रहता है। साफ हवा का औसतन आयतन संगठन इस प्रकार होता है :—

नेत्रजन (नाइट्रोजन)	७६·०२ प्रतिशत
ओषजन (आक्सीजन)	२०·६४ "
कार्बन-द्विओषिद (कार्बन-डाई-आक्साइड)	·०४ "
वायु	१००·००

अशुद्ध हवा मे यह मात्रा न्यूनाधिक हो जाती है। हवा को तरल और ठोस बनाया जा सकता है।

नेत्रजन (नाइट्रोजन)—यह निष्क्रिय गैस है। रगहीन गंधहीन, स्वाद-

रहित है; न जलती है और न जलाने में सहायक होती है। यह वायुमंडल में ⅘ भाग से भी अधिक विद्यमान है। यह श्वास द्वारा जितनी शरीर में जाती है उतनी ही बाहर निकलती है, शरीर के कोई खास काम नहीं आती। केवल इसी गैस में मनुष्य जीवित नहीं रह सकता है। यदि किसी प्राणी को इस हवा में रखा जाएगा तो मर जाएगा। पर यदि उसकी अन्तिम श्वास के समय भी ओषजन पहुँचा दिया जाए तो जीवित हो जाएगा। यह गैस ओषजन के प्रभाव को हल्का रखने के काम आती है।

ओषजन (आक्सीजन)—यह गैस वायुमण्डल में ⅕ भाग विद्यमान है, यह अत्यन्त आवश्यक भाग है। इसके बिना जीवन असम्भव है। इसके बिना आग नहीं जल सकती। यह भी रंगहीन, गंधहीन, स्वाद-रहित है। परीक्षा-नलिका (Test tube) में इसे भरकर जलती हुई दियासलाई पहुँचाई जाए तो एकदम भभक उठेगी। बुझती हुई को पहुँचाई जाए तो जल जाएगी। यही प्राणी को जीवित रखती है। इतनी महत्वशाली होते हुए भी इसे शुद्ध रूप में नहीं ले सकते।

कार्बन-डिओक्सिड (कार्बन-डाई-आक्साइड)—

(i) वायु के सौ भाग में से ००·०४ भाग पाई जाती है। रंगहीन है पर हल्की गंधयुक्त है। इसमें भी जलाने की शक्ति नहीं होती। पौधों का खाद्य-पदार्थ यही गैस है। उनका हरा रंग ही कार्बन है। पौधे हवा में से कार्बन भोजन के रूप में रख लेते हैं और ओषजन हवा को देते हैं। प्रति १०००० (दस हजार) भाग हवा में से कार्बन-डिओक्सिड निम्नलिखित परिमाण में पाई जाती है :—

धुएँ में	७० भाग पाई जाती है।
थियेटर तथा सिनेमाघरों में	४२ से ७२ " " "
कारखानों में	३२ से ४३ " " "
शराब उत्पादन-शाला में	५०० " " "

(ii) इसका प्रभाव भिन्न प्रकार से होता :—

यदि यह हवा में २ प्रतिशत विद्यमान है	तो श्वास तेज हो जाता है।
" " ५ " " "	हाँफना आ जाता है।
" " ७ से ८ " " "	श्वास लेना कठिन होता है तथा सिर दर्द, जी मचलना, सुस्ती लगना आदि।
" " २० " " "	बेहोशी हो जाती है।
" " २५ " " "	मृत्यु हो जाती है।

(iii) कार्बन-डिओक्सिड के उत्पन्न होने के साधन :—

(१) श्वास द्वारा, (२) गैस, मोमबत्ती, लकड़ी, कोयले आदि के, (३) पशु, पक्षी, जन्तुओं, मृत शरीर आदि के सड़ने से, (४) कई भट्ठी, भट्ठों आदि से।

हवा की अशुद्धियां (Impurities of Air)—हवा की अशुद्धि दो प्रकार की होती है :—

(१) मावस्य अर्थात् लटकी हुई (Suspended)।

(२) रंदोल—धुआँ गैसें आदि।

(१) प्रात्रस्त अर्थात् भटकी हुई गन्दगी—मकान की छत या दीवार के किसी छिद्र से प्रकाश की एक किरण जब घर मे आती है तो उसमे कण दिखाई देते हैं। पर कई कण इनसे भी छोटे होते हैं जो दिखाई नही देते। ये कण दो प्रकार के होते हैं :—

(अ) जान्तविक (Organic particles)
(आ) अजान्तविक (Inorganic particles)

(अ) जान्तविक गन्दगी—यह प्राणियों और पौधो से उत्पन्न होती है। मरे हुए अथवा जीवित कीड़ों के अंश, बीमारी के कीटाणु, पौधो के छोटे-छोटे बीज, खाल के टुकड़े, बाल, ऊन के महीन टुकड़े, रुई, रेशम, लकडी आदि का बुरादा। इनसे बीमारियाँ शीघ्र फैलती हैं—जैसे चेचक के रोगी की खाल के सूखे टुकडे उड़कर इस गन्दगी को काफी दूर ले जाते हैं। हैजे के कीटाणु हैजे की बीमारी को फैलाते हैं। तपेदिक के रोगी के बलगम के सूखे कण इस बीमारी को काफी दूर ले जा सकते हैं। कुछ पौधो के बीज हवा मे रहकर रोग उत्पन्न करते है जैसे फंजाई (funji) के बीज चर्म रोग पैदा करते हैं।

(आ) अजान्तविक गन्दगी—धूल, कोयले के टुकडे, बालू, नमक, मिट्टी आदि हवा में मिलकर उसे गन्दी बना देते हैं। यह गन्दगी हवा मे यदि बहुत कम मात्रा मे है तो अधिक नुकसान नही करती पर अधिक मात्रा मे होने पर आँखो मे, श्वास की नली मे जलन पैदा कर देती है। हवा मे उड़-उड़ कर यह गन्दगी घरो की दीवारो फर्श और कमरे के सामान पर जम जाती है।

(२) गैसीय—गन्दी गैसें उत्पन्न होकर भी हवा को दूषित कर डालती हैं। ये गैसें इस प्रकार पैदा होती हैं :—

(१) प्रश्वास क्रिया से—मनुष्य और पशुओ के प्रश्वास लेकर उसे वापस निकालने से।
(२) आग के जलने से।
(३) जल की भाप से।
(४) जान्तविक पदार्थों के सड़ने से।
(५) अन्य गैसें :—(अ) कार्बन मोनो-आक्साइड कोयले के पूरे न जलने से,
(आ) कारखानों की गैसें,
(इ) एमोनियम गैस—सड़ांद के कारण।

(१) प्रश्वासन क्रिया से उत्पन्न गन्दगी—प्राणी श्वास लेता है और प्रश्वास के रूप में बाहर निकालता है। मनुष्य के श्वास और प्रश्वास क्रिया का अनुपात निम्नलिखित रूप मे होता है :—

	श्वास वायु	प्रश्वास वायु
नेत्रजन	७९·०२	७९·१९
ओषजन	२०·९४	१६·४०
कार्बन-द्विओषिद्	·०४	४·४१
	१००·००	१००·००

अर्थात् वायु के प्रत्येक १०० भाग में ४·९६ भाग आक्सीजन भीतर रहती है और ४·३७ भाग कार्बन डाइ-आक्साइड बाहर निकलती है। जो आक्सीजन भीतर रहती है उसे फेफड़ों में आया हुआ अशुद्ध नीला रक्त ले लेता है और पुनः लाल बन जाता है। एक साधारण व्यक्ति एक घन्टे में ½ घन फुट कार्बन डिऑक्साइड बाहर निकालता है।

अशुद्ध हवा का प्रभाव :—

(१) मलेरिया शब्द का अर्थ ही दूषित वायु है। वास्तविक कारण ज्ञात न होने तक दूषित वायु ही कारण माना जाता रहा है।

(२) गैसों के कारण—सिर दर्द, चक्कर आना, मूर्छा, वमन, अतिसार आदि हो जाते हैं

(३) छोटे बन्द कमरों में श्वास के आदान-प्रदान के कारण चर्म रोग, निन्द कम आना, भूख कम लगना, अजीर्ण, उदासी, शरीर का पीला पड़ना, धीरे राजयक्ष्मा, निमोनिया, खाँसी, चेचक आदि उत्पन्न हो जाते हैं।

(४) धूल, मिट्टी आदि से आंख दुखना, चर्म-रोग, शरीर का पीला प आदि हो जाता है।

वायुमण्डल की शुद्धि—दो प्रकार से होती है :—

(१) प्राकृतिक शुद्धि। (२) कृत्रिम शुद्धि।

(१) प्राकृतिक शुद्धि—

(अ) विसर्जन—गैसें फैलती हैं जिससे हवा का संगठन सम हो जाता है

(आ) ओषजन द्वारा—यह बहुत से रोगों के कीटाणुओं को नष्ट कर दे है। इससे भी वायुमण्डल शुद्ध होता है।

(इ) तीव्र वायु या आंधी—तीव्र वायु चलकर गन्दी गैसों को उड़ा ले जा है। सड़ने वाले पदार्थ भी उड़कर दूर चले जाते हैं।

(ई) वर्षा—हवा में विद्यमान गन्दे परमाणुओं को वर्षा की बूंदें अपने सा जमीन पर पटक कर वायुमण्डल शुद्ध कर देती हैं।

(उ) पौधे व वृक्ष—वृक्ष कार्बन डाइ-आक्साइड लेकर ओषजन प्रदान क हवा को शुद्ध रखते हैं। यह क्रिया केवल सूर्य के प्रकाश में ही होती है।

(ऊ) सूर्य का प्रकाश—प्राकृतिक सूर्य की गर्मी, तेज व प्रकाश हवा विद्यमान रोग के कीटाणुओं को मारकर हवा को शुद्ध रखता है।

(२) कृत्रिम शुद्धि—प्राकृतिक प्रणालियों के विद्यमान होने पर भी कृत्रिम प्रणालियों की आवश्यकता होती है। घरों में, स्कूलों में, अस्पतालों में, आफिसों में मनुष्यों के श्वास-प्रश्वास करते रहने से वायु शीघ्र गन्दी हो जाती है। अतः अशुद्ध वायु को निकालना और शुद्ध वायु को भीतर लेना अत्यन्त आवश्यक हो जाता है। इसके साधन को व्यजन, वायुदान, हवादान या हवा द्वार कहते हैं। मकानों में व्यजन द्वारा हवा के आयात-निर्यात का पूर्ण प्रबन्ध होना आवश्यक है। वायु के आयात-निर्यात के साधन निम्नलिखित हो सकते हैं :—

(अ) आयात साधन:—

(१) खिड़कियाँ—फर्श तल से ४ से ६ फुट की ऊँचाई पर कमरे की आमने-सामने की दीवारों पर होनी चाहिएँ।

(२) प्रवेश पंखे—हवा को भीतर खींचने वाले पंखे होते हैं।

(३) एयर कन्डीशन तरीका—मशीन द्वारा बलपूर्वक सीटों के नीचे छिद्रों से हवा को धकेला जाता है।

(४) वायु प्रवेशन की पद्धति—फर्श पर एक ओर से आयात पंखे द्वारा वायु प्रवेश कराई जाती है और दूसरी ओर निकास पंखे द्वारा बाहर फेंकी जाती है।

वायु प्रवेशन की पद्धति

चित्र नं० १४

(ब) निकास साधन :—

(१) छत के पास हवादान—गन्दी हवा हल्की होकर ऊपर उठती है अतः छत के पास हवादान होने चाहिएँ जिससे वह बाहर निकल जाए।

(२) अंगीठी व चिमनी—चिमनी के ऊपर होकर बहने वाली हवा चिमनी की हवा को भी खींचती जाती है।

निकास साधन

चित्र नं० १६

(३) भाप के फव्वारे (Steam Jets)—कमरों में भाप के फव्वारे छोड़ने से भी हवा में गति उत्पन्न होकर गन्दी हवा बाहर निकल जाती है।

(४) निकास पंखा—सिनेमा घर, थियेटर आदि में हवा को बाहर फेंकने वाले पंखे होते हैं।

व्यजन ■ प्रबन्ध :—

(१) शुद्ध वायु का प्रवेश व निकास न केवल घर निर्माण पर निर्भर है वरन् नगर निर्माण पर भी निर्भर है।

(२) हवा द्वार ऐसे होने चाहिएँ कि ताजा हवा का आवागमन और गन्दी हवा का निर्गम स्वतः होता रहे।

(३) कमरे में प्रवेश करने वाली ताजा हवा होनी चाहिए और शुद्ध स्थान से आनी चाहिए।

(४) प्रवेश द्वार फर्श के निकट होना चाहिए। फर्श से ४ से ६ फीट की ऊँचाई पर होना आवश्यक है।

(५) निकास द्वार छत के पास होना चाहिए।

(६) भवन का निर्माण ही ऐसा होना चाहिए जहाँ खुली हवा हो।

बुनियादी शाला और वायु व्यवस्था—वैसे तो बुनियादी शिक्षा प्रकृति के अधिक निकट है। उसमें कृषि, बागवानी आदि उद्योग; वन भ्रमण आदि आयोजन बालक को स्वतः ताजी और शुद्ध हवा में रखते हैं। तथापि शाला में बालकों को अधिकाधिक शुद्ध हवा प्राप्त होती रहे ऐसा प्रयास अध्यापक को करते रहना चाहिए। बुनियादी शाला भवन का निर्माण ऐसे स्थान पर होना चाहिए जहाँ स्वतः जंगल की शुद्ध ताजी हवा आती रहे। इसके लिये शाला भवन गाँव से पश्चिम या दक्षिण की ओर गाँव से कुछ दूर हो तो शुद्ध वायु मिलती रहेगी। खिड़कियाँ व दरवाजे आमने-सामने होने चाहिएँ। कमरे की खिड़कियाँ खुली रहनी चाहिएँ। यहाँ तक कि बहुत तेज ठंडी हवा न चल रही हो तो, सर्दी में भी खिड़कियाँ खुली रहनी चाहिए। शाला का कार्यक्रम भी ऐसा होना चाहिए कि प्रातःकाल बालकों को ताजा हवा अधिक मिले। इसके लिए खुले मैदान में उनसे व्यायाम, प्रातः भ्रमण, उद्योग कार्य आदि कराए जाने चाहिएँ। शाला भवन के चारों ओर हरियाली तथा पेड़-पौधे अधिकाधिक लगाए जाने चाहिएँ जिससे शुद्ध ताजी हवा बालकों को मिल सके। बालकों को शुद्ध ताजी हवा की उपयोगिता समझाई जानी चाहिए। उन्हें बताया जाना चाहिए कि मुँह ढककर नहीं सोना चाहिए, गंदी हवा से बचना चाहिए, साँस मुँह से न लेकर नाक से लेनी चाहिए आदि। गाँव या शाला भवन के पास गंदे पानी का नाला या गड्ढा हो तो उसे हटाने का प्रयत्न करना चाहिए। तात्पर्य यह है कि अध्यापक को यह प्रयत्न करते रहना चाहिये कि बालकों को ताजी हवा हर समय मिलती रहे जिससे उनको थकान शीघ्र न हो, चित्त डावाँडोल न हो और एकाग्रता भंग न हो।

सारांश

हवा की आवश्यकता—हवा मानव शरीर के लिए तीन बातों के लिए आवश्यक है :—(१) रक्त की सफाई के लिए, (२) शक्ति तथा गर्मी प्रदान कराने के लिए, (३) जीवन संचालन के लिए।

हवा के अवयव—हवा में नेत्रजन ओषजन, कार्बन-डिओक्साइड, धूल के कण, धुआँ तथा स्थानीय परमाणु पाए जाते हैं।

हवा का संगठन—शुद्ध वायु में लगभग ३/४ भाग नेत्रजन, १/५ भाग ओषजन और शेष कार्बन डिओक्साइड होता है।

नेत्रजन—रंगहीन, गंधहीन गैस है। यह अन्य गैसों को कम बनाए रखती है।

ओषजन—जीवन संचालन करती है। शरीर को गर्मी प्रदान करती है। रक्त को स्वच्छ करती है।

कार्बन-द्विओषिद—पौधों का खाद्य पदार्थ है। शरीर के लिए अधिक मात्रा में होने पर हानिकारक है।

हवा की अशुद्धियां—दो प्रकार की होती है। (१) भास्वत, (अ) जान्तविक प्राणियों पौधों के परमाणुओं से उत्पन्न होती है। (आ) अजान्तविक—धूल, कोयले के टुकड़े आदि से उत्पन्न होती है। (२) गैसीय—श्वास-प्रश्वास क्रिया से, आग के जलने से, जल की भाप से, वस्तुओं के सड़ने से तथा अन्य गैसें उत्पन्न होकर हवा को गन्दा बना देते हैं।

अशुद्ध हवा का प्रभाव—सिर दर्द, चक्कर आना, थकान, मूर्छा, अजीर्ण, उदासी आदि होते हैं।

वायुमण्डल की शुद्धि—(१) प्राकृतिक शुद्धि—विसर्जन, ओषजन द्वारा, आंधी, वर्षा, पौधों, सूर्य द्वारा शुद्धि होती है। (२) कृत्रिम शुद्धि—खिड़कियां, पंखे, एयर-कन्डीशन्ड तरीकों से शुद्ध वायु का प्रवेश कराया जाता है तथा चिमनी, हवा द्वारा, भाप के फव्वारे आदि से अशुद्ध वायु निकालते रहना चाहिए।

व्यंजन का प्रबन्ध—खिड़कियां आमने-सामने होनी चाहिएं। शुद्ध और ताजा हवा प्रवेश करनी चाहिए। निकास हवादार छत के पास होने चाहिएं।

बुनियादी शाला और वायु व्यवस्था—बुनियादी शाला प्रकृति के अधिक निकट है। अतः स्वतः शुद्ध हवा प्राप्त होती है। तथापि अध्यापकों को चाहिए कि भवन निर्माण, शाला कार्य क्रम व्यवस्था, हरियाली, वनभ्रमण के द्वारा शुद्ध हवा अधिकाधिक बालकों को प्राप्त कराते रहें।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(१) हवा के संगठन से क्या तात्पर्य है? शुद्ध हवा का संगठन किस प्रकार होता है? प्रत्येक का क्या महत्व है? बालकों को किस संगठन की हवा प्राप्त होनी चाहिए?

(२) हवा में अशुद्धियां किन-किन कारणों से होती हैं? उनका बच्चों पर क्या प्रभाव होता है? उन्हें दूर करने के क्या उपाय हैं?

(३) व्यंजन से क्या तात्पर्य है? शाला में उसका प्रबन्ध आप किस प्रकार करेंगे?

(४) शाला में शुद्ध वायु की व्यवस्था के लिए आप किन-किन बातों पर ध्यान देंगे? उसकी पूर्ति किस प्रकार करेंगे?

: ४४ :

प्रकाश

प्रकाश की आवश्यकता—पञ्च तत्वों में से मानव के लिए प्रकाश की उतनी ही आवश्यकता है जितनी अन्य तत्वों की। हमारे वेद, शास्त्र, उपनिषद् आदि प्रकाश और तेज को परमात्मा का स्वरूप मानते आए हैं। सूर्य को प्रकाश-पुंज और देवता मानते हैं। इसीलिए तो 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' कहकर मनुष्य अंधकार से हटाकर प्रकाश में रहने की प्रार्थना करता है। चाहे इसका अर्थ अज्ञानान्धकार, पापान्धकार से मुक्त होकर ज्ञानज्योति अथवा सत्कर्मज्योति में ले जाया जाना ही क्यों न लगाया जाता हो। पर इस प्रार्थना से मनुष्य-जीवन में प्रकाश का महत्व और आवश्यकता स्पष्ट प्रतीत होती है।

किसी भी वस्तु को देखने के लिए तीन बातों की आवश्यकता होती है। प्रथम वस्तु का साकार रूप में विद्यमान होना। द्वितीय स्वस्थ आँख की विद्यमानता और तृतीय प्रकाश। वस्तु के विद्यमान होने पर भी आँख प्रकाश के अभाव में उसे नहीं देख सकती। और इसके विपरीत वस्तु को प्रकाश के विद्यमान होने पर भी अस्वस्थ आँख अथवा अन्धा पुरुष नहीं देख सकता। इस प्रकार संसार का ज्ञान प्राप्त करने में प्रकाश की नितान्त आवश्यकता है।

यही नहीं प्रकाश हमें भोजन प्रदान करता है। प्रकाश की सहायता से ही पौधे बढ़ते हैं। फल-फूल लगते हैं। किसी पौधे को यदि अंधेरे में रखा जाय उसकी उत्पादन शक्ति नष्ट हो जाएगी। इसके साथ ही प्रकाश हमें कई रोगों से मुक्त करता है। कई चर्म रोग, मच्छरों का काटना, फोड़े-फुन्सी आदि प्रकाश के कारण नहीं होते। अतः मानव ही नहीं अपितु सम्पूर्ण जगत् में प्रकाश का अपना एक निराला महत्व है।

प्रकाश प्राप्ति के साधन—कोई भी नेत्रयुक्त व्यक्ति सोने के समय को छोड़ कर अन्धकार में रहना पसन्द नहीं करता। येन केन प्रकारेण प्रकाश प्राप्त करने के साधन जुटा ही लेता है। इस प्रकाश-प्राप्ति के साधनों को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है :—

(अ) प्राकृतिक साधन।

(आ) कृत्रिम साधन।

(अ) प्राकृतिक साधन—

(१) सूर्य—प्रकृति ने प्रकाश प्रदान करने के लिए कई साधन उपस्थित किए हैं। सर्वप्रथम सूर्य है जिससे प्रकाश और गर्मी दोनों ही प्राप्त होते हैं। अर्थात् सूर्य से तेज मिलता है जिसमें प्रकाश और गर्मी दोनों ही सम्मिलित हैं। सूर्य को प्रकाश

प्रदान करने के कारण ही सूर्य देव कहा गया है। सूर्य के प्रकाश से स्वास्थ्य-रक्षा होती है। कीटाणु मरते हैं। सूर्य-स्नान कई रोगों को नष्ट करता है।

(२) चन्द्रमा—रात्रि में चन्द्रमा का शीतल प्रकाश मानव को शान्ति, स्निग्धता, स्फूर्ति, स्नेह की भावना प्रदान करता है। सम्पूर्ण संसार चाँदी के घोल में निमग्न सा प्रतीत होता है। यह प्रकाश आँखों को शीतलता प्रदान करता है।

(३) तारे—रात्रि में चन्द्रमा के उदय होने के पूर्व से उसके दरबारीगण तारे झिलमिल झिलमिल प्रकाश से अंधकार को दूर भगाने का प्रयत्न करते रहते हैं। उनकी सफलता यद्यपि इतनी महत्त्वपूर्ण नहीं है तथापि मनुष्य को निरन्तर प्रयास का पाठ अवश्य पढ़ाती है।

(४) चमकने वाले जीव-जन्तु—प्रकृति ने कई जीव-जन्तु ऐसे बनाए हैं जो अपने स्वयं के लिए चमक कर प्रकाश करते हैं, पर मनुष्य उनके प्रकाश से भी लाभ उठाता है। वर्षा काल में जुगनू चमक कर क्षण भर के लिए प्रकाश देता है। यद्यपि यह प्रकाश मनुष्य के अधिक काम नहीं आता तथापि मनोरंजन की दृष्टि से इसका अपना महत्त्व है। जुगनू को बारीक कपड़े में बन्द कर उसके प्रकाश में पुस्तक के अक्षर स्पष्ट देखे जा सकते हैं। व्याघ्र की आँखें चमकती हैं, जो जंगल में दूर से मनुष्य को व्याघ्र की उपस्थिति और उससे रक्षा के लिए सचेत कर देती हैं। इसी प्रकार एक पशु 'व्याघ्रशाली' होता है जिसकी जीभ इतनी चमकती है मानो आग की लपटें निकल रही हों।

(५) कई प्रकार के धातु—कई धातु बड़े चमकदार होते हैं। कुछ तो बाहर से प्रकाश प्राप्त कर चमकते हैं। अन्धकार में नहीं चमकते। पर कई स्वतः प्रकाश प्रदान करते हैं।

(६) दामिनि—रात्रि में बादलों की गड़गड़ाहट में बिजली, क्षण भर के लिए कौंध कर पथिकों का पथ-प्रदर्शन कर देती है।

(आ) कृत्रिम साधन :—

प्राकृतिक साधन यद्यपि मनुष्य की प्रकाश की आवश्यकता को दूर करने का प्रयास करते हैं, पर उसे उनसे पूर्ण सन्तोष नहीं मिला। अतः सभ्यता के विकास के साथ-साथ प्रकाश-प्राप्ति के कई साधनों का मानव ने निर्माण कर लिया। वे निम्नलिखित हैं :—

(१) आग जलाना—आदि मानव ने अन्धकार को दूर करने का सर्वप्रथम यही साधन प्रयोग में लिया होगा। अब भी पथिक जंगल में आग जलाकर जंगली जानवरों से अपनी रक्षा करते हैं।

(२) दीपक—मिट्टी अथवा किसी धातु के पात्र में तेल भर कर रुई की बाती उसमें रखकर जला कर प्रकाश किया जाता है, पर इससे इधर-उधर ले जाने की दिक्कत और मीठा तेल जलने से अधिक खर्च की दिक्कत के कारण उसका परिष्कृत रूप लैम्प हो गया है।

(३) लैम्प—इसे लालटेन भी कहते हैं। इसमें मिट्टी का तेल जलाया जाता है, जो सस्ता तो होता है पर उसका धुआँ बड़ा हानिकारक होता है। एक कमरे में

लालटेन रखकर यदि उसमें हवा के आवागमन-निकास का साधन नहीं बनाया जाए तो धुआँ इतना इकट्ठा हो जायगा कि उसमें बैठे हुए सभी व्यक्ति मर जाएँगे। अतः कमरे में लालटेन जलती छोड़कर कभी नहीं सोना चाहिए। पढ़ते समय इस ढंग से बैठना चाहिए कि लालटेन का धुआँ पढ़ने वाले की ओर न जाए।

(४) गैस लैम्प—अधिक प्रकाश के लिए मिट्टी के तेल के गैस लैम्प या प्यार लैम्पों के लैम्प जलाए जाते हैं। पर इनकी अत्यन्त तेज रोशनी से आँखें खराब हो जाती हैं तथा धुएँ से वायु दूषित होकर शरीर को हानि पहुँचाती है।

(५) बिजली के लैम्प—बड़े-बड़े नगरों में बिजली के लैम्प काम में लाए जाते हैं। बिजली के प्रकाश को आवश्यकतानुसार छोटे-बड़े बल्ब लगाकर धीमा व तेज किया जा सकता है। बिजली का प्रकाश आँखों के लिए उपयुक्त होता है। इसमें किसी प्रकार की गैस, धुआँ, गर्मी आदि नहीं निकलती। स्वास्थ्य के लिए भी हानिकारक नहीं होते।

बुनियादी शाला में प्रकाश-व्यवस्था—बुनियादी शाला में प्रकाश की व्यवस्था का पूरा ध्यान रखना चाहिए। मन्द प्रकाश में पढ़ने से बालकों के नेत्रों को हानि पहुँचती है। प्रकाश न अत्यन्त तेज और न अत्यन्त मन्द होना चाहिए। लिखने पढ़ने के समय प्रकाश पुस्तक पर बाईं ओर से या पीछे से पड़ना चाहिए।

बालकों को अधिकाधिक समय तक अच्छे प्रकाश में रखना चाहिए। बुनियादी शाला के छात्रावास में भी प्रकाश की उचित व्यवस्था की जानी आवश्यक है। रहने के तथा पढ़ने के कमरों में सूर्य का प्रकाश ठीक ढंग से आते रहना चाहिए। यही नहीं वरन् कमरे की वस्तुओं को सदा-कदा धूप में सुखाते रहना चाहिए। बालकों को प्रकाश का महत्व एवं उसका उचित उपयोग बता देना चाहिए।

सारांश

प्रकाश की आवश्यकता—प्रकाश को देवता का स्वरूप माना गया है। जीवन में साकार वस्तुओं को देखने के लिए वस्तु, स्वस्थ आँख और प्रकाश की आवश्यकता है। प्रकाश पेड़-पौधों में उत्पादन शक्ति बढ़ा कर हमें फल-फूल के रूप में भोजन देता है।

प्रकाश प्राप्ति के साधन—(अ) प्राकृतिक साधन—(१) सूर्य, (२) चन्द्रमा, (३) तारे, (४) चमकने वाले जीव-जन्तु, (५) कई प्रकार के धातु, (६) दामिनि।

(आ) कृत्रिम साधन—(१) आग जलाना, (२) दीपक, (३) लैम्प, (४) गैस लैम्प, (५) बिजली के लैम्प।

बुनियादी शाला में प्रकाश-व्यवस्था—अध्यापक को पढ़ाते समय प्रकाश का पूर्ण ध्यान रखना चाहिए। छात्रों का बैठना, श्याम पट्ट, स्वयं का कक्षा में स्थान, खिड़कियाँ, दरवाजों का प्रयोग आदि बातों का ध्यान रखकर अधिकाधिक प्रकाश आने की व्यवस्था करनी चाहिए।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(१) प्रकाश का स्वास्थ्य से क्या सम्बन्ध है? प्रकृति ने प्रकाश मिलने के क्या साधन दिए हैं? आप उनका अधिकाधिक प्रयोग शाला में किस प्रकार कर सकेंगे?

(२) शाला में प्रकाश की व्यवस्था के दृष्टिकोण से आप किन-किन बातों का ध्यान रखेंगे और क्या-क्या साधन जुटाएँगे?

जल

जल का महत्त्व और उसका कार्य—जल ही जीवन है। यह जीवन की प्रमुख आवश्यकता है। सभी प्रकार के जान्तविक प्राणियों का जीवन जल पर आधारित है। मानव शरीर में जल की मात्रा १०० में ७३ भाग है। अर्थात् लगभग ७० से ७५% भाग जल है। २ मन के शरीर में १ मन १५ सेर जल होता है। जल मनुष्य के कई काम आता है। शरीर में इसके विभिन्न कार्य इस प्रकार हैं:—(१) रक्त को तरल रखना; (२) जीवन रस बनाना; (३) शरीर के हानिकारक पदार्थों को घोल कर बाहर निकालना जैसे पसीना नाक का मैल, आदि; (४) शरीर के तापक्रम को हमेशा एकसा रखना; (५) शरीर-पोषक पदार्थों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाना; (६) अंगों में लचक बनाए रखना आदि। घर में विभिन्न कार्य इस प्रकार हैं—(१) खाना पकाना, (२) नहाना धोना, (३) सफाई रखना, (४) सिंचाई आदि। जल का सर्वोत्तम गुण उसका घुलना है।

जल का संगठन—यह दो गैसों के सम्मिश्रण से मिल कर बना है। २ भाग हाइड्रोजन एवं एक भाग आक्सीजन मिलकर जल बनता है। यह जल द्रव या ठोस रूप धारण कर सकता है। भाप, बादल, कुहरा, ओस, वर्षा, हिम, ओले, बर्फ आदि पानी के ही रूप हैं। शुद्ध पानी में निम्नलिखित गुण होते हैं—(१) कोई रंग, या गंध या स्वाद नहीं होता। काफी गहरा भरा हुआ होने पर पानी में हरेपन या नीलेपन की आभा हो सकती है। (२) साफ, चमकीला, निर्मल और पारदर्शक होता है। (३) किसी प्रकार की गैस या कार्बनिक अपद्रव्य नहीं होते। (४) किसी भी प्रकार के जान्तविक और अजान्तविक पदार्थ मिले नहीं होते।

जल प्राप्ति के साधन—जो भी जल हमको पृथ्वी पर मिलता है उसका मूल स्थान समुद्र है। वहाँ से भाप बनकर पृथ्वी पर बरसता है। बरसा हुआ जल दो भागों में विभक्त होकर हमारे काम में आता है—(१) सतही जल (२) भूमि जल। यद्यपि जल प्राप्ति का एक ही मुख्य साधन वर्षा है। पर हर समय वहीं से नहीं मिलता। आवश्यकतानुसार हम अन्य साधनों से भी प्राप्त करते हैं। कुछ साधन निम्नलिखित हैं:—

(१) वर्षा द्वारा।

(२) नदियों द्वारा।

(३) झरनों व सोतों द्वारा।

(४) तालाब व झील द्वारा।

(५) कुओं द्वारा।

(१) वर्षा का जल—भाप के द्रवीभूत होने से बनता है, सबसे अधिक स्वच्छ होता है। सीधा एकत्र करने पर इसमें किसी प्रकार की गन्दगी नहीं होती। यह जल भारी या कठोर न होकर मृदु और हल्का होता है। पाचन-शक्ति की कमजोरी वालों के लिए अत्यन्त लाभदायक है, पर प्रथम २-४ वर्षाओं का जल नहीं पीना चाहिए ताकि आकाश मण्डल में व्याप्त वायु में घुली अशुद्धियाँ समाप्त हो जाएँ। वर्षा का जल एकत्र करने का तरीका यह है कि धुली हुई चादर के चारों कोनों को चार बाँसों पर ऊपर बाँधना चाहिए। उसके नीचे पानी एकत्र करने का बर्तन भी जमीन की सतह से ५-६ फीट ऊँचा रखा जाना चाहिए। इस पानी को सीसे, लोहे, जस्त के बरतनों में न रखकर सीमेंट, पत्थर या लकड़ी की टंकियों में रखना चाहिए। यह जल बहुत समय तक रखा जा सकता है। जल्दी नहीं बिगड़ता।

नदियों का जल—नदियों की महत्ता नहाने, धोने पीने, व्यापार, धर्म, सिंचाई, तीर्थयात्रा आदि की दृष्टि से भारत में अधिक है। नदियों के पानी में अपद्रव्य अधिक होते हैं। मनुष्यों द्वारा स्नान, शौच, कुल्ले, शरीर मलने, पशुओं को नहलाने, शवों को नदी में बहाने, नगर या गाँव का गन्दा पानी मिलने, खाद के कीटाणु बहकर आने आदि से नदियों का पानी प्रायः गन्दा रहता है। जिससे हैजा, मियादी बुखार (टाइफाइड), जुकाम, खाँसी आदि हो जाते हैं। नदी के शुद्ध पानी में हवा अधिक होती है। वह पाचन शक्ति के उपयुक्त होता है। नदी के पानी को प्रयोग में लेने के लिए इन बातों का ध्यान रखना चाहिए :—

(१) बहाव के ऊपर की ओर निश्चित स्थान पर नहाने-धोने आदि की रोक लगा कर वहीं के स्वच्छ पानी का पीने में प्रयोग करना चाहिए।

(२) किनारों के जल की अपेक्षा धारा के मध्य का जल उत्तम होता है।

(३) नदी के पानी को छानकर, उबालकर या मशीन से फिल्टर कर प्रयोग में लाना चाहिए। यद्यपि प्राकृतिक साधनों से जैसे—सूर्य द्वारा, मछलियों द्वारा, वायु द्वारा और बहते रहने के कारण वह प्रायः शुद्ध होता रहता है।

झरनों तथा सोतों का जल—वर्षा का जल भूमि पर गिरकर उसके अन्दर प्रवेश कर किसी अभेद्य कठोर भाग पर पहुँचकर उसके ढाल की ओर भीतर ही भीतर बहता हुआ भूमि की किसी ऊपरी सतह पर बाहर आ निकलता है उसे झरना कहते हैं। यह जल दो प्रकार का होता है। (१) बालू या कंकरी भूमि पर बहकर आने वाला जो स्वच्छ होता है। (२) खरिया, चाक, चूने आदि खनिजों या वस्तुओं में से गुजरने वाला जो भारी होता है। झरने के पानी में, कार्बन डि-ऑक्साइड, चूना, चाक, मैगनेशिया, गन्धक आदि मिले होते हैं। अतः यह अशुद्ध माना जाता है। अधिक क्षार वाली मिट्टी पर का पानी गर्म होता है। झरने का पानी प्रायः रोगीला, अशुद्ध और भारी होता है। पर कई सोतों का पानी रोगों को दूर करने वाला भी होता है जैसे गन्धक या चूना मिला पानी। झरने के पानी को प्रयोग में लेने के पहले छानना चाहिए। ठोस को तो उबालकर पीना चाहिए। गन्धक या चूना मिला पानी तो अवश्य उबाला जाना चाहिए।

तालाब तथा झीलों का जल—झीलें ऊँची सतह के जलाशय हैं। पर ये

झीलों पर साधारणतया यदि मनुष्य का अधिक फिराव न हो, अब आस-पास या पानी में सड़ते न हों, पेड़-पौधों की पत्तियाँ आदि सड़ती न हों तो झील का पानी अच्छा होगा। यह जल अधिकतर स्वच्छ व मृदु होता है। तालाब साधारण धरातल पर होते हैं। तालाबों का जल प्रायः अशुद्ध होता है क्योंकि वह बहता नहीं। लोग नहाते, धोते, बर्तन मांजते हैं। कई जगह शवों को तालाब में फेंक देते हैं। कई वनस्पतियाँ सड़कर दूषित गैसें पैदा करती है। पशु पक्षी गन्दा करते हैं। यह भी यद्यपि मछलियों सूर्य प्रकाश, तथा वायु द्वारा शुद्ध होता रहता है। तथापि पीने का पानी ऐसे तालाब का कभी प्राप्त न करना चाहिए जो गन्दा, उथला, पशुओं के मल-मूत्र युक्त हो। तालाब के पानी को उबाल कर पीनी चाहिए। तालाब के पास में गन्दे पानी के गड्ढे श्मशान आदि न होने चाहिएँ तथा तालाब गहरा होना चाहिये।

कुओं का जल—कुओं का जल प्रायः शुद्ध और पीने योग्य होता है। कुएँ ३ प्रकार के होते हैं—(१) उथले कुएँ प्रायः गन्दे माने जाते हैं। (२) गहरे कुएँ—पानी शुद्ध होता है और हल्का होता है। (३) पाताल-तोड़ कुएँ जमीन में छेद कर बनाए जाते हैं, गहरे होते हैं और पानी शुद्ध होता है। कुओं के मुँह को ढककर रखना चाहिये ताकि बाहरी गन्दगी भीतर न पहुँचे। कुएँ के पास गन्दे पानी के खड्डे, पाखाना-पेशाब का स्थान न होना चाहिए। कभी-कभी उसमें लाल दवा डालनी चाहिए, जिससे पानी शुद्ध रहे। कुओं की दीवारों में खड्डे न होने चाहिएँ ताकि कबूतर आदि न बैठ सकें।

जल को शुद्ध करने के तरीके—जल किसी भी स्थान से प्राप्त किया गया हो, उसे शुद्ध किए बिना प्रयोग में नहीं लेना चाहिए। इसके लिए निम्नलिखित उपाय हैं :—

(१) साधारणतया कपड़े से छान लिया जाता है।

(२) पानी को उबालकर फिर ठण्डा कर काम में लिया जा सकता है।

(३) एक गैलन पानी में ६ ग्रेन फिटकरी डालकर पानी को शुद्ध किया जा सकता है।

(४) लाल दवा (पोटेशियम परमैंगनेट) डालकर पानी को शुद्ध किया जा सकता है।

(५) जल छानने की कई यान्त्रिक विधियों का प्रयोग किया जा सकता है। साधारणतया तीन घड़ों को एक के ऊपर दूसरा रखकर पानी छाना जा सकता है। इनमें से ऊपर के दो घड़ों में कोयला, बालू और बजरी थोड़ा-थोड़ा डालकर सबसे ऊपर वाले में पानी भर देते हैं। वह रुई लगे हुए एक छेद द्वारा बीच के घड़े में टपकता है और उसमें से तीसरे घड़े में। इस प्रकार पानी को शुद्ध किया जा सकता है।

शाला में जल-व्यवस्था—अध्यापक का कार्य बालकों को केवल पढ़ाना ही नहीं है वरन् उनके स्वास्थ्य का भी वह जिम्मेदार है। साथ ही बालकों को स्वस्थ रखने के तरीके उन्हें सिखाना है। अतः अध्यापक को चाहिए कि शाला में पानी की ठीक व्यवस्था करे। शाला में पानी गन्दे स्थान से तो नहीं लाया जाता है; पानी लाने वाले या पिलाने वाले को कोई रोग तो नहीं है। पानी ठीक ढंग से छाना जाता

(१) वर्षा का जल—भाप के द्रवीभूत होने से बनता है, सबसे अधिक स्वच्छ होता है। सीधा एकत्र करने पर इसमें किसी प्रकार की गन्दगी नहीं होती। वह जल भारी या कठोर न होकर मृदु और हल्का होता है। पाचन-शक्ति की कमजोरी वालों के लिए अत्यन्त लाभदायक है, पर प्रथम २-४ वर्षाओं का जल नहीं पीना चाहिए ताकि आकाश मण्डल में व्याप्त वायु में घुली अशुद्धियाँ समाप्त हो जाएँ। वर्षा का जल एकत्र करने का तरीका यह है कि धुली हुई चादर के चारों कोनों को चार बाँसों पर ऊपर बाँधना चाहिए। उसके नीचे पानी एकत्र करने का बर्तन भी जमीन की सतह से ५-६ फीट ऊँचा रखा जाना चाहिए। इस पानी को शीशे, लोहे, जस्त के बरतनों में न रखकर सीमेंट, पत्थर या लकड़ी की टंकियों में रखना चाहिए। यह जल बहुत समय तक रखा जा सकता है। जल्दी नहीं बिगड़ता।

नदियों का जल—नदियों की महत्ता नहाने, धोने पीने, व्यापार, धर्म, सिंचाई, तीर्थयात्रा आदि की दृष्टि से भारत में अधिक है। नदियों के पानी में मलद्रव्य अधिक होते हैं। मनुष्यों द्वारा स्नान, शौच, कुल्ले, शरीर मलने, पशुओं को नहलाने, शवों को नदी में बहाने, नगर या गाँव का गन्दा पानी मिलने, खाद के कीटाणु बहकर आने आदि से नदियों का पानी प्रायः गन्दा रहता है। जिनसे चेचक, मियादी बुखार (टाइफाइड), जुकाम, खाँसी आदि हो जाते हैं। नदी के शुद्ध पानी में हवा अधिक होती है। वह पाचन शक्ति के उपयुक्त होता है। नदी के पानी को प्रयोग में लेने के लिए इन बातों का ध्यान रखना चाहिए :—

(१) बहाव के ऊपर की ओर निश्चित स्थान पर नहाने-धोने आदि की रोक लगा कर वहाँ के स्वच्छ पानी का पीने में प्रयोग करना चाहिए।

(२) किनारों के जल की अपेक्षा धारा के मध्य का जल उत्तम होता है।

(३) नदी के पानी को छानकर, उबालकर या मशीन से फिल्टर कर प्रयोग में लाना चाहिए। यद्यपि प्राकृतिक साधनों से जैसे—सूर्य द्वारा, मछलियों द्वारा, वायु द्वारा और बहते रहने के कारण वह प्रायः शुद्ध होता रहता है।

झरनों तथा सोतों का जल—वर्षा का जल भूमि पर गिरकर उसके भीतर प्रवेश कर किसी अभेद्य कठोर भाग पर पहुँचकर उसके ढाल की ओर भीतर ही भीतर बहता हुआ भूमि की किसी ऊपरी सतह पर बाहर आ निकलता है उसे झरना कहते हैं। यह जल दो प्रकार का होता है। (१) बालू या बजरी भूमि पर बहकर आने वाला जो स्वच्छ होता है। (२) खरिया, चाक, चूने आदि खनिजों या बस्तुओं में से गुजरने वाला जो भारी होता है। झरने के पानी में, कार्बन डि-ऑक्साइड, चूना, चाक, मैगनेशियम, गन्धक आदि मिले होते हैं। अतः यह अशुद्ध माना जाता है। अधिक ताप वाली मिट्टी पर का पानी गर्म होता है। झरने का पानी प्रायः रोगोत्पादक, अशुद्ध और भारी होता है। पर कई सोतों का पानी रोगों को दूर करने वाला होता है जैसे गन्धक या चूना मिला पानी। झरने के पानी को प्रयोग में लाने से पहले उसे छानना चाहिए। टीस को तो उबालकर पीना चाहिए। गन्धक मिला हुआ पानी तो अवश्य उबाला जाना चाहिए।

तालाब तथा झीलों का जल—झीलें ऊँची ...

: ४६ :

भोजन

भोजन का महत्त्व और इसका कार्य—मनुष्य की नितान्त आवश्यकताओं का यदि क्रम बांधा जाए तो वह इस प्रकार होंगी : (१) हवा, (२) जल, (३) कपड़ा, (४) भोजन, (५) आश्रय। यद्यपि प्रकृति प्रदत्त हवा और जल के पश्चात् कपड़ा आवश्यक वस्तु है क्योंकि भोजन किए बिना मनुष्य ३—४ दिन निकाल सकता है, पर परिवारयुक्त घर में कुछ समय के लिए भी वस्त्र-रहित होकर नंगा रहना आज के समाज में कठिन है। तथापि भोजन शरीर के लिए अत्यन्त आवश्यक वस्तु है। यह भोजन शरीर में निम्नलिखित कार्य करता है :—

(१) शरीर-निर्माण करता है।

(२) खोई हुई शक्ति प्राप्त करता है।

(३) शरीर की टूट-फूट आदि को पूरा करता है।

(४) जीवन सचालन का कार्य करता है।

(५) शरीर में गर्मी और शक्ति कायम रखता है।

भोजन के तत्त्व—मनुष्य भोजन के रूप में अनेक वस्तुएँ खाता है। उन वस्तुओं का वैज्ञानिक विश्लेषण कर यह निष्कर्ष निकाला गया कि शरीर में जो क्रियाएँ होती हैं वे भोजन की विभिन्नता, मात्रा और उसको खाने के ढंग पर निर्भर है। प्रत्येक पदार्थ में भिन्न-भिन्न रासायनिक तत्त्व विद्यमान है। इन्हीं के आधार पर इनको निम्नलिखित भागों में विभाजित किया जा सकता है—

(१) प्रोटीन्स—शरीर के तन्तुओं की वृद्धि निर्माण तथा क्षतिपूर्ति के लिए अत्यन्त आवश्यक है। यह रोगों को मिटाने का कार्य भी करता है। इसके अभाव में शरीर अस्वस्थ, शक्ति-हीन और अवरुद्ध हो जाता है। प्रोटीन अण्डे, मांस, मछली तथा विभिन्न दालों, गेहूँ, दूध और पत्तेदार शाक-भाजी में पाया जाता है।

(२) कार्बन (कार्बोहाईड्रेट)—शरीर में शक्ति और गर्मी उत्पन्न करने के लिये आवश्यक है। जो मनुष्य शारीरिक श्रम अधिक करता है उसके लिये अधिक आवश्यक है। यह धातु दाल, चावल, गेहूँ, ज्वार, मक्का, साबूदाना, रस, शकरकंद, शहद, शक्कर आदि में अधिक पाया जाता है।

(३) चिकनाई—चिकनाई शरीर में ईंधन का काम करती है। वैसे तो कार्बन के पदार्थों से भी शक्ति व गर्मी मिलती है, पर उनसे अधिक गर्मी [illegible] पदार्थों से मिलती है। यदि आवश्यकता से अधिक चर्बी शरीर में एकत्र हो जाती है तो शरीर दुखदायी बन जाता है। यह अधिक परिश्रम करने वालों तथा ठण्डे देशों में रहने वालों

है या नहीं; पानी की कोठरी में गन्दगी तो नहीं है; पानी रखने के बर्तन साफ-सुथरे हैं या नहीं; पानी जहाँ से आता है वह स्थान शुद्ध और साफ है अथवा नहीं; पानी भारी तो नहीं है; ठीक ढंग से छनता है अथवा नहीं आदि कई बातें हैं जिनकी ओर अध्यापक को ध्यान देना आवश्यक है। यदि कोई छूत की बीमारी वाला बालक है तो उसे पानी से दूर ही नहीं रखना चाहिए वरन् उसे शाला में नहीं आने देना चाहिए। यदि बालक शाला समय के अलावा नदी का गन्दा पानी पीते हों, नहाते हों तो उन्हें उसकी हानियों से परिचित कर रोकना चाहिए। गाँव में किसी प्रकार की छूत की बीमारी फैलना प्रारम्भ हो गई हो तो जल की व्यवस्था को सुधारना चाहिए। बुनियादी शाला के अध्यापक का कार्य इस दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि उसे शिक्षा ही को जीवन की परिपाटी बनाना है जिसमें शुद्धता, स्वच्छता का प्रमुख स्थान है।

सारांश

जल का महत्व और उसका अर्थ—जल ही जीवन है। जीवन में यह जल शरीर की भीतरी और बाहरी आवश्यकताओं के पूर्ति करने के हेतु अत्यन्त महत्वपूर्ण वस्तु है।

जल का संगठन—दो भाग हाइड्रोजन और एक भाग आक्सीजन मिलकर बना है।

जल प्राप्ति के साधन—(१) वर्षा द्वारा—सबसे अधिक शुद्ध होता है। (२) नदियों का जल—इसमें अपद्रव्य अधिक होते हैं, प्रायः गन्दा होता है। (३) झरनों तथा सोतों का जल—प्रायः चूना, गन्धक आदि मिले होते हैं। (४) तालाब तथा झीलों का जल—तालाब प्रायः गन्दे होते हैं। (५) कुओं का जल—गहरे कुओं का पानी अच्छा होता है।

जल को शुद्ध करने के तरीके—(१) कपड़े से छानना, (२) उबालकर ठण्डा करना, (३) फिटकरी डालना, (४) लाल दवा डालना, (५) घड़ों द्वारा छानना।

शाला में जल-व्यवस्था—अध्यापक को शाला में जल का उचित प्रबन्ध करना चाहिए और बालकों को शुद्ध जल का प्रयोग करना सिखाना चाहिए।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(१) जल किन-किन साधनों से मिलता है? सबसे अच्छा साधन कौनसा है? कैसे?

(२) शाला में जल-व्यवस्था आप किस प्रकार करेंगे? विस्तार से लिखिए।

—:०:—

: ४६ :

भोजन

भोजन का महत्व और इसका कार्य—मनुष्य की नितान्त आवश्यकताओं का यदि क्रम बांधा जाए तो वह इस प्रकार होगी : (१) हवा, (२) जल, (३) कपड़ा, (४) भोजन, (५) आश्रय। यद्यपि प्रकृति प्रदत्त हवा और जल के पश्चात् कपड़ा आवश्यक वस्तु है क्योंकि भोजन किए बिना मनुष्य ३—४ दिन निकाल सकता है, पर परिवारयुक्त घर में कुछ समय के लिए भी वस्त्र-रहित होकर नंगा रहना आज समाज में कठिन है। तथापि भोजन शरीर के लिए अत्यन्त आवश्यक वस्तु है। भोजन शरीर में निम्नलिखित कार्य करता है :—

(१) शरीर-निर्माण करता है।

(२) खोई हुई शक्ति प्राप्त करता है।

(३) शरीर की टूट-फूट आदि को पूरा करता है।

(४) जीवन संचालन का कार्य करता है।

(५) शरीर में गर्मी और शक्ति कायम रखता है।

भोजन के तत्व—मनुष्य भोजन के रूप में अनेक वस्तुएं खाता है। उन वस्तुओं का वैज्ञानिक विश्लेषण कर यह निष्कर्ष निकाला गया कि शरीर में जो क्रियाएं होती हैं वे भोजन की विभिन्नता, मात्रा और उसको खाने के ढंग पर निर्भर है। प्रत्येक पदार्थ में भिन्न-भिन्न रासायनिक तत्व विद्यमान हैं। इन्हीं के आधार पर इनको निम्नलिखित भागों में विभाजित किया जा सकता है—

(१) प्रोटीन्स—शरीर के तन्तुओं की वृद्धि निर्माण तथा क्षतिपूर्ति के लिए अत्यन्त आवश्यक है। यह रोगों को मिटाने का कार्य भी करता है। इसके अभाव में शरीर अस्वस्थ, शक्ति-हीन और मवन्द हो जाता है। प्रोटीन अण्डे, मांस, मछली तथा विभिन्न दालों, गेहूँ, दूध और पत्तेदार शाक-भाजी में पाया जाता है।

(२) कार्बन (कार्बोहाईड्रेट)—शरीर में शक्ति और गर्मी उत्पन्न करने के लिये आवश्यक है। जो मनुष्य शारीरिक श्रम अधिक करता है उसके लिये अधिक आवश्यक है। यह धान्य दाल, चावल, गेहूँ, ज्वार, मक्का, साबूदाना, रस, शकरकंद, गुड़, शक्कर आदि में अधिक पाया जाता है।

(३) चिकनाई—चिकनाई शरीर में ईंधन का काम करती है। वैसे तो कार्बन वाले पदार्थों में भी शक्ति व गर्मी मिलती है, पर उनमें अधिक चर्बी वाले पदार्थों से मिलती है। यदि आवश्यकता से अधिक चर्बी शरीर में एकत्र हो जाती है तो शरीर स्थूलकाय [illegible] जाता है। यह अधिक परिश्रम करने वाले तथा ठण्डे देशों के रहने वालों

(उ) विटेमिन ई—इसकी आवश्यकता स्त्री-पुरुष की प्रजनन क्रिया के लिए होती है। इसके अभाव में स्त्री-पुरुषों में वन्ध्यता, गर्भपात या गर्भ में ही बालक की मृत्यु आदि रोग हो जाते हैं। यह पत्तीदार शाक, दूध, अण्डा, मक्खन, गोश्त, अंकुर वाले गेहूँ में पाया जाता है।

(ऊ) इसी प्रकार विटेमिन जी और कई और भी हैं जिन पर खोजे हो रही हैं।

संतुलित भोजन—उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि मनुष्य के भोजन में ऐसी वस्तुएँ सम्मिलित होनी चाहिएँ जो प्रोटीन, कार्बन, चिकनाई, नमक, लोहा, फास्फोरस, विटेमिन आदि की शरीर की आवश्यकता को पूरी करती हो। एक स्वस्थ व्यक्ति को प्रतिदिन इस मात्रा मे भोजन की आवश्यकता होती है—(१) प्रोटीन १०० ग्राम (२) कार्बोहाइड्रेट ५०० ग्राम (३) चर्बी १०० ग्राम (४) नमक, चूना, लोहा आदि की साधारण मात्रा। इस दृष्टि से भोजन का संतुलन ऐसा होना चाहिए कि उपरोक्त आवश्यक वस्तुएँ व्यक्ति को मिलती रहें। भारतीय सूचना व प्रसार मंत्रालय के प्रकाशन विभाग ने 'संतुलित भोजन' नामक पुस्तिका मे जो संतुलित भोजन की मात्रा बताई है वह इस प्रकार है :—

(१) रोटी—गेहूँ, जौ, बाजरा, मक्का आदि के आटे की	१४ औंस
(२) दाल	३ "
(३) हरी पत्ती वाली शाक	४ "
(४) कन्द मूल जैसे आलू, गाजर आदि	३ "
(५) अन्य सामयिक तरकारियां (फलियां आदि)	३ "
(६) फल (केला, संतरा, आम, अमरूद, पपीता, अंगूर आदि)	३ "
(७) दूध	१० "
(८) शक्कर या गुड़	२ "
(९) तेल, घी आदि	२ "
(१०) मछली व मास	३ "
(११) अंडा	एक

नोट :—जो मांसाहारी नहीं हैं वे मछली, मास और अंडे की पूर्ति दूध, दही, लस्सी, हरी सब्जी व दालो से कर सकते हैं।

पर संतुलित भोजन की यह उपरोक्त तालिका सभी के लिए उपयुक्त नहीं ठहरती। शरीर का आकार, स्वास्थ्य, परिश्रम, आयु, जलवायु, ऋतु, जाति, खाद्य पदार्थों की उपलब्धता आदि के आधार पर संतुलित भोजन आधारित होता है। भोजन को संतुलित बनाने की अपेक्षा भी खाने का समय, खाने (चबाने) का ढग, पकाने की विधि, आराम, भूख लगना, मानसिक अवस्था आदि कई ऐसे बिन्दु हैं जिन पर भोजन द्वारा स्वास्थ्य-प्राप्ति निर्भर है।

अनियंत्रित भोजन—अनियन्त्रित भोजन से तात्पर्य है आवश्यकता से अधिक या कम खाना। अथवा एक ही प्रकार के तत्व की अधिकता अथवा न्यूनता जैसे भोजन में चर्बी की अधिकता या न्यूनता का होना। अधिक खाने से चर्बी बढ़ जाती

है। अजीर्ण, पेट का दर्द, भारीपन; सुस्ती, स्वास्थ्य का बिगड़ना होने लगता है। कम खाने से दुबलापन आ जाता है। हड्डियों, मांसपेशियों व दिमाग का उचित विकास नहीं हो पाता। एक ही प्रकार के तत्व वाले पदार्थों को खाने से भी स्वास्थ्य मे हानि होती है। इनके साथ ही समय पर भोजन न करने, जल्दी-जल्दी भोजन को पेट में उतारना आदि भोजन को अनियन्त्रित कर देते हैं, जिससे व्यक्ति या बालक, सुस्त, अस्वस्थ, पीला, थकित, भयभीत, व्यग्र नजर आता है।

खाद्य पदार्थों का संग्रह—खाद्य वस्तुओं को सम्भालकर रखना भी अत्यन्त आवश्यक है। साधारणतया मक्खी, चूहों, बिल्ली, मच्छरों तथा दिखाई देने वाले कीड़े-मकोड़ों से तो बचना ही चाहिए। पर अदृश्य कीटाणुओं से भी उनकी रक्षा करनी चाहिए। खाने को सदा ढका हुआ रखना चाहिए। खाद्य वस्तुओं को सोने के कमरे में कदापि न रखना चाहिए। खाने को हवादार, ठंडी जगह पर रखना चाहिए।

शाला और भोजन-व्यवस्था—प्राचीन काल के गुरुकुलों और आश्रमों का सम्बन्ध शिष्यों की भोजन-व्यवस्था से रहा होगा। वर्तमान समय में तो अध्यापक यह सोचता है कि उसका कार्य तो केवल बालक को पढ़ाना मात्र है। भोजन तो बालक घर पर करके आता है। उसके भोजन से अध्यापक को क्या सरोकार। पर यह सोचना उचित नहीं। और विशेषतया बुनियादी शाला के अध्यापक को तो कभी ऐसा सोचना नहीं चाहिए। बुनियादी शाला का अध्यापक छात्रावास में रहने वाले बालक के भोजन को तो नियन्त्रित बना ही सकता है, पर घर पर रहने वाले बालक के भोजन का भी नियन्त्रण घर वालों से सम्पर्क स्थापित करके, कर सकता है। और अब तो बुनियादी शाला बालकों के नाश्ते की व्यवस्था भी करती है जिससे बालकों के स्वास्थ्य की पूर्णतया देख-रेख की जा सकती है।

किसी भी रोग की जड़ है पेट। क्योंकि भोजन अनियन्त्रित अवस्था में होता है। साधारणतया मिष्टान्न खाते समय अधिक भोजन कर लेना, पौष्टिक तत्वहीन भोजन कर लेना, बासी, सड़ा भोजन कर लेना, बिना भूख या असामयिक भोजन करना। बिना ठीक ढंग से चबाकर शीघ्र भोजन कर उठ जाना आदि ऐसी कई बातें हैं जो पेट की व्यवस्था को बिगाड़ देती हैं और स्वास्थ्य खराब कर देती हैं। जिसका फल यह होगा कि बालक में थकावट, सुस्ती, अरुचि, जी घुटना, पढ़ने में मन न लगना आदि स्पष्ट झलकते हैं। अतः बुनियादी शाला के अध्यापक को ऐसे छात्रों के अन्य कारणों के साथ-साथ यह भी देखना चाहिए कि बालक के भोजन की व्यवस्था कैसी है उसको आवश्यक पौष्टिक तत्व मिलते हैं या नहीं। उनको किस विटेमिन की कमी है। यह देखकर आवश्यक सम्मति माता-पिता को देनी चाहिए तथा हो सके तो बालक के नाश्ते आदि में उन्हीं आवश्यक पौष्टिक तत्वों वाले खाद्य पदार्थों का समावेश करना चाहिए। बालकों को विभिन्न वस्तुओं के खाने की उपयोगिता से भी परिचित करना चाहिए। बालकों को किसी मादक पेय पदार्थ जैसे चाय, शराब आदि से बचाना चाहिए। अधिक चरपरा, मसालेदार, उत्तेजक पदार्थ न खाने देना चाहिए।

सारांश

भोजन का महत्त्व एवं उसका कार्य—शरीर के निर्माण, शक्ति प्राप्ति, टूट-फूट की पूर्ति, जीवन संचालन, गर्मी के बनाए रखने के लिए भोजन की आवश्यकता होती है।

भोजन के तत्त्व—(१) प्रोटीन्स—रोगों को दूर करने व क्षति-पूर्ति के लिए आवश्यक है। (२) कार्बन—शक्ति व गर्मी के लिए आवश्यक है। (३) चिकनाई शरीर में ईंधन का कार्य करती है। (४) नमक—पाचन रस बनाने के लिए आवश्यक है। (५) चूना—हड्डियों व दाँतों के निर्माण के लिए आवश्यक है। (६) फासफेट—नाड़ियों के लिए आवश्यक है। (७) लोहा—रक्त के लिए आवश्यक है। (८) विटेमिन—'जीवनीय कण' जीवन संचालन के लिए आवश्यक है।

संतुलित भोजन—पौष्टिक तत्त्वों वाले खाद्य-पदार्थों को आवश्यक मात्रा में लेने से स्वास्थ्य नहीं बिगड़ता।

अनियन्त्रित भोजन—आवश्यकता से अधिक या कम अथवा एक ही पौष्टिक तत्व वाले पदार्थों की अधिकता और दूसरों को छोड़ना अनुचित है।

खाद्य पदार्थों का संग्रह—खाद्य पदार्थों को सोने के कमरे में न रखना चाहिए। उन्हें हवा तथा अदृश्य कीटाणुओं से बचाना चाहिए।

शाला और भोजन-व्यवस्था—अध्यापक का यह कर्तव्य है कि बालकों की भोजन-व्यवस्था की भी देख-रेख करता रहे।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(१) भोजन शरीर में क्या-क्या कार्य करता है? उसमें कौन-कौन से पौष्टिक तत्वों वाले खाद्य पदार्थों की आवश्यकता होती है? वे शरीर की किन-किन कमी को पूरा करते हैं?

(२) संतुलित भोजन से क्या तात्पर्य है? १० वर्ष के बालक के लिए संतुलित भोजन की तालिका बनाते समय किन-किन बातों का ध्यान रखना चाहिए? वह तालिका भी बनाइए।

(३) बुनियादी-शाला में आप भोजन व्यवस्था के लिए किन-किन बातों का ध्यान रखेंगे?

—:०:—

संक्रामक रोगों से बचाव के साधन :—

(१) **स्वस्थ व्यक्तियों को दूर रखना**—संक्रामक रोग का आक्रमण एक व्यक्ति पर होते ही उसे ऐसे स्थान पर रखना चाहिए जहाँ स्वस्थ व्यक्ति उससे दूर रह सकें।

(२) **आवश्यक उपचार**—घर में किसी एक व्यक्ति के रोगी बनते ही शीघ्र डाक्टर या वैद्य से उपचार प्रारम्भ करा देना चाहिए। गाँव या नगर में रोग प्रकोप का बढ़ना सुनकर बचाव के लिए पहले से टीका लगवा लेना चाहिए जैसे चेचक, हैजा, प्लेग के टीके लगवाना आवश्यक है।

(३) **विसंक्रमण**—रोग से मुक्त हो जाने पर भी रोगी के प्रयोग में आई हुई वस्तुओं जैसे—बर्तन, कपड़े, मेज, कुर्सी, किताब, कमरा सबको कीटाणुनाशक औषधियों जैसे—फार्मलीन... फार्मेल्डिहाइड, बोरिक एसिड, कार्बोलिक एसिड, पोटेशियम, परमेगनेट, क्लोराइड आदि से शुद्ध कर लेना चाहिए। कपड़ों, बर्तनों को जल में उबाल लेने से भी कीटाणु नष्ट हो जाते हैं।

शाला और संक्रामक रोग—बालकों की आयु ऐसी होती है कि उनके कोमल शरीर में संक्रामक रोग शीघ्र घर कर लेते है। कई रोग तो केवल बाल्यावस्था में ही होते हैं। युवावस्था में नहीं होते, जैसे—कुक्कुर खाँसी, गलसुए (मम्प्स) आदि। अतः बालकों को संक्रामक रोगों से बचाना चाहिए। जब एक भी बालक में संक्रामक रोगों के लक्षण दिखाई दें तो अन्य बालकों को इस रोगी बालक से दूर रखना चाहिए। रोगी बालक को शाला में तब तक नहीं आने देना चाहिए जब तक वह पूर्णतया रोगमुक्त न हो जाए। शाला के छात्रों का समय समय पर मेडिकल इन्सपेक्शन कराते रहना चाहिए। यदि गाँव या नगर में कोई महामारी, जैसे—हैजा, प्लेग आदि फैल रहे हों तो शाला के बालकों की या तो छुट्टियाँ कर देना उपयुक्त होगा क्योंकि समूह में रोग शीघ्र फैलता है अथवा उन्हें गाँव से दूर जंगल में ताजी हवा में जाना चाहिए। बालकों में यहाँ वहाँ थूकने की आदत को बन्द कर देना चाहिए। मल-मूत्र त्याग के स्थान भी कीटाणुनाशक औषधियों से, जैसे—फिनायल आदि से शुद्ध कराते रहना चहिए। शाला के आसपास गन्दगी कदापि न रखनी चाहिए। जल के कुएँ में जहाँ से पीने का पानी आता हो, पोटेशियम परमेगनेट (लाल दवा) समय-समय पर डालते रहना चाहिए। कमरे की वस्तुओं को धूप में रखकर कीटाणुओं से मुक्त किया जा सकता है।

वैसे तो संक्रामक रोग कई हैं पर उनमें से प्रमुख ये हैं :—

(१) **खसरा (Measles)**—खसरा प्रायः २ साल से ५ साल की उम्र में होता है। इससे मृत्यु हो जाने का भी भय है। इसकी ७ से १४ दिन की अवधि है। इस रोग के कीटाणु वायु द्वारा या सम्पर्क द्वारा शरीर में प्रवेश कर जाते हैं।

(अ) **लक्षण**—जुकाम, सिर दर्द, सर्दी लगना, खाँसी, छींकें आना, नाक-आँख से पानी बहना, गले या नाक में सूजन हो जाना, हल्का बुखार आदि प्रारम्भिक अवस्था है। चौथे दिन लाल रंग के दाने चेहरे पर उभर आते हैं। धीरे-धीरे सारे शरीर पर फैल जाते हैं। ये दाने अर्ध चन्द्राकार और मुलायम होते हैं। एक दो दिन

तीव्र अवस्था रहकर ये दाने मुरझा जाते हैं। ८-१० दिन में इन पर से खाल उतर जाती है। १४ दिन बाद बालक उठ सकता है।

(आ) उपचार—खसरा से शरीर कमजोर होकर निमोनिया होने का भय रहता है। अतः रोगी को गर्म हवादार कमरे में लिटाना चाहिए। ठण्ड से बचाना चाहिए। खसरा से बालक अन्धा या बहरा हो जाता है। अतः डाक्टर से शीघ्र इलाज कराना चाहिए।

(इ) शाला में सावधानी—रोगी बच्चे को स्कूल में नहीं आने देना चाहिए। यदि अन्य बालकों में से भी कोई उस रोगी बालक के सम्पर्क में आया है तो उसे भी अन्य बालकों से दूर रखना चाहिए। इस रोग से रोगी बालक को लगभग एक मास तक शाला से परे रखना चाहिए। रोगी बालक के माता पिता को आवश्यक सूचनाएँ समझा देनी चाहिएँ। यदि यह रोग बालकों में अधिकाधिक फैलता जा रहा हो तो कुछ दिनों के लिए स्कूल बन्द कर देना चाहिए।

(२) चेचक (Small pox)—इसे बड़ी माता भी कहते हैं। यह केवल बच्चों को ही नहीं वरन् बड़ी उम्र तक के लोगों को हो सकती है। ५० या ६० वर्ष की उम्र के लोगों को भी चेचक निकलती देखी गई है। चेचक के टीके का आविष्कार होने से अब इसका प्रभाव हल्का पड़ गया है। अन्यथा प्रायः बालकों की मृत्यु इसी कारण होती थी। इस रोग के कारण अन्धापन या बदसूरती भी हो जाती है। इसकी अवधि १० से १४ दिन की है। पर पूर्णतया रोग मुक्ति में लगभग डेढ़ महीना लग जाता है। इसके कीटाणु श्वास प्रश्वास द्वारा, थूकने द्वारा, रोगी की वस्तुओं को प्रयोग में लेने के द्वारा या रोगी की पपड़ी के द्वारा फैलते हैं।

(अ) लक्षण—सिर दर्द, पीठ में दर्द, तीव्र ज्वर आना और मुँह पर लाली इसके प्रारम्भिक लक्षण हैं। तीसरे दिन माथे और कलाइयों पर लाल दाने उभर आते हैं। धीरे-धीरे पूरे शरीर पर फैल जाते हैं। ये दाने शरीर पर कभी-कभी इतने सघन होते हैं कि अंगुली भर जगह भी नहीं छूटती। इन दानों में पानी भरा रहता है। आठवें या नवें दिन यह पानी गाढ़ा पीप जैसा बन जाता है। इस समय तीव्र ज्वर, तनाव और दर्द होता है। लगभग तेरहवें चौदवें दिन दानों का सूखना और खरोंट आना प्रारम्भ हो जाता है। ये खरोंट लगभग १५ दिन तक रह कर गिरने लग जाते हैं।

(आ) उपचार—रोग से बचने के लिए चेचक का टीका लगाया जाना चाहिए। पहली बार चौथे महीने में, दूसरी बार एक साल की अवस्था पर और तीसरी बार तीन साल की अवस्था पर टीका लगा लेने पर चेचक जीवन भर कभी नहीं निकलती। प्रायः लोग बालक के एक ही बार टीका लगवाते हैं जिसका असर यद्यपि जीवन भर रहना माना जाता है तथापि निकलती है। चाहे उसका प्रभाव कम होता हो। चेचक के रोगी को साधारणतया कोई औषधि नहीं दी जाती। ग्रामवासी इसे देवी का प्रकोप मानते हैं और नहाना धोना आदि तक बन्द कर देते हैं।

(इ) शाला में सावधानी—शाला में प्रवेश के समय बालक के चेचक का

टीका अवश्य लगवा लेना चाहिए, चाहे पहले भी लग चुका हो। चेचक की महामारी के समय किसी बालक में थोड़े से भी लक्षण दिखाई देते ही उसे तुरन्त घर भेज देना चाहिए। रोगी बालक को सदा शाला से अलग रखना चाहिए। जिस घर में चेचक का रोगी हो उस घर के किसी भी बालक को शाला में नहीं आने देना चाहिए।

(३) छोटी माता (Chicken Pox)—यह अधिक खतरनाक बीमारी नहीं है। यह रोग लगभग तीन सप्ताह रहता है। यह रोग रोगी के थूक में मिश्रित कीटाणुओं द्वारा या उसके फफोले की पपड़ी द्वारा फैलता है।

(अ) लक्षण—हल्के ज्वर के साथ दाने उभर आते हैं। ये दाने पहले छाती या पेट पर निकलते हैं और फिर सारे शरीर पर उभरते हैं। इन दानों में पानी भरा होता है जो ३-४ दिन में सूखकर पपड़ी बन जाता है। कुछ दिनों में पपड़ी सूखकर गिर जाती है।

(आ) उपचार—यद्यपि रोग खतरनाक और अधिक हानिकारक नहीं है तथापि कभी-कभी बड़ी माता अर्थात् चेचक के छोटी माता होने का भ्रम हो जाता है और रोग के बिगड़ने का खतरा रहता है। अतः रोग के लक्षण दिखाई देते ही पूरी जानकारी कर लेना आवश्यक है कि रोगी को छोटी माता है या चेचक। इस रोग में भी प्रायः औषधियाँ नहीं दी जाती। अवधि पर अपने आप मिट जाती है। पर छूत का हमेशा ध्यान रखना चाहिए।

(इ) शाला में सावधानी—बालक में रोग के लक्षण प्रतीत होते ही उसका शाला में आना बन्द कर देना चाहिए। अन्य बालकों को उसके सम्पर्क से बचाना चाहिए। माता-पिता को यह समझा देना चाहिए कि रोगी की जो पपड़ियाँ गिरें उन्हें जला दिया जाए। रोगी घर के दूसरे बालकों को भी शाला में नहीं आने देना चाहिए, जब तक कि वे संक्रमण से मुक्त न हो जाएँ।

(४) गलसुए (Mumps)—इसे कर्ण-फेर या गरेदा रोग भी कहते हैं। यह रोग प्रायः सर्दी के मौसम के अन्तिम दिनों में होता है। लगभग ५ साल की उम्र के बाद होता है। इससे कभी-कभी जनेन्द्रियों पर बुरा प्रभाव पड़कर बालक जन्म भर के लिए नपुंसक और बालिका बन्ध्या हो जाती है। यह रोग लगभग १४ से २८ दिन की अवधि का है। यह रोग श्वास और थूकने से फैलता है।

(अ) लक्षण—दोनों कान के नीचे जबड़ों पर तनाव होता है। बुखार लगभग १०२ या १०३ डिग्री तक हो जाता है। प्रातःकाल बुखार का टेम्परेचर कम हो जाता है। धीरे-धीरे सोजिश ठोड़ी के नीचे और गले तक फैल जाती है। दर्द इतना होता है कि गला भी नहीं फट पाता और बालक को खाद्य वस्तु को निगलने में कठिनाई होती है।

(आ) उपचार—सूजे हुए भाग पर बारी चोटी पीसकर पानी में मिलाकर लगानी चाहिए। अधिक दर्द पर पेनिसिलीन का इंजेक्शन लगाया जा सकता है। स्कूल डाक्टर की गोलियाँ आवश्यकतानुसार दी जा सकती हैं। सूजे हुए भाग पर रुई बांधे रखनी चाहिए। मर्ज सेक करना चाहिए। रोगी को खूब आराम कराना चाहिए।

इधर उधर डोलना भटकना निषेध है। हल्का भोजन देना चाहिए। कभी-कभी मंत्रों द्वारा झाड़ फूंककर भी इसका इलाज किया जाता है।

(इ) शाला में सावधानी—बालक को शाला से छुट्टी दे देनी चाहिए। उसे खूब आराम करने का अवसर देना चाहिए। अन्य बालकों से अलग रखा जाना चाहिए। रोग आरम्भ से लगाकर लगभग २० दिन तक बालक को अलग रखना चाहिए।

(५) कुक्कुर खांसी (Whooping Cough)—यह रोग केवल बालकों का रोग है जीवन में केवल एक बार बाल्यावस्था में ही होता है। प्रायः ५ वर्ष की आयु के बालक को होते है। यह अधिक हानिकारक रोग है क्योंकि एक तो बालक के फेफड़े बिगड़ जाते हैं दूसरा उसका स्वास्थ्य कमजोर हो जाता है। श्वास प्रश्वास की क्रिया द्वारा कीटाणुओं के प्रवेश से ही यह रोग होता है। इस रोग के हो जाने पर क्षय रोग या निमोनिया होने का भय रहता है।

(अ) लक्षण—जुकाम होना, नाक बहना, छींक आना, आँखों में पानी बहना आदि साधारण खांसी से प्रारम्भ होकर धीरे-धीरे कुक्कुर खांसी आ जाती है। कुक्कुर खांसी में थोड़ी-थोड़ी देर में खांसी लगातार कई मिनिट तक इस प्रकार चलती है कि रोगी का सांस लेना तक कठिन हो जाता है। वह उलझ जाता है और वमन, के अर्थात् उल्टी हो जाती है। खाया पिया सब निकल जाता है। खांसी चलते समय मुंह सारा लाल हो जाता है।

(आ) उपचार—यह एक निश्चित अवधि का रोग कहा जाता है। और चाहे कितना ही उपचार किया जाए, इससे शीघ्र मुक्ति पाना कठिन है। इसके प्रभाव को कम करने के लिए टीका कफ इन्जेक्शन लगाए जाने चाहिएँ। सितो-पलादि, या अडूसे का रस लाभदायक होता है। रोगी को शुद्ध हवा में रखा जाना चाहिए।

(इ) शाला में सावधानी—यह रोग बालकों में शीघ्रता से फैलता है। अतः किसी भी बालक में इस रोग के लक्षण दिखाई देते ही उसे तत्काल घर भेज देना चाहिए। इसका रोगी खाट पर नहीं सोता क्योंकि उसे बुखार नहीं रहता। अतः उससे बालकों को दूर रखना बड़ा कठिन है। पर इस ओर ध्यान न देने पर यह रोग एक के बाद दूसरे पर फैलता ही जाता है। रोगी बालक को कम से कम भी एक माह तक शाला में नहीं आने देना चाहिए।

(६) कण्ठ-रोहिणी (Diptheria)—प्रायः २ से १० वर्ष की आयु तक के बच्चों को होता है। पर कभी-कभी बड़े बालकों को भी हो जाता है। यह अत्यन्त भयानक रोग है। शीघ्र इलाज न होने पर ३ दिन में मृत्यु हो जाती है। इसके कीटाणु नाक छिनकते समय, खांसते समय या छींकते समय हवा में फैल जाते हैं। रोगी के सम्पर्क में आने, झूठे बर्तन में खाने से भी फैल जाता है। इसे कण्ठ रोग [illegible] मुख संक्रमणकारक रोग भी कहते हैं।

(अ) लक्षण—गला दुख जाता है। कभी-कभी सूज जाता है। गले और मुंह में एक झिल्ली सी बनती है। यह झिल्ली श्वास लेने में कठिनाई उत्पन्न कर

देती है। जिससे मृत्यु हो जाती है। कभी-कभी शरीर के अंगों को लकवा मार जाता है। कभी-कभी हृदय पर भी असर हो जाता है नाक पर असर होने पर नाक सूज जाती है अथवा लाल पड़ जाती है।

(आ) उपचार—रोग निवारक इन्जेक्शन (एन्टीडिपथीरिया इन्जेक्शन) तुरन्त लगाना चाहिए। कभी-कभी सांस रुक जाने पर कृत्रिम ढंग से सांस दी जानी चाहिए। इसका इलाज डाक्टर से शीघ्र कराया जाना आवश्यक है।

(इ) शाला में सावधानी—रोगी बच्चे को शीघ्र अस्पताल भेजा जाना चाहिए। शाला के बालकों को शुद्ध ताजी हवा दी जानी चाहिए। सफाई रखनी चाहिए। शिकटेस्ट द्वारा बालकों की जांच कराई जानी चाहिए कि किन में रोग के कीटाणु विद्यमान हैं। इस टेस्ट में बालकों की बाहों में इस रोग के विष की थोड़ी मात्रा इन्जेक्शन से पहुँचा दी जाती है। दो या तीन दिन में वह स्थान यदि लाल चकता बन जाए तो समझना चाहिये कि इनमें रोग के कीटाणु नहीं हैं। पर यदि लाल चकता न बने तो शीघ्र रोग निवारक उपचार किया जाना आवश्यक है। रोगी बालक को अन्य बालकों से दूर रखना चाहिए। घर में यदि एक बालक को रोग हो गया है तो दूसरों को भी इन्जेक्शन लगाया जाना आवश्यक है। रोगी बालक की वस्तुओं को भी कीटाणुओं से मुक्त करना आवश्यक है।

(७) खाज (Scabies)—यह त्वचा का रोग है। यह एक कीड़े द्वारा फैलता है। यह कीड़ा चमड़े के भीतर प्रवेश कर जाता है। सर्वप्रथम इसके प्रवेश का स्थान है अंगुलियों के बीच का स्थान या कलाई पर की झुर्रियाँ। यहाँ यह काटता है जिससे खुजली चलती है। बालक खुजाता है जिससे घाव बन जाता है और यह अधिक विस्तार पाता है। यह भयंकर छूत की बीमारी है। घर में एक को होने पर शेष सभी को हो जाता है।

(अ) लक्षण—अंगुलियों के बीच में खाज चलना। खुजाते-खुजाते घाव बन जाना। फिर जलन पैदा होना। धीरे-धीरे सारे शरीर पर फैल जाना।

(आ) उपचार—गन्धक का मरहम लगाना चाहिए। गन्धक के पानी से नहाना चाहिए। हमेशा साफ कपड़े पहनना चाहिए। रोगी के उतरे हुए कपड़ों को गर्म पानी में उबालना चाहिए। नमक व मसालेदार चीजें नहीं खानी चाहिएँ।

(इ) शाला में सावधानी—खुजली के रोगी बालक को शाला में नहीं आने देना चाहिए। खुजली के रोग से मुक्त होने में लगभग एक या डेढ़ मास लग जाता है। कभी-कभी तो रक्त विकार शरीर में यदि अधिक हो तो बालक को रोग मुक्त होने में ५-६ माह लग जाते हैं। जब तक बालक पूर्णतया रोग मुक्त न हो जाए उसे शाला में न आने देना चाहिए।

(८) मलेरिया (Malaria)—इस रोग का वास्तविक कारण ज्ञात न होने के पहले गन्दी हवा ही इसका कारण माना जाता था। अब इसका कारण मच्छरों का काटना माना जाता है। मच्छर एक व्यक्ति को काटकर उसके खून में व्याप्त मलेरिया के कीटाणुओं को अपने साथ लेकर किसी स्वस्थ व्यक्ति को काटते समय उन कीटाणुओं को उसमें छोड़ देते हैं जिससे वे कीटाणु उसके शरीर में बढ़ते

हैं। ये मच्छर गन्दी जगहों, कूड़ों करकटों, गन्दे पानी के खड्डों अंधेरी जगहों, पर अधिक रहते हैं। गाँवों में इस रोग का प्रसार अधिक है। कीटाणुओं को मच्छरों द्वारा ले जाए जाने के कारण इसे छूत का रोग कहते हैं।

(अ) लक्षण—सर्दी लगकर शरीर का तापक्रम बढ़कर बुखार हो जाना, कभी हल्का व कभी तेज बुखार का होना, शरीर में कमजोरी आकर हाथ पाँवों का टूटना, सिर दर्द, जी घबराना, भूख न लगना, खाने की रुचि न होना आदि।

(आ) उपचार—डाक्टर से मिलकर कुनैन मिक्सचर या अन्य गोलियाँ लेनी चाहिएं। मकान में मच्छर नहीं पैदा होने देना चाहिए। मच्छर मारने की दवाई घर में छिड़कते रहना चाहिए। मकान के आस-पास कूड़ा-करकट, गन्दे पानी का स्थान आदि नहीं होना चाहिए। रहने के मकान में जानवर न बाँधे जाने चाहिएं। मलेरिया के रोगी को अलग रखना चाहिए।

(इ) शाला में सावधानी—मलेरिया के रोगी बालक को शाला में नहीं आने देना चाहिए। उसे खूब आराम करने देना चाहिए। शाला में इस रोग से बालकों को बचाने के लिए हफ्ते में एक बार कुनैन पिलाते रहना चाहिए। बालकों को साफ-सुथरे रहना सिखाना चाहिए। उनमें किसी प्रकार की निर्बलता नहीं आने देना चाहिये।

(६) मियादी बुखार (Typhoid)—मियादी बुखार एक निश्चित अवधि तक निरन्तर ज्वर चढ़े रहने को कहते हैं। यह ज्वर इतनी तीव्रता से चढ़ता है कि रोगी अट शट बकने लग जाता है जिसे सन्निपात भी बोलते हैं। इस मियादी बुखार को प्रान्तीय भाषा में निकाला भी कहते हैं। कई लोग इसे एक प्रकार का मलेरिया ही मानते हैं और इसका कारण एक विशेष प्रकार के मच्छर का काटना मानते हैं।

(अ) लक्षण—ज्वर तीव्रता से चढ़ता है और निरन्तर बना रहता है। हल्का नहीं पड़ता, लगातार उत्तरोत्तर बढ़ता जाता है। बुखार के प्रारम्भ होने के तीन चार दिन बाद चेहरे या छाती पर लाल बारीक फुन्सियाँ उभर आती हैं जो कभी-कभी मयादी बुखार देखने के विशेष काँच से ही देखी जा सकती हैं। इस बुखार की तीव्रता के कारण रोगी अंट-शंट बकने लगता है। कभी-कभी इसमें लकवा भी मार जाता है। इस बीमारी में रोगी का ध्यान न रखने पर उसकी दशा खराब हो जाती है।

(आ) उपचार—यदि बुखार लगातार बना रहे और मयादी बुखार होने का पूर्ण विश्वास हो जाए तो बुखार को एकदम हल्का करने का कभी प्रयत्न नहीं करना चाहिए। क्योंकि मयादी बुखार को अपनी अवधि से पहले समाप्त करने का प्रयास करने पर आपत्ति आ सकती है। रोगी को पूर्णतया डाक्टर की देख-रेख में रखना चाहिए। उसे खूब आराम करने देना चाहिए।

(इ) शाला में सावधानी—रोगी को अन्य बालकों से दूर रखने का प्रयास करना चाहिए। इस रोग के कीटाणु बालकों पर शीघ्र असर करते हैं। अतः बालकों को पूर्णतया बचाना चाहिए। रोगी बालक स्वस्थ होकर जब लौटे तो शाला में उससे परिश्रम न लिया जाना चाहिए अन्यथा पुनः रोगी बनने का भय रहता है।

(१०) हैजा (Cholera)—यह रोग केवल ग्रीष्म ऋतु में कीटाणुओं से फैलता है। और २ से ५ दिन के भीतर बढ़ता है। ये कीटाणु पानी, भोजन, सड़ी-गली वस्तुओं को खाने आदि के द्वारा पेट में पहुँच जाते हैं। रोगी जब उल्टी या दस्त करता है तब उसके कीटाणुओं को मक्खियाँ अपने साथ लेकर दूसरी खाद्य वस्तुओं पर बैठती हैं तब उसे भी कीटाणुयुक्त बना देती हैं।

(अ) लक्षण—रोगी को उल्टी और सफेद दस्त आने लगते हैं। पानी की प्यास बड़ी तेज लगती है। पानी पीते रहने पर भी प्यास नहीं बुझती। रोगी बहुत घबराता है। आँखें अन्दर धँस जाती हैं। रोगी एकदम, निर्बल, सफेद या पीला पड़ जाता है।

(आ) उपचार—रोगी को अमृतधारा या प्याज का रस देना चाहिए। तुरन्त डाक्टर को बुलाना चाहिए। रोगी की उल्टी व दस्त पर एकदम मिट्टी डालकर उसे गाँव से दूर खड्डे में गाड़ देना चाहिए या जला देना चाहिए। पानी में पोटैशियम परमैंगनेट (लाल दवा) डाल देनी चाहिए। रोगी के बर्तनों, कपड़ों को उबाल कर काम में लेना चाहिए। ताजा व गर्म भोजन खाना चाहिए। सड़े-गले पदार्थ, ठण्डी बासी रोटी नहीं खानी चाहिए।

(इ) शाला में सावधानी—अधिक गर्मी पड़ने पर किसी बालक को उल्टी, दस्त होते ही उसे तत्काल डाक्टर के इलाज के लिए भेज देना चाहिए और बालकों को उससे दूर रखना चाहिए। कुएँ के पानी में खास दवा डाल देनी चाहिए। लड़कों को सड़े, बासी भोजन, सड़े-गले फलों से बचाना चाहिए। हैजा फैलने का भय होते ही प्रत्येक बालक के हैजे का टीका लगवाया जाना चाहिए।

(११) क्षय-रोग (Tuberculosis)—क्षय-रोग, जिसे तपेदिक या राजयक्ष्मा भी कहते हैं भयंकर छूत की बीमारी है। घर में एक व्यक्ति को होने पर परिवार के परिवार नष्ट होते देखे गये हैं। भारत में इसके रोगी अधिक पाए जाते हैं। यह रोग सम्पूर्ण शरीर, फेफड़ों अथवा किसी एक अंग तक ही सीमित रह सकता है। यह वंश परम्परा, दूषित वायु, अपौष्टिक और अपर्याप्त भोजन, अधिक श्रम, मादक वस्तुओं के अधिक प्रयोग या अधिक व्यभिचार के कारण हो सकता है।

(अ) लक्षण—लगातार खाँसी का दौरा होना, कफ या रक्त का गिरना आरम्भ होना, थोड़े परिश्रम पर ही पसीना आ जाना, श्वास का वेग बढ़ना भूख का अभाव, हल्का ज्वर बना रहना, शरीर का वजन घटना आदि।

(आ) उपचार—क्षय के रोगी को घर से दूर जंगल में, अस्पताल से दूर इस निमित्त बने विशेष अस्पताल में जिन्हें सेनिटोरियम कहते हैं, रखना चाहिए। क्षय-रोगी को पशु का दूध नहीं पीना चाहिए। शुद्ध वायु और सूर्य [illegible] सेवन करना चाहिए। जुकाम, खाँसी, निमोनिया आदि फेफड़े पर असर करने वाली बीमारियों से बचना चाहिए।

(इ) शाला में सावधानी—क्षय-रोगी को शाला में प्रवेश नहीं देना चाहिए। बालकों को शुद्ध वायु और धूप में रखना चाहिए। जहाँ तहाँ थूकने की आदत से बचाना चाहिए। धूल और गन्दगी से बचाना आवश्यक है। प्रत्येक

संक्रामक रोगों के प्रसार का ढंग—(१) संपर्क द्वारा—रोगी की सेवा करने या उसकी वस्तुएं प्रयोग में लेने से होता है। (२) वायु द्वारा—गन्दी वायु अथवा रोगी के प्रश्वास को अपने श्वास के रूप में लेने से फैलता है। (३) जल तथा भोजन :—दूषित जल या भोजन प्रयोग में लेने से फैलता है। (४) घावों द्वारा :—शरीर पर खरोंच या घाव द्वारा कीटाणु शरीर में प्रवेश कर जाते हैं। (५) कीड़ों के काटने से :—मच्छर, खटमल आदि के काटने से रोग फैलते हैं। (६) प्रजननेन्द्रिय द्वारा:—गर्मी, सुजाक आदि रोग फैलते हैं।

संक्रामक रोगों से बचाव के साधन—(१) स्वस्थ व्यक्तियों को दूर रखना, (२) आवश्यक उपचार, (३) विसंक्रमण।

शाला और संक्रामक रोग—बालकों में संक्रामक रोग शीघ्र फैलते हैं। समूह में रहने के कारण बालकों में ये रोग शीघ्र प्रसार पाते हैं। बालकों में फैलने वाले संक्रामक रोग ये हैं :—(१) खसरा, (२) चेचक, (३) छोटी माता, (४) गलसुए, (५) कुक्कुर खाँसी, (६) कण्ठ रोहिणी, (७) खाज (८) मलेरिया, (९) मयादी-बुखार, (१०) हैजा, (११) क्षयरोग, (१२) अतिसार, (१३) इन्फ्लूएंजा आदि। इनके फैलने के कारण, लक्षण, उपचार व शाला में सावधानी यथास्थान दिए गए हैं।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(१) छूत की बीमारियाँ किस प्रकार फैलती हैं? शाला के छात्रों को इनसे बचाने के लिए क्या किया जाना चाहिए?

(२) कुक्कुर खाँसी, मलेरिया और हैजा के फैलने के क्या कारण हैं? उनके लक्षण और उपचार बताते हुए लिखिए कि शाला के बालकों की इनसे आप किस प्रकार रक्षा करेंगे।

— ३ —

: ६८ :

शाला में डाक्टरी निरीक्षण की व्यवस्था

डाक्टरी निरीक्षण की आवश्यकता—हमारा समाज प्रायः गांवों में है। गांववासी साधारणतया अशिक्षित हैं। उन्हें स्वास्थ्य का ज्ञान नहीं है। वे शुद्ध खाना-पीना, साफ रहन-सहन, स्वच्छ वेश भूषा, निरोग शरीर की महत्ताओं से अपरिचित हैं। ऐसी अवस्था में यह स्पष्ट ही है कि ऐसे माता-पिताओं की सन्तान प्रायः रोगी होगी। मैली-कुचैली होगी कमजोर होगी। ऐसे बालक जब शिक्षा ग्रहण करने शाला में आएँगे तो वे शिक्षा ग्रहण करने में रुचि न लेंगे। उनका मन एकाग्र न हो सकेगा। उनका मस्तिष्क विकास न हो सकेगा। वे शीघ्र थक जाएँगे। अतः यह देखने के लिए कि शाला में प्रवेश पाने वाला बालक मानसिक एवं शारीरिक दृष्टि से स्वस्थ है या नहीं शाला प्रवेश के समय डाक्टरी परीक्षा होना आवश्यक है।

एक और बात है। वह यह कि बालकों में कई छूत के रोग होते हैं। ये छूत के रोग समूह में शीघ्र प्रसार पा कर सम्पर्क में रहने वाले को रोगी न बना देते हैं। अतः छूत का रोगी बालक अपनी कक्षा तथा शाला के बालकों को रोगी न बना दे, इस दृष्टि से भी डाक्टरी निरीक्षण की आवश्यकता है।

तीसरी बात यह है कि कई बार अध्यापक यह नहीं जान पाता कि बालक के अंगों में शिक्षा ग्रहण की दृष्टि से कोई अपूर्णता तो नहीं है। जैसे पूरा न सुनने वाले, कम देखने वाले बालक के प्रति अध्यापक को विशेष सचेत रहने की आवश्यकता रहती है। उसे कक्षा में सबसे आगे बिठाना पड़ता है। यह सब भी तभी हो सकता है जब डाक्टरी परीक्षा द्वारा बालक के शारीरिक अंगों में किसी प्रकार की अपूर्णता का परिचय मिल जाए।

चौथी बात यह है कि रोग का शीघ्र पता चलने से उसका उपचार भी शीघ्र किया जा सकता है।

पांचवी बात यह है कि डाक्टरी निरीक्षण से माता-पिता भी स्वास्थ्य के नियमों से परिचित हो जाते हैं।

डाक्टरी निरीक्षण कब हो—एक बालक का डाक्टरी निरीक्षण कितनी बार और कब होना चाहिए यह विवादास्पद ही है। कोई शाला प्रवेश के समय केवल एक बार, कोई एक वर्ष छोड़कर दूसरे वर्ष और कोई प्रति वर्ष डाक्टरी निरीक्षण किए जाने के पक्ष में हैं। प्रायः लोग इस पक्ष में हैं कि डाक्टरी निरीक्षण प्रतिवर्ष होना चाहिए। और कुछ नहीं तो शाला में प्रवेश और शाला त्याग के समय तो अवश्य होना चाहिए। ये दोनों निरीक्षण बालक के माता-पिता और शिक्षक के समक्ष होना आवश्यक है। शेष निरीक्षण डाक्टर को अध्यापक के समक्ष ही कर लेने चाहिएँ।

डाक्टरी निरीक्षण की व्यवस्था—हमारे यहाँ प्रत्येक गाँव में डाक्टर नहीं है। अतः डाक्टरी निरीक्षण तो दूर रहा विशेष रोग में डाक्टरी सम्मति मिलना भी कठिन है। तथापि अध्यापक को हताश न होना चाहिए उसे अपने विभाग और राज्य के जन-स्वास्थ्य विभाग से सम्पर्क स्थापित कर अपनी शाला के छात्रों का डाक्टरी निरीक्षण कराते रहना चाहिए। इसके साथ ही कई स्थानों पर चाइल्ड वेलफेयर सेन्टर, हेल्थ विजिटर्स सेन्टर, इन्फेन्ट विजिटर्स सेन्टर, प्राईमरी हेल्थ सेन्टर आदि होते हैं अतः उनसे सम्पर्क स्थापित कर आवश्यकता पूर्ति की जा सकती है। वैसे चाहिये तो यह कि शिक्षा विभाग डाक्टर नियुक्त करे जो घूम-घूमकर संस्थाओं का डाक्टरी निरीक्षण करते रहें।

डाक्टरी निरीक्षण का कार्य—निरीक्षण के समय डाक्टर क्या-क्या देखे? किस प्रकार निरीक्षण हो? यह सब डाक्टर के क्षेत्र की बात है और उसका अपना काम है तथापि अध्यापक के नाते जानकारी रखना तथा आवश्यक सहयोग देना जरूरी है। डाक्टरी निरीक्षण में साधारणतया बालक की लम्बाई, वक्ष की मोटाई, वजन देखा जाता है। उसके शरीर के विभिन्न अंगों का निरीक्षण किया जाता है—आँख, कान, नाक, दाँत, चर्म, गला, फेफड़े, हृदय, मस्तिष्क आदि का निरीक्षण किया जाता है। इसके साथ ही छात्र की व्यक्तिगत सफाई, वेष-भूषा, सिर, बाल, नाखूनों की सफाई, पाँवों की रक्षा आदि का भी निरीक्षण किया जाता है। डाक्टर को बालक के भोजन का निरीक्षण भी जहाँ तक हो सके करना चाहिये। यह भी देखना चाहिए कि बालक में किसी प्रकार का छूत का रोग, रक्त विकार या अन्य रोग तो नहीं है। यदि किसी बालक में रोग के होने की आशंका हो तो उसका अच्छे ढंग से निर्णय कर माता-पिता और शिक्षक के सहयोग से उपचार प्रारम्भ कर देना चाहिए।

कभी-कभी डाक्टर को ऐसे कमजोर बालकों को भी छाँटना चाहिए जिनमें पौष्टिक तत्वों का अभाव है। ऐसे बालकों के लिये अलग से पौष्टिक तत्व-युक्त खाद्य पदार्थों, दूध तथा औषधियों का प्रबन्ध किया जाना आवश्यक होगा। साथ ही डाक्टर का यह भी कार्य है कि शाला की सफाई, आस पास का वातावरण, कमरों तथा फर्नीचर का निरीक्षण करे। अध्यापक को चाहिए कि वह डाक्टर को पूर्ण सहयोग दे।

छात्र के स्वास्थ्य निरीक्षण का विवरण—प्रत्येक छात्र के डाक्टरी निरीक्षण का विवरण रखा जाना आवश्यक है। अन्यथा यह पता न लग पाएगा कि लड़के ने शारीरिक दृष्टि से कितनी प्रगति की है। इस प्रकार का विवरण-पत्र प्रत्येक छात्र का रखा जाना आवश्यक है जिसमें डाक्टर को अपने निरीक्षण का अंकन करते रहना चाहिए। नमूने के लिए ऐसा एक विवरण पत्र "परिशिष्ट ख" में दिया है।"

सारांश

डाक्टरी निरीक्षण की आवश्यकता—बालकों का अविकसित समाज से आने के कारण उनमें रोगों की संभावना होने के कारण, उनमें किसी मानसिक अथवा शारीरिक दोष होने की सम्भावना होने के कारण, शीघ्र उपचार कर सकने की दृष्टि से डाक्टरी निरीक्षण की आवश्यकता है।

डाक्टरी निरीक्षण कब हो—जहाँ तक हो सके प्रति वर्ष होना चाहिये अन्यथा शाला प्रवेश के समय, फिर प्रति दूसरे वर्ष और अन्त में शाला छोड़ते समय डाक्टरी निरीक्षण होना चाहिये।

डाक्टरी निरीक्षण की व्यवस्था—जन-स्वास्थ्य-विभाग अथवा पास के किसी डाक्टर से सम्पर्क स्थापित कर डाक्टरी निरीक्षण की व्यवस्था की जानी चाहिये।

डाक्टरी निरीक्षण का कार्य—वैसे तो डाक्टर को अपने आप निरीक्षण करना है तथापि अध्यापक को उसको पूर्ण सहयोग देना चाहिये जिससे वह बालक के स्वास्थ्य से पूर्णतया परिचित हो जाए।

छात्र के स्वास्थ्य निरीक्षण का विवरण—विवरण-पत्र का नमूना परिशिष्ट "क" में दिया है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(१) बालकों के डाक्टरी निरीक्षण की क्यों आवश्यकता है तथा वह कब कराया जाना चाहिये ?

(२) अपनी शाला में आप डाक्टरी निरीक्षण की व्यवस्था कैसे करेंगे और उसके निरीक्षण कार्य में कैसे सहयोग देंगे ?

—: o :—

: ४६ :

समाज-स्वास्थ्य

बुनियादी शाला के अध्यापक का कर्तव्य गांव और समाज की सफाई की देख रेख रखना भी है। क्योंकि बालक यदि गन्दे समाज से आते हैं तो वह शाला में चाहे कितना ही प्रयत्न क्यों न करे बालक का स्वास्थ्य नहीं सुधर सकता। अतः इस दृष्टि से उसे समाज-स्वास्थ्य का ध्यान भी रखना चाहिए। अध्यापक को समाज-स्वास्थ्य की दृष्टि से निम्नलिखित बातों की ओर ध्यान देना आवश्यक है :—

(१) घर की सफाई
(२) सामूहिक सफाई
(३) स्वास्थ्य के नियमों का पालन
(४) बुरे रिवाजों से मुक्ति
(५) मेले त्योहारों आदि के आयोजनों में सफाई
(६) पशु पालन
(७) मादक वस्तुओं के प्रयोग से मुक्ति
(८) सार्वजनिक स्वास्थ्य विभाग से सम्बन्ध

(१) घर की सफाई—समाज-स्वास्थ्य की दृष्टि से सबसे पहला महत्त्वपूर्ण बिन्दु है घर की सफाई। जब तक घर साफ सुथरा न होगा तब तक घर के निवासी स्वस्थ नहीं रह सकते। शाला में बालक को देखकर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि वह साफ सुथरे घर से आता है अथवा मैले कुचैले घर से। क्योंकि साफ सुथरे घर से आने वाला बालक साफ सुथरा होगा अन्यथा मैला कुचैला। अध्यापकों को अभिभावकों से सम्पर्क स्थापित कर उनके घर को साफ सुथरा रखने का ज्ञान कराना चाहिए। गन्दे पानी का निकास, आंगन व दीवार की लिपाई, पुताई, घर के बर्तनों की सफाई, वस्त्रों, बिस्तरों की सफाई रखने के तरीके वह उन्हें बता सकता है। घर में हर जगह न थूकना, नाक साफ न करना, कफ न डालना आदि का ज्ञान कराना चाहिए। शाला की सफाई कराते समय "घर में सफाई" का पाठ भी उन्हें पढ़ाया जा सकता है।

(२) सामूहिक सफाई—प्रायः घर की सफाई कर लोग कूड़ा-करकट या गन्दा पानी घर के बाहर गली या मोहल्ले में फेंक देते हैं जिससे सारा गांव गन्दा मालूम होता है। घरों के पास ही गोबर की रोड़ियाँ बना डालते हैं। अध्यापक को चाहिए कभी-कभी गांव वालों से मिलकर ऐसे आयोजन करे जिससे गांव की सामूहिक सफाई की जा सके। इस दिन बालक, गांव वाले तथा अध्यापक सभी गांव की सफाई में जुट जाने चाहिए। गोबर तथा कूड़ा-करकट गांव से दूर खड्डों में डाला जाना चाहिए। गन्दे पानी के निकास के लिए तथा बरसाती पानी के निकास के लिए मार्ग बनाए जाने चाहिए। गांव के पास में गन्दे पानी के खड्डे हों

तो उन्हें भर दिया जाना चाहिए। पानी के कुओं को शुद्ध रखना चाहिए। इस का
में ग्राम पंचायत का सहयोग भी प्राप्त किया जा सकता है। ऐसे आयोजन से बाल
में स्वास्थ्य ज्ञान बढ़ेगा।

(३) स्वास्थ्य के नियमों का पालन—ग्रामवासी प्रायः अनपढ़ होते हैं। अ
स्वास्थ्य के नियमों से परिचित नहीं होते। अध्यापक का कर्तव्य है कि वह बाल
के माध्यम द्वारा अथवा स्वयं के सम्पर्क, बातचीत, भाषण द्वारा उन्हें स्वास्थ्य
नियमों का ज्ञान कराते रहना चाहिए तथा उनसे पालन कराना चाहिए। उन
नियमों की नियमितता बरतने को बाध्य करना चाहिए। जैसे मैला एक निश्चि
स्थान पर ही डालना, निश्चित कुएँ तालाब या नदी के घाट ही पीने के पानी
काम में लेना निश्चित स्थान पर मल-मूत्र त्याग आदि व्यक्तिगत स्वास्थ्य के नियमों
का पालन कराया जाना भी आवश्यक है ताकि रोगी बनने से बचाव हो सके।

(४) बुरे रिवाजों से मुक्ति—गाँवों में ही नहीं वरन् शहरों तक में कई
अन्धविश्वास प्रचलित होते हैं जैसे, बीमार होने का अर्थ देवी देवता का प्रकोप,
भूत-डाकण लगना और उसका इलाज मंत्र जादू टोने से कराना। शादी विवाह या
मृतभोजों पर अत्यधिक खर्च करना, प्रसव के समय कई गन्दे रिवाज, बाल-विवाह
आदि इनसे भी समाज स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है। किसी भी घर में व्यक्ति
के रोगी होते ही उन्हें डाक्टरी इलाज कराने का ज्ञान कराना चाहिए। अन्धविश्वास
दूर कराना चाहिए। शादी विवाह या मृत भोज में खर्च करने को पेट काटकर पैसा
जमा करने का भी स्वास्थ्य पर बुरा असर होता ही है और अवसर आने पर इतना
बड़ा भोज करना भी स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। अतः जहाँ तक हो सके इन
बुराइयों का ज्ञान उन्हें कराना आवश्यक है।

(५) मेले त्यौहारों आदि के आयोजनों में सफाई—मेले, त्यौहार, पर्व आदि
के आयोजन हमारी संस्कृति और मनोरंजन के प्रतीक हैं। हमें इनके आयोजन करने
चाहिएँ। पर कई बार यदि इनके आयोजन की ठीक व्यवस्था न की जाए तो ये
महामारी को फैलाने के कारण बनते हैं। मेले और त्यौहारों के समय मल-मूत्र त्याग
के स्थान, पानी का प्रबन्ध, शुद्ध वस्तुओं के मिलने आदि का तथा औषधियों का उचित
प्रबन्ध होना आवश्यक है। कई बार ग्रीष्म ऋतु में ऐसे स्थान पर धार्मिक मेले लग
जाते हैं जहाँ एक ही छोटे से कुण्ड में लोग नहाते हैं और उसका पानी पीते हैं जिससे
अचानक हैजा आदि महामारी फैल जाती है। अध्यापक को ऐसे समय पर अपने
छात्र स्वयंसेवकों द्वारा ऐसा प्रबन्ध करना चाहिए कि स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव
न पड़े।

(६) पशु-पालन—पशु पालन के बिना ग्रामवासियों का कार्य नहीं चलता
और उनकी उचित ढंग से स्वास्थ्य रक्षा न करने पर वे ही उनके मालिकों की
बीमारी का कारण बनते हैं। पशु पालन ग्रामवासियों के जीवन का आवश्यक अंग
है। पर उनके बाँधने के स्थान का, उनकी सफाई का, उनके रोगों को दूर करने का,
उनको दी जाने वाली खाद्य वस्तुओं का पूरा ध्यान रखना चाहिए। उनको बाँधने का

अलग स्थान होना चाहिए जिसमें पशु खुले न छोड़े जाएँ वरन् पक्तियों में ढालू भूमि पर बाँधे जाएँ ताकि उनका मल-मूत्र एक ही ओर गिरे। रोगी गाय भैंस का दूध काम में लेने वाला व्यक्ति भी रोगी होता है। उनको खाने को सड़ी गली वस्तुएँ नहीं दी जानी चाहिएँ अन्यथा उनका दूध हानिकर होगा। अध्यापक को चाहिए कि समाज का स्वास्थ्य सुधारने की दृष्टि से उन्हें पशु-पालन के ठीक तरीके सिखाए। बालकों को इस प्रकार का ज्ञान देना भी लाभदायक होगा।

(७) मादक वस्तुओं के प्रयोग से मुक्ति—अध्यापक को चाहिए कि गाँव में व्याप्त बीड़ी तम्बाकू आदि वस्तुओं के प्रयोग को कम करने की चेष्टा करे। इसके लिए कम से कम अपनी शाला के छात्रों के लिए यह नियम बना दे कि तम्बाकू बीड़ी पीने वाला छात्र शाला में प्रवेश न पा सकेगा। साथ ही गाँव के निवासियों को आर्थिक हानि, शारीरिक हानि आदि दोष बताकर उन्हें छोड़ने की सम्मति दे। तम्बाकू के प्रयोग से कैन्सर जैसे भयंकर रोग हो जाते हैं। इस निमित्त वह ग्राम पंचायत आदि का सहयोग प्राप्त कर सकता है।

(८) सार्वजनिक स्वास्थ्य विभाग से सम्बन्ध—भारत सरकार कई वर्षों से ग्रामवासियों के उत्थान का प्रयत्न कर रही है। इसके लिए भारत सरकार द्वारा कई विभाग खोले गए हैं : जैसे पब्लिक हैल्थ विभाग, चाइल्ड वेलफेयर सेन्टर, मेटरनिटी होम, हैल्थ विजिटर्स विभाग, इन्फेन्ट वेलफेयर सेन्टर आदि। अध्यापक को चाहिए कि समाज स्वास्थ्य के लिए इनका सहयोग प्राप्त करे। समय समय पर उनसे गाँव का निरीक्षण कराकर उनसे सफाई के लिए सम्मति प्राप्त करनी चाहिए। गाँव के निवासियों को रोगों से मुक्त करने के लिए मलेरिया निरोधक औषधियाँ, हैजे के टीके, बी० सी० जी० के टीके, बच्चों के लिए चेचक के टीके आदि का प्रबन्ध उनसे कराया जाना चाहिए। प्रसूति गृह की सहायता प्राप्त की जानी चाहिए। यदि कोई स्थानीय बीमारी हो तो उसको रोक थाम का प्रबन्ध कराया जाना चाहिए।

इस प्रकार बुनियादी शाला का अध्यापक अपने स्वयं के सहयोग एवं छात्र व बालकों के सहयोग से समाज को स्वस्थ बनाने का प्रयास कर सकता है।

सारांश

बुनियादी शाला के अध्यापक को समाज स्वास्थ्य की देख रेख रखना भी आवश्यक है। समाज का स्वास्थ्य ठीक रहने से बालकों का स्वास्थ्य भी सुधर जाएगा। समाज के स्वास्थ्य को ठीक ढंग से बनाये रखने के लिये अध्यापक को निम्नलिखित बातों की ओर ध्यान देना चाहिये :—

(१) घर की सफाई—ग्रामवासियों को घर की सफाई का महत्व समझा कर घर के आँगन, दीवारें, बर्तन, बिस्तर आदि की सफाई, गन्दे पानी का उचित निकास, यत्र तत्र न थूकने, नाक छिड़कने आदि का ज्ञान कराना आवश्यक है।

(२) सामूहिक सफाई—अध्यापक को शाला के छात्र, ग्रामवासी, ग्राम पंचायत आदि के सहयोग से सामूहिक सफाई का आयोजन करते रहना चाहिए।

(३) स्वास्थ्य के नियमों का पालन—स्वास्थ्य के नियमों का ज्ञान करा-कर उनको नियमितता उनसे निभवाने का प्रयत्न करना चाहिए।

(४) बुरे रिवाजों से मुक्ति—देवी देवताओं का प्रकोप, जादू टोने का प्रभाव, डाकन, भूत के प्रभाव आदि अन्धविश्वासों तथा बाल विवाह, शादी या गमी के समय बड़े-बड़े भोज आदि कुरीतियों को रोकने का प्रयास करना चाहिए।

(५) मेले त्योहारों आदि के आयोजनों में सफाई—ऐसे आयोजनों के समय पूर्णतया सफाई का ध्यान रखना आवश्यक है। अन्यथा हैजा आदि बीमारियां फैल सकती हैं।

(६) पशु पालन—पशुओं का उचित ढंग से पालन तथा रोगी पशुओं के दूध आदि का प्रयोग न करना सिखाया जाना चाहिए।

(७) मादक वस्तुओं के प्रयोग से मुक्ति—नशीली वस्तुओं का त्याग करना सिखाया जाना चाहिये।

(८) सार्वजनिक स्वास्थ्य विभाग से सम्बन्ध—यह सम्बन्ध स्थापित कर मलेरिया की रोकथाम, हैजा, चेचक, बी० सी० जी० के टीके आदि का प्रबन्ध करना चाहिए।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(१) समाज-स्वास्थ्य का क्या महत्व है और उसका निजी स्वास्थ्य से क्या सम्बन्ध है?
(२) बुनियादी शाला समाज-स्वास्थ्य में क्या-क्या सहयोग किस प्रकार दे सकती है?
(३) समाज-स्वास्थ्य के दृष्टिकोण से मेले त्यौहारों के समय की सफाई की योजना तैयार कर यह बताइये कि छात्र किस-किस प्रकार सहयोग दे सकेंगे।

—: • :—